THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178784
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 T12G Accession No. P. G. H2180

Author ठाकुर रवीन्द्रनाथ

Title घर और बाहर 1957

This book should be returned on or before the date last marked belo

घर और बाहर

लेखक

विश्वकवि स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक

श्री रघुकुल तिलक एम० ए०

प्रमुख विक्रेता

बम्बई बुक डिपो

१६५।१ हरीसन रोड, कलकत्ता-७

पंचम संस्करण
जनवरी १९५७ ई०

मूल्य
साढ़े तीन रुपया

कल्याण दास ब्रदर्स, बड़े महाराज का मंदिर बनारस-१
की ओर से प्रकाशित तथा प्रियानाथ पाण्डेय
द्वारा सन्मार्ग प्रेस, टाउनहाल,
वाराणसी में मुद्रित।

घर और बाहर

विमला की आत्म-कथा

(१)

मेरा विवाह एक ऐसे राजघराने में हुआ जिसका आदर-सम्मान बादशाहों के समय से चला आता था। यहाँ जैसे अनेक विधि-विधान मनु पराशर के माने जाते थे, वैसे ही बहुतसे क़ायदे-क़ानून मुग़ल पठानों के भी प्रचलित थे। पर मेरे स्वामी बिलकुल नई चाल के थे। इस घर में उन ही ने सब से पहिले ढंगसे लिखना-पढ़ना सीखा और एम० ए० पास किया। उनके दोनों बड़े भाई शराब पी-पी कर थोड़ी उम्र में ही मर चुके थे। वे कोई बाल-बच्चा भी नहीं छोड़ गये थे। मेरे स्वामी शराब नहीं पीते थे। उनके चरित्र में चंचलता नहीं थी—यह बात इस घरमें ऐसी नई थी कि लोग इसे पसन्द नहीं करते थे। उनकी धारणा थी कि जिनके घरमें लक्ष्मी नहीं है, उन ही को अत्यन्त निर्मल होना शोभा देता है; कलंक का स्थान तारों में नहीं, चाँद में ही होता है। मेरे ससुर और सासकी मृत्यु बहुत पहिले हो चुकी थी। घर की देख-भाल दादस करती थीं। मेरे स्वामी उनके गले के हार और आँखों के तारे थे।

इसीलिए उन्हें साधारण नियमों के उल्लंघन करने का साहस हो जाता था। जब उन्होंने मिस गिल्बी को मेरी संगिनी और शिक्षक नियुक्त किया, तब घर, बाहर जितने मुँह थे, सभी ज़हर उगलने लगे; पर तो भी मेरे स्वामी की ज़िद बनी रही।

इसी समय उन्होंने बी० ए० पास करके एम० ए० की पढ़ाई शुरू की थी। कालेजमें पढ़ने के लिए उन्हें कलकत्ते रहना पड़ता था। वे प्रायः रोज ही मुझे चिट्ठी भेजते थे। उनकी बातें थोड़ी और भाषा सरल होती थी। बड़े-बड़े गोल अक्षर मानों स्निग्ध नेत्रोंसे मेरे मुँहकी ओर देखते थे। मैं उनकी चिट्ठियाँ एक चन्दन के बक्स में रखती थी और रोज बाग़ से फूल लाकर उनको ढक दिया करती थी।

मेरे स्वामी कहा करते थे कि स्त्री-पुरुष को एक दूसरे पर समान अधिकार है; क्योंकि उनके प्रेम का सम्बन्ध बराबर है। इस बात पर मैंने उनके साथ कभी तर्क नहीं किया। पर मेरा मन कहता था कि स्त्री का प्रेम पूजा करके ही पूजित होता है, नहीं तो उसे तुच्छ समझना चाहिए। हमारे प्रेम का प्रदीप जिस समय जलता है, उस समय उसकी शिखा ऊपर ही को उठती है।

आज मुझे याद आता है कि मेरे सौभाग्य के दिनों में कितने हृदयों में ईर्षा की आग धक-धक जल रही थी। ईर्षा की बात भी थी—मुझे जो कुछ मिला था, मानों मैंने धोखा देकर लिया था। पर धोखा तो सदा चलता नहीं, दाम देने ही पड़ते हैं, नहीं तो विधाता से सहा नहीं जाता। बहुत समय तक प्रतिदिन

सौभाग्य का ऋण चुकाना पड़ता है, तभी अधिकार स्थित होता है। भगवान् हमें दे सकते हैं पर लेना अपने ही गुणों से होता है। पाई हुई चीज़ भी हमें प्रायः नहीं मिलती, हमारा ऐसा फूटा भाग्य है।

मेरी दादस, सास—सभी के असमान्य रूप की चर्चा होती थी। मेरी दोनों विधवा जिठानियों के समान सुन्दरी भी बहुत कम दिखाई पड़ती थी। बारी-बारी जब उन दोनों का सौभाग्य लुट गया, तो मेरी दादस ने प्रण कर लिया कि अपने पौत्र के लिए रूपवती बहू की खोज न करेंगी। मैं केवल सुलक्षण के बल इस घर में प्रवेश कर सकी। अन्यथा मेरा और अन्य कोई अधिकार नहीं था।

हमारे इस सुख-विलास से परिपूर्ण घरमें स्त्री का स्त्री समझ कर बहुत कम आदर-सम्मान होता था। यद्यपि शराब के झाग और वेश्याओं के घुंघरुओं की झंकार में हमारे घर की स्त्रियों के जीवन का सब रोना-धोना डूब चुका था, तथापि वे बड़े घर की बहू होने के अभिमान के सहारे अपना सिर उठाये हुए थीं। मेरे स्वामी शराब नहीं पीते थे। उन्होंने नारी-मांस के लोभ में पाप की पण्यशाला के द्वार पर मनुष्यत्व की पूँजी नहीं लुटाई—क्या यह सब मेरे ही गुण से था? पुरुष के उद्भ्रान्त, उन्मत्त मनको वशमें करने का कौन-सा मन्त्र विधाताने मुझे दिया था? केवल भाग्य, और कुछ नहीं! और उनके—जिठानियोंके—समय क्या विधाता को होश नहीं था, जो उनकी किस्मत का लिखा सभी कुछ टेढ़ा-तिरछा हो गया! सन्ध्या होते ही सुखका उत्सव उजड़

गया—सभा सूनी हो गई, केवल रूप-यौवन की बत्ती सारी रात व्यर्थ जलती रह गई।

मेरे स्वामी के पौरुष की ओर उनकी दोनों भौजाइयाँ बड़ी अवज्ञा दिखाती थीं। बातों-ही-बातों में मैंने उनके अनेक आघात सहे। मैंने अपने स्वामी का सुहाग मानों चोरी करके लिया था। वे कहा करतीं, केवल छल-ही-छल है, इसकी हर बात में बनावट है; वही आजकलकी-सी बिबियाना निर्लज्जता! मेरे स्वामी मुझे आजकल के फैशन के कपड़े पहनाया करते थे—रंग-बिरंगी जाकेट, साड़ी, शेमीज़, पेटीकोट इत्यादि। इन्हें देख कर जिठानियाँ कहा करतीं "रूप तो है नहीं, ठाठ किए मरी जाती है! देह को मानों दुकान की तरह सजाये रहती है। लाज भी नहीं लगती।"

मेरे स्वामी सब जानते थे। पर स्त्रियों के प्रति उनका हृदय करुणा से भरा था। वे मुझ से बार-बार कहते थे,—"गुस्सा मत करो।" मुझे याद है, मैंने उनसे एक बार कहा था,—"स्त्रियों का मन बहुत छोटा और संकुचित होता है।" उन्होंने उत्तर दिया था,—"वैसे ही जैसे चीन देश की स्त्रियों के पाँव छोटे और संकुचित होते हैं समस्त समाज ने हमारी स्त्रियों का मन चारों ओर से दबा-दबा कर मानों छोटा और संकुचित कर डाला है। भाग्य इनके जीवन को लेकर जुआ खेलता है, दाँव पड़ने पर सब कुछ निर्भर है, स्वयं उनका कुछ अधिकार नहीं।"

मेरी जिठानियाँ जो कुछ माँगती, वह उन्हें तुरत मिल जाता।

उनकी माँग ठीक है या नहीं, वे इसका विचार तक न करते। पर जब मैं देखती कि वे इसके लिए जरा भी कृतज्ञ नहीं है, तो मेरा मन भीतर से जल उठता। मेरी बड़ी जिठानी—जो जप-तप-व्रत, उपवास में लगी रहतीं, जिनके जप-तप का मुँह पर इतना फर्क रहता कि मन के लिए कुछ भी शेप न बचता—बहुधा मुझे सुना-सुना कर कहतीं,—"मुझसे मेरे वकील भाई कहते हैं, यदि हम अदालत में नालिश करें तो हम....।" पर इन सब बकवास के दुहराने से लाभ ही क्या? मैंने अपने स्वामी से वादा कर लिया था कि किसी दिन भी उनकी बात का उत्तर न दूंगी। इसीसे उस जलन का सहना और भी कठिन था। मैं सोचती थी, भलेपन की भी हद है, हरदम सहना पौरुष की कमी दिखाना है। सच बात कहूँ? अनेक बार मैंने मनमें सोचा कि मेरे स्वामी का मन जरा कड़ा होता तो बहुत अच्छा होता।

मेरी छोटी जिठानी का ढंग और तरह का था। उनकी उम्र कम थी, उन्हें सात्विकताका दावा भी नहीं था। उनकी बातचीत और हँसी-ठठोली में रसका मेल पाया जाता था। उन सब युवती दासियों की चाल-ढाल ठीक न थी, जो उन्होंने अपने पास रख छोड़ी थी। पर इसपर कोई आपत्ति करनेवाला नहीं था; क्योंकि इस घरका यही दस्तूर था। मैं सोचती थी, मेरे स्वामी कलङ्करहित हैं—मेरा यही विशेष सौभाग्य उनके लिए असह्य है। मेरे स्वामी को इनके दुःख ही पर दृष्टि थी, दोष पर नहीं। मैं कहती "अच्छा, सब दोष समाज ही का सही पर इतनी अधिक दया करनेकी क्या जरूरत? क्या हुआ यदि

आदमी ने जरा–सा कष्ट ही सह लिया।" पर उनसे कौन जीतता ? वे केवल हँस देते।

मेरे स्वामी की बड़ी इच्छा थी कि मुझे घरसे बाहर ले जायं। एक दिन मैंने उनसे कहा,—"बाहर से मुझे लेना ही क्या है ?"

वे बोले,—"सम्भव है, बाहर को तुमसे कुछ लेना हो।" मैंने कहा,—"मेरे बिना जब इतने दिन बाहर का काम चलता रहा, आज भी चल जायेगा। वह फाँसी लगाकर मर नहीं जायगा।"

"मरे तो मरने दो, मैं इसलिए नहीं सोचता मैं तो अपने ही लिए सोचता हूँ।"

"हाँ सच कहना, तुम्हें अपने लिए क्या चिन्ता है ?"

मेरे स्वामी ज़रा हँसकर चुप हो गये। मैं उनकी बातें जानती हूँ इसीलिए मैंने कहा, "ना, इस तरह चुप होकर टालनेसे काम नहीं चलेगा इस बातको तुम्हें ख़तम करके जाना होगा।"

उन्होंने कहा—"बात क्या मुँह की बात से ही ख़तम होती है। जीवन में अनेक बातें ऐसी हैं जो कभी ख़तम नहीं होतीं।"

"ना, इस समय पहेलियाँ रहने दो, बात बताओ।'

'मैं चाहता हूँ कि बाहर जाकर तुम मुझे प्राप्त करो और मैं तुम्हें। अभी हमारी पारस्परिक प्राप्ति नहीं हुई ?'

'क्यों यहाँ की प्राप्ति में क्या कसर रह गई ?'

'यहाँ तुम मुझमें ही लिप्त हो—तुम नहीं जानती कि तुम किसे चाहती हो। तुम यह भी नहीं समझती कि तुमने प्राप्त किसे किया है ?'

'देखो, तुम्हारी ये बातें मुझसे न सही जायंगी !'

'इसीलिए तो मैं कहना नहीं चाहता।'

'तुम्हारा चुप रह जाना और भी नहीं सहा जाता।'

ये सब बातें मुझे बिलकुल पसन्द नहीं थीं। पर उस समय बाहर न निकलने का यह कारण नहीं था। मेरी दादस उस समय जीवित थीं। उनके मतके विरुद्ध मेरे स्वामीने प्रायः बीस आना घर बीसवीं शताब्दी से (आधुनिक फैशनकी चीजों से) भर दिया था। उन्होंने भी अपने मनको समझा लिया था। राजघराने की बहू यदि घूंघट उठा कर बाहर निकली तो भी वे कुछ न कहती। वे जानती थीं कि यह भी एक दिन होकर रहेगा। पर मैं सोचती थी कि यह ऐसी कौन-सी जरूरी बात है जिसके लिए उन्हें कष्ट दिया जाय। मैंने किताबमें पढ़ा कि स्त्रियाँ पिंजड़े की चिड़ियाँ होती हैं। और की बात तो नहीं कहती, पर मुझे तो इसी पिंजड़े में इतना कुछ मिला कि सारी दुनियाँ में उसकी समानता कठिन है। उस समय मेरा यही विचार था।

मेरी दादसको मुझसे बड़ा प्रेम था। इसका कारण यही था कि उनके विश्वास से मैं जो अपने स्वामीका मन आकृष्ट करने में सफल हुई, यह मानो मेरा ही गुण था। वे समझती थीं यह मेरे ग्रह-नक्षत्र का प्रभाव है। पुरुषों का धर्म ही है रसातल में धँसते जाना। उनके किसी और पौत्रको उनकी पौत्र-वधुयें अपने सारे रूप-यौवन के जोरसे भी घरकी ओर न खींच सकीं, वे पापकी आगमें जल-भुन कर छाई हो गये, तौ भी उन्हें कोई न बचा सका। दादस ने समझा था कि उनके घर में पुरुषों की अकाल-मृत्युकी आग मैंने ही बुझाई है। इसी कारण वे मुझे सदा मानों

हृदय में रखती थीं। मुझे जरा भी कुछ हो जाय तो वे डर से काँप जाती थीं। मेरे स्वामी अङ्गरेजी दुकानों से पोशाक लाकर मुझे सजाते थे। यह बात उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं थीं; पर सोचती थीं, 'पुरुषों के ऐसे अनेक शौक रहा ही करते हैं, जो बिलकुल व्यर्थ होते हैं और जिनसे नुकसान होता है। उनको रोकने से भी काम नहीं चलता। वे अपना बिलकुल ही सत्यानाश न कर लें, इसीमें रक्षा समझनी चाहिये। मेरा निखिलेश बहूको न सजाता तो किसी और को सजाने जाता।' इसीलिये जब कभी मेरे लिए नये कपड़े लाते तो वे मेरे स्वामी को बुला खूब हँसी मज़ाक किया करतीं। होते-होते आखिर में उनकी पसन्द का रंग भी बदल गया था। कलियुगके कल्याण से अन्त में उनकी ऐसी दशा हो गयी थी कि पौत्र-वधू अङ्गरेजी पुस्तक से उन्हें गल्प न सुनाती तो उनकी सन्ध्या ही न कटती।

दादीकी मृत्युके बाद मेरे स्वामीकी इच्छा हुई कि मैं कलकत्ते जाकर रहूँ। किन्तु मेरा मन किसी तरह न माना। मैं बार-बार सोचती थी कि यह जो मेरे ससुर का घर है, उसे दादस ने कितना विच्छेद सह-सह कर कितने यत्नके साथ इतने दिन तक चलाया। यदि मैं इस सारे भार को छोड़ कर कलकत्ते चली जाऊँ, तो मुझे जरूर शाप लगेगा। दादस का खाली आसन मेरे मुँहकी ओर बड़े अर्थपूर्ण भावसे देख रहा था! वह साध्वी आठ बरस की उम्रमें इस घरमें आई थीं और उन्यासी बरस की उम्र में मरीं। उन्हें जीवन में सुख नहीं मिला। भाग्यने उनकी छातीमें एक-एक करके अनेक बाण मारे, पर हरएक चोट पर

उनके जीवन में अमृत ही उछल कर निकला। यह सारा घर उसी नेत्र जलके पुण्यकी धारा से पवित्र है। मैं इसे छोड़ कर कलकत्ते के जंजाल में घुस कर क्या करूँगी?

मेरे स्वामी ने सोचा था कि इस सुयोग पर मेरी दोनों जिठानियों को घरके समस्त कर्त्तव्य सौंप जायंगे तो उनके मन को भी सान्त्वना होगी और हमारे जीवन को भी कलकत्ते में डाल-पात फैलाने की जगह मिलेगी।

मुझे यह बात असह्य जान पड़ी। जिठानियों ने मुझे कितना जलाया है, वे मेरे स्वामी का कभी भला नहीं देख सकीं। आज क्या उन्हें इसी का पुरस्कार मिलेगा?

इसके अतिरिक्त जब किसी दिन यहाँ लौट कर आयंगे तो मेरा योग्य स्थान क्या मुझे फिर भी मिल सकेगा? मेरे स्वामी कहते—"तुम्हें उस स्थान से लेना ही क्या है? इसे छोड़ कर जीवन में और भी तो अनेक बहुमूल्य वस्तु हैं।"

मैंने मन-ही मन कहा—'पुरुष ये सब बातें अच्छी तरह नहीं समझते। उन्हें तो अपनी बाहर की बैठक से मतलब रहता है। वे घर-गृहस्थी का वास्तविक अर्थ क्या जानें? इस जगह उन्हें स्त्रियों की मतिके अनुसार चलना ही उचित है।'

सबसे बड़ी बात यह थी कि मैं अपना तेज बनाये रखना चाहती थी। जो सदा शत्रुता करते आये हैं, उनके हाथ में सब कुछ छोड़-छाड़ कर चले जाना, बिलकुल हार मानना है।

बंगाल में एक समय स्वदेशी का बड़ा जोर हुआ था। उस समय मेरी दृष्टि, मेरी आशा और इच्छा इस उन्मत्त नये युग के

अबीर से लाल हो उठी थी। इतने दिन मन जिस जगत को एकान्त समझता था और जीवन के धर्म-कर्म, आकांक्षा साधन को जिस सीमाके अन्दर सम्भाल कर रखने में लगा हुआ था, उसी में उस समय भी लगा रहा और उसकी बाढ़ न टूटी, पर सी बाढ़ के ऊपर खड़े होकर अकस्मात् दूरदिगन्तव्यापी एक आवाज सुनी। अर्थ तो मैं स्पष्ट न समझ सकी, पर उसके स्पर्श से भीतर ही मेरी आत्मा विह्वल हो उठी।

मेरे स्वामी जब कालेज में पढ़ते थे, तभी से उन्होंने देश के प्रयोजन की चीजें देश ही में उत्पन्न करने के लिए बहुत चेष्टा की थी। एक बार उन्होंने सोचा कि हमारे देश में जो बड़े-बड़े कारोबार नहीं चलते, उसका प्रधान कारण बैंकोंका अभाव है। उसी समय उन्होंने मुझे पोलिटिकल इकानमी पढ़ानी शुरू की। उन्होंने सोचा कि सबसे पहले जनसाधारण के मनमें बैंक में रुपया जमा करने की इच्छा और अभ्यास पैदा करने की आवश्यकता है। एक छोटा-सा बैंक खोला गया। सूद का दर चढ़ा होनेके कारण बैंक में रुपया जमा करने का उत्साह गाँवके लोगों में खूब जाग्रत हो उठा। इसी मोटे सूद के छेद द्वारा बैंक डूब भी गया। यह सब देख कर रियासत के पुराने नौकर-चाकर बहुत घबड़ा गये। बैरियों ने हँसी ठठ्ठा करना शुरू किया। मेरी बड़ी जिठानी एक दिन मुझे सुनाकर कहने लगीं, मेरे वकील भैया कहते थे कि जज के सामने मामला पेश किया जाय तो अब भी इस पुराने घराने के आदर-सम्मान और धन-दौलत की इस पागल के हाथ से रक्षा हो सकती है।

सारे घरमें केवल मेरी दादस के मनमें विकार नहीं था। वे कहा करती थीं, "तुम सब-की-सब मिलकर उसे क्यों तंग करती हो? धन-दौलत की बात सोचती हो? अपनी उम्र में मैंने तीन बार यह जायदाद रिसीवर के हाथ में जाते देखी है। पुरुष क्या स्त्रियों के समान होते हैं? वे तो उड़ाऊ होते हैं और केवल उड़ाना ही जानते हैं। पोतबहू, तेरी तक़दीर अच्छी है, जो वह साथ-साथ आप भी नहीं उड़ता। तूने दुःख नहीं उठाया, इसीसे यह बात भूल जाती है।"

मेरे स्वामी के दान की मात्रा भी कम न थी। कपड़ा बुनने की कल, धान कूटने का यन्त्र या ऐसी ही और कई वस्तुएँ जिस किसी ने तैयार करने की चेष्टा की, उन्होंने उसकी अन्तिम निष्फलता तक सहायता की। विलायती कम्पनी के मुकाबले में पुरी यात्रा के जहाज़ चलाने के लिए एक स्वदेशी कम्पनी स्थापित हुई; उसका एक भी जहाज़ न डूबा पर मेरे स्वामी के अनेक हिस्से डूब गये।

सबसे बुरी बात मुझे यह लगती थी कि सन्दीप बाबू देश-उपकार के बहाने उनसे रुपया ऐंठा करते थे। कभी वह समाचारपत्र निकालते थे, कभी स्वदेशी का प्रचार करने जाते थे और कभी डाक्टर की रायसे शान्त होकर उटकमण्ड में जा बैठते थे। मेरे स्वामी उनका सारा खर्च उठाते थे। इसके अतिरिक्त घरके खर्चके लिए उनका मासिक वेतन भी बँधा था। फिर यह बात भी नहीं थी कि मेरे स्वामी के और उनके विचारोंमें समानता ही हो।

जैसे ही यह स्वदेशी का तूफान मेरी रगों में समाया मैंने स्वामी से कहा कि विलायती चीजों से तैयार किये हुए मेरे जितने कपड़े हैं, सबको जला डालूंगी। स्वामीने कहा,—"जलाती क्यों हो? जितने दिन मन चाहे मत पहिनो, यही काफी है।"

"जितने दिन मन न चाहे क्या? मैं इस जीवन में कभी........।"

"अच्छा तो इस जीवन में मत पहनो। फूंक फाँक का स्वांग रचने की क्या ज़रूरत है?"

"तुम्हारा इससे क्या बिगड़ता है?"

"मैं कहता हूँ बनाने सँवारने के काम में प्रयत्न करो। अनावश्यक तोड़ने-फोड़ने की उत्तेजना में एक कौड़ी भी न खोनी चाहिये।"

"इसी उत्तेजनासे बनाने सँवारने में सहायता मिलती है।"

"यही कहती हो तो यह भी कहना पड़ेगा कि आग लगाने से ही घरमें उजाला हो सकता है।"

एक और भी गड़बड़ी थी। मिस गिलबी जब हमारे घरमें आई तो कुछ दिन तक इसी बात पर बहुत शोरो-गुल मचा। इसके बाद होते-होते बात दब गई थी, पर अब फिर वही झगड़ा उठ खड़ा हुआ। मिस गिलबी अंग्रेज हैं या हिन्दुस्तानी—इस बातका ध्यान भी पहले मुझे नहीं आया था—पर अब आने लगा। मैंने स्वामी से कहा कि मिस गिलबी को विदा करना पड़ेगा। वे चुप हो गये।

मिस गिलबी नहीं गई। एक दिन मैंने सुना कि गिरजा

जाते समय हमारे कुटुम्बके एक लड़केने उसका अपमान किया। मेरे स्वामीने इस लड़केको अपने घर रखकर पाला था। उन्होंने इस बात पर उसे घरसे निकाल दिया। इससे बड़ी गड़बड़ी मची।

उन दिनों उनका यह व्यवहार कोई माफ नहीं कर सकता था। मैंने भी माफ नहीं किया। इस बार मिस गिलबी आप ही चली गई। जाते समय उसकी आँखों से आँसू बहने लगे—पर मुझपर कोई असर नहीं हुआ। देखो तो झूठमूठ लड़के का सर्वनाश कर गई—और फिर ऐसा लड़का! स्वदेशी के उत्साह में उसका खाना-पीना तक छूट गया था। मेरे स्वामीने मिस गिलबी को स्टेशन ले जाकर खुद रेलमें सवार करा दिया। यह मुझे बहुत बुरी लगी। जब इस बातका सुईका फावड़ा बन गया और मामला समाचार-पत्रों तक पहुँचा, तो मैंने सोचा कि उन्हें अपने किये का फल मिल गया।

इससे पहले मुझे स्वामी की बातों पर अनेक बार चिन्ता अवश्य हुई थी, पर मैं उनके लिए लज्जित नहीं थी। इस बार मुझे लज्जा हुई। मैं यह नहीं जानती कि नरेनने मिस गिलबी के प्रति कुछ अन्याय किया था या नहीं, पर उन दिनों इस बातपर निष्पक्ष रूपसे विचार करना ही लज्जाकी बात थी। जिस भाव से नरेन को अंग्रेज स्त्री का सामना करने का साहस हुआ था, मैं उसे किसी तरह भी दबाना नहीं चाहती थी। मैं इसे अपने स्वामी की दुर्बलता समझती थी कि वह इस बातको किसी तरह न समझ सके। इसीसे मुझे लज्जा होती थी।

इससे यह न समझना चाहिए कि मेरे स्वामी को स्वदेशी से

कुछ वास्ता ही न था, पर वह 'व'न्देमातरम्" मन्त्रको पू 'रूपसे ग्रहण न कर सके थे। वह कहा करते थे—"देशकी सेवा करनेको तैयार हूँ, पर देशकी वन्दना करना देशका सत्यानाश करना है।"

---

(३)

इसी समय सन्दीप बाबू अपना दल-बल लिये स्वदेशी का प्रचार करते हमारे यहाँ आ उपस्थित हुए। सन्ध्या-समय सभा होनेको थी। हम सब स्त्रियाँ दालान की एक ओर चिक डाले बैठी थीं। वन्देमातरम् का सिंहनाद धीरे-धीरे निकट आ रहा था। दिलकी धड़कन बढ़ती जाती थी। अकस्मात् सिरपर पगड़ी बाँधे, गेरुवे कपड़े पहने, नंगे पाँव वाले बालक और युवकों का दल सूखी नदी में प्रथम वर्षा की गेरुवी बाढ़की धारा के समान हड़बड़ाता हुआ हमारे प्रकाण्ड आँगन में घुस पड़ा। सारा आँगन भर गया। उसी भीड़ में दस-बारह आदमी सन्दीप बाबू को एक बड़ी चौकीपर बिठाये हुए कन्धे पर उठा कर ले आये। वन्देमातरम्! वन्देमातरम्!! वन्देमातरम्!!! ऐसा मालूम पड़ता था कि आकाश फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।

सन्दीप बाबूका फोटो पहले ही देख चुकी थी। यह मैं नहीं कह सकती कि वह मुझे उस समय अच्छा लगा था। देखनेमें बुरा नहीं था, नहीं, बल्कि अच्छा ही था, तो भी न जाने क्यों ऐसा जान पड़ता था कि उज्ज्वलता तो अवश्य है, पर चेहरा मानों बहुत मिलावके साथ गढ़ा गया है—आँखों और होठोंमें खरी धातुकी झलक दिखाई न पड़ी। इसीलिए जब मेरे स्वामी

बिना आगा-पीछा सोचे उनकी सब फरमायशें पूरी करते थे, तो मुझे अच्छा नहीं लगता था। अपव्यय तो मैं सह भी लेती, पर मैं केवल यही सोचती थी कि मित्र होकर सन्दीप बाबू मेरे स्वामी को ठगते हैं और फिर उनकी चाल-ढाल भी साधुओं या ग़रीबों की-सी नहीं थी, अच्छे खासे छैला दिखाई पड़ते थे; और मनमें भोग-विलासकी इच्छा भी मौजूद थी। इसी प्रकारके नाना विचार मेरे मनमें उठते थे। आज फिर वही सब बातें याद आ गईं।

उस दिन सन्दीप बाबू जब व्याख्यान देने लगे और उस वृहत् सभाका हृदय हिलकर फटने लगा तो सन्दीप बाबू एक आश्चर्य-मूर्ति दिखलाई पड़े। विशेषतः जब एक बार अस्त होते हुए सूरजकी किरण अकस्मात् उनके मुंह पर आ पड़ी तो जान पड़ा मानों देवताओं ने सब नर-नारियों के सामने यह बात प्रकाशित कर दी कि वह वास्तव में अमरलोक के निवासी हैं। वक्ताकी आरम्भसे अन्त तक हर बात मानों एक प्रबल हवाका झोंका थी। साहसका अन्त नहीं था। मुझे आँखोंके सामने अब चिक पड़ा रहना असह्य हो उठा। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने किस समय बेखबरीमें चिक सामनेसे हटाकर बाहर मुंह करके उनके मुंहकी ओर देखा था। सारी सभामें एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसे मेरी ओर दृष्टि डालनेका अवकाश मिलता। केवल एक बार मैंने देखा कि काल-पुरुषके नक्षत्रके समान सन्दीप बाबूके दोनों उज्ज्वल नेत्र मेरे मुखपर आ पड़े, पर मुझे होश ही नहीं था। मैं क्या उस समय राज घरानेकी बहू थी? मैं बंगाल की सब स्त्रियोंकी एकमात्र प्रतिनिधि थी—और वे बंगालके वीर

थे। जिस प्रकार आकाशसे सूर्यलोक उनके माथेपर आकर पड़ा था, उसी प्रकार नारीचित्त द्वारा उनका अभिषेक भी होना चाहिये था अन्यथा उनकी रणयात्राका मांगल्य कैसे पूरा होता ?

उस दिन मैं एक अपूर्व आनन्द और अहंकारीकी दीप्ति साथ लेकर घर आई। अन्दर-ही-अन्दर एक प्रबल आगका तूफान मुझे एक केन्द्रसे खींच कर दूसरे केन्द्रमें ले गया। मेरी इच्छा होने लगी कि ग्रीसकी वीरांगनाओंके समान उस वीरके धनुषकी डोरी बनानेके लिए अपने ये आजानुलम्बित केश काट डालूं। यदि भीतरके चित्तका बाहरके गहनेसे संयोग होता तो मेरा कण्डा, मेरा गलेका हार, मेरा बाजूबन्द—एक-एक करके सब उस सभामें बरस पड़ते। स्वयं अपनेको कुछ हानि पहुँचा सकती तभी मानों उस आनन्दके उत्साह-वेगको सह सकती थी।

सन्ध्या समय जब मेरे स्वामी घरमें आये, तब मुझे डर होने लगा कि कहीं वक्तृताके सम्बन्धमें कोई बेसुरी बात न कह बैठें। कहीं ऐसा न हो कि उनकी सत्यप्रियता को ठेस लगी हो और वह असम्मति प्रकट करने लगें। यदि ऐसा होता तो मुझसे उनकी अवज्ञा किए बिना न रहा जाता।

पर वे कुछ भी न बोले। मुझे यह भी अच्छा नहीं लगा। उन्हें कहना चाहिये था,—"आज सन्दीप बाबूकी बातें सुन कर आँखें खुल गईं। इस विषय में इतने दिनसे जिस भूल में पड़ा था, आज वह सब दूर हो गई।" मुझे जान पड़ा कि वह केवल अपनी जिद रखनेको चुप हैं और जान-बूझ कर अपना उत्साह प्रकट नहीं करते।

मैंने पूछा,—"सन्दीप बाबू और कितने दिन यहाँ रहेंगे ?"

स्वामीने कहा,—"वह कल प्रातः ही रङ्गपुर जायँगे।"

"कल प्रातः ही ?"

"हाँ, वहाँ उनकी वक्तृता का समय निश्चित हो गया है।"

मैं थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली,—"किसी तरह कल यहाँ रहकर जानेसे उनका काम नहीं चलेगा ?"

"यह तो सम्भव नहीं है, पर कहो बात क्या है"

"मेरी इच्छा है कि मैं स्वयं सामने जाकर उन्हें भोजन कराऊँ।"

यह सुनकर मेरे स्वामीको बड़ा आश्चर्य हुआ। इससे पहले कई बार उन्होंने अपने मित्रोंके सामने बाहर जानेके लिए मुझसे अनुरोध किया था। मैं कभी राजी न हुई थी।

मेरे स्वामीने मेरी ओर स्थिर-भावसे देखा—मैं उनके मनकी बात ठीक नहीं समझी। मन-ही-मन एक दम बड़ी लज्जा मालूम होने लगी। बोली,—"ना, ना, रहने दो कुछ जरूरत नहीं।"

उन्होंने कहा,—"जरूरत क्यों नहीं है ? मैं संदीपसे कहूँगा—यदि सम्भव हुआ तो वह कल ठहर कर चला जायगा।"

मैंने सुना कि ठहरना सम्भव हो गया।

सत्य कहूँ ? उस दिन मैं यही सोचती थी कि ईश्वरने क्यों मुझे अपूर्व सुन्दरी नहीं बनाया। किसी का मन हरने के लिये नहीं—पर इसलिये कि रूप एक प्रकारका गौरव होता है। आज इस महा अवसर पर देशके पुरुष, देशकी स्त्रियोंके द्वारा, एक बार जगद्धात्री को देख लें। बाहरी रूप न होनेसे उनके नेत्र देवीको नहीं पहचानते। सन्दीप बाबू क्या मुझमें देशकी उस

जाग्रत शक्तिको देख सकेंगे ? नहीं वह मुझे एक साधारण रु
समझेंगे—अपने मित्रकी गृहणी मात्र ।

उस दिन प्रातः ही मैंने अपने बालोंको खूब धो-धोकर ए
लाल रेशमके फीतेसे बाँध लिया। दोपहर के लिये खानेक
निमन्त्रण था, इसीलिये बाल सूखा कर चोटी गूंथनेका अवकाश
नहीं था। मैंने उसी दिन जरीके किनारेकी एक सफेद मद्रास
साड़ी पहनी। मेरी आधी आस्तीनों की जाकट में भी पतली
सी जरीकी गोट लगी थी।

मेरा विचार था कि इन कपड़ों में संयम और सादगी दोन
बातें हैं—इससे अधिक सादापन और क्या होगा ? इसी सम
बड़ी जिठानी आ कर मुझे सिर से पैर तक बड़े गौर से देख
लगीं। इसके बाद वह दोनों होंठ खूब बिचका कर जरा-जर
हँसने लगीं। मैंने पूछा,—"बीबी क्यों हँस रही हो ?"

वह बोली,—"तेरा साज देख रही हूँ ।"

मैं मन-ही-मन रुष्ट होकर बोली, —"इसमें हँसी की ऐसी
क्या बात है ?"

वह फिर जरा एक बार टेढ़ा मुंह करके हँसी और बोलीं—
"बात बुरी नहीं, छोटी रानी, खूब सजती है ! केवल यह
सोचती हूँ कि अपनी वह विलायती दुकान वाली छाती खुली
जाकट पहन लेतीं तो साज बिलकुल ही ठीक हो जाता ।"

यह कहकर वह केवल मुँहसे या आँखसे नहीं बल्कि सिरसे
पाँव तक सारे शरीरसे व्यङ्गपूर्ण हँसी हँस कर कमरेसे चली
गई। मुझे बड़ा गुस्सा आया, मैने सोचा कि सब फेंक-फाँकक

रोजके पहिरनेकी एक मोटी-सी साड़ी पहन लूँ। पर मैं ऐसा क्यों न कर सकी नहीं जानती। मन-ही-मन कहने लगी यदि मैं भलेमानसोंके-से अच्छे कपड़े पहन कर सन्दीप बाबूके सामने न जाऊँगी, तो स्वामी जरूर नाराज होंगे—स्त्रियाँ ही तो समाज की श्री हैं।

मैंने सोचा था कि सन्दीप बाबू जब भोजन के लिये बैठेंगे उसी समय उनके सामने जाऊँगी। खिलाने-पिलानेके कामकी ओटमें पहली बार का संकोच बहुत कुछ दूर हो जायगा। पर भोजन तैयार होनेमें आज देर हो रही है—प्रायः एक बज चुका है। इसीलिये स्वामीने परिचय कराने के लिये मुझे बुला भेजा है कमरेमें घुसते ही पहली बार सन्दीप बाबूकी ओर देखनेमें बड़ी लज्जा मालूम हुई। किसी प्रकार उसे दबाकर साहस करके कह बैठी,—"आज खानेमें आपको बड़ी देर हो गई।"

वे बिना संकोच मेरे पास की कुरसी पर बैठ कर बोले,—"देखिये अन्न तो रोज ही किसी प्रकार मिल जाता है, पर अन्नपूर्णा परदे ही में रहती हैं। आज अन्नपूर्णा आई हैं, अन्न परदे ही में रह जाय तो क्या है?"

जैसा जोर उनकी वक्तृता में था वैसा ही व्यवहार में भी था। सब जगह बिना बिलम्ब अपना यथोचित आसन प्राप्त कर लेनेका मानों उन्हें अभ्यास था। कोई मनमें कुछ सोच सकता है इस बातसे उन्हें मतलब ही नहीं था। निकट आकर बैठनेका मानों उन्हें स्वाभाविक अधिकार है, और यदि इसमें कोई दोष न दे तो दोष उसीका है।

मुझे लज्जा होने लगी, सन्दीप बाबू मनमें यह न सोचें कि यह तो बिलकुल प्राचीन समयकी जड़ पदार्थ मात्र मालूम पड़ती है। मुँहसे बातोंकी झड़ी लग जाय, कहीं भी बाधा न पड़े, एक-एक उत्तर सुन कर वह अचम्भेमें रह जायँ, यह सब कुछ मुझसे किसी प्रकार भी बन न पड़ा, मुझे भीतर ही भीतर बड़ा कष्ट होने लगा—अपने आपको हजार बार भर्त्सना करके सोचने लगी, मैं क्यों ऐसे एकदम उनके सामने आ गयी।

जब खाना-पीना किसी-न-किसी तरह समाप्त हो गया तो मैं जल्दीसे जाने लगी। वह फिर उसी प्रकार बिना संकोच दरवाजेके पास आ मेरा रास्ता रोक कर कहने लगे,—"आप मुझे पेटू न समझें, मैं यहाँ खानेके लोभसे नहीं आया। मेरा लोभ तो केवल यही है कि आपने बुलाया था, यदि आप खाना पीना खतम होते ही भाग जायँगी, तो यह अतिथिके साथ बड़ा अन्याय होगा।"

यही बात दृढ़ता और आत्म-विश्वासके साथ न कही जाती तो बड़ी बेसुरी सुनाई पड़ती और फिर वह मेरे स्वामीके ऐसे बड़े मित्र थे कि मैं उनकी भाभीके समान थी, मैं जब लज्जाके साथ घोर लड़ाई करके सन्दीप बाबूकी प्रबल आत्मीयताके क्षेत्रमें पहुँचने की चेष्टा कर रही थी, उस समय स्वामी मेरी कठिनाई देखकर मुझसे कहने लगे, "अच्छा तो तुम खाने-पीनेसे निपट कर आ जाना।"

सन्दीप बाबूने कहा,—"पर वादा करती जाइये। धोखा न दीजियेगा।"

मैं ज़रा हँस कर बोली,—"मैं अभी आती हूँ।"

उन्होंने कहा,—"मैं आपका क्यों विश्वास नहीं करता, बताऊँ? आज निखिलेशका ब्याह हुए नौ बरस हो गये। आप बराबर नौ बरस से मुझे चाल देती आई हैं। अबके यदि फिर नौ बरस करनेका इरादा हो तो बस आपके दर्शन हो चुके।"

मैंने आत्मीयता दिखाते हुए मृदु कण्ठसे कहा,—"क्यों ऐसा क्यों होगा?"

वह बोले,—"मेरी जन्मपत्री में लिखा है कि मैं थोड़ी ही उम्रमें मरूंगा। मेरे बाप-दादोंमें कोई भी तीस बरससे आगे नहीं बढ़ा। मेरा यह सत्ताईसवाँ बरस है।"

उन्होंने समझ लिया था कि यह बात मेरे दिलपर लगेगी। इस बार मेरे मृदु कण्ठमें जान पड़ता है करुण-रसका भी एक छींटा था। मैंने कहा,—"सारे देशकी आशीर्वाद से आपका संकट अवश्य कट जायगा।"

वह बोले,—"देशका आशीर्वाद देश-लक्ष्मियोंके ही मुँहसे लूँगा। इसी कारण तो आपको इस व्याकुलतासे आनेके लिये कह रहा हूँ। फिर मेरा स्वस्त्ययन आज ही से आरम्भ हो जायगा।"

सन्दीप बाबूकी सभी बातोंमें ऐसा जोर था कि जो बात और किसीके मुँहसे बिल्कुल असह्य होती, उनके मुँहसे उचित ही जान पड़ती थी। हँसते-हँसते कहने लगे,—"देखिये अपने इन स्वामीको ज़ामिन बनाती जाइये। आप न आयेंगी तो ये भी न जा सकेंगे।"

मैं जब आने लगी तो उन्होंने फिर कहा,—"मुझे ज़रा-सी और जरूरत है।"

मैं रुक कर खड़ी हो गयी। वे बोले,—"डरिये मत, एक ग्लास चाहिये। आपने देखा होगा मैंने खाते समय जल नहीं पिया—खाने से जरा पीछे पीता हूँ।"

इसपर मुझे उत्कण्ठित होकर पूछना ही पड़ा,—"क्यों आप ऐसा करते हैं?"

किसी समय जो उन्हें अजीर्ण रोग हुआ था उसका इतिहास चला। फिर यह भी सुना कि प्रायः सात मास तक उन्हें कैसा असह्य कष्ट उठाना पड़ा। एलोपैथ, होमियोपैथ सब प्रकार के इलाजों से कुछ न होकर अन्तमें कविराजी इलाज से उन्हें कैसा आश्चर्य-जनक लाभ हुआ था। यह सब सुना कर वह हँसते-हँसते कहने लगे,—"भगवान् ने मेरी बीमारियों को भी ऐसा बनाया है कि तुरन्त स्वदेशी दवा न मिलने से वे विदा ही होना नहीं चाहतीं।"

मेरे स्वामी इतनी देर बाद बोले,—"और विदेशी दवाओं की शीशियाँ भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ना चाहतीं। तुम्हारे कमरे में जो एक दम तीन आलमारी........।"

"वह सब क्या है, जानते हो? प्युनिटिव*पुलिस के सामान हैं। वे केवल इसलिए नहीं हैं कि उनका कुछ प्रयोजन है—आधुनिक शासन में ये योंही सिर पड़ जाती हैं—केवल दण्ड ही देना नहीं पड़ता, डण्डे भी खाने पड़ते हैं।"

---

*दण्डदात्री

कमरे से बाहर आकर देखा कि छोटी जिठानी खिड़की की झिलमिली ज़रा-सी खोले हुए बरामदे में खड़ी हैं। मैंने पूछा,—"तुम यहाँ कैसे खड़ी हो?" उन्होंने फुसफुसा कर उत्तर दिया,—"ज़रा बातें सुन रही हूँ।"

जब लौट कर आयी तो सन्दीप बाबूने करुण स्वरसे कहा,—"आज जान पड़ता है आपने कुछ भी नहीं खाया।"

सुन कर मुझे बड़ी लज्जा हुई। मैं बहुत ही जल्दी लौट कर आ गयी। बड़े घरके लोगोंको खानेमें जितना समय लगाना चाहिये, उतना नहीं लगा। उस दिन मेरे खानेमें न खानेका ही अंश अधिक था—समयका हिसाब लगानेसे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता। पर यह हिसाब वास्तव में कोई लगा बैठा है इसका मुझे बिलकुल ध्यान नहीं था।

जान पड़ता है सन्दीप बाबूपर भी मेरी लज्जा प्रकट हो गयी, इसीलिये मुझे और भी लज्जा हुई। वह कहने लगे,—"आप तो बनकी हिरनी के समान भागने ही पर उतारू थीं, तो भी आपने इतना कष्ट सह कर जो अपनी बात रक्खी यह मेरा कुछ कम पुरस्कार नहीं है।"

मैं भली-भाँति उत्तर न दे सकी; मेरा मुँह लाल हो गया और मैं पसीने-पसीने होकर एक कोचके कोने पर बैठ गयी। मैंने देश की नारी-शक्ति की मूर्त्ति धारण करके जिस प्रकार निःसंकोच और सगौरव सन्दीप बाबूके सामने आकर केवलमात्र दर्शन-दान द्वारा उनके ललाट पर जय-अभिषेक करनेकी कल्पना की थी, वह अभी तक ज़रा भी पूरी नहीं हुई।

सन्दीप बाबूने जान-बूझ कर मेरे स्वामीसे तर्क छेड़ दिया वह जानते थे कि तर्क करते समय उनके तीक्ष्ण धारवाले मस्तिष्क की समस्त उज्वलता जगमगा उठी है, इसके बाद भी मैंने बराबर देखा कि मेरे सामने रहते हुए वह तर्क का ज़रा-सा अवसर भी हाथ से जाने देते थे।

'बन्देमातरम्' मन्त्र के विषय में वह मेरे स्वामीका मत जानते थे। उसीका उल्लेख करके उन्होंने कहा,—"देश-कार्य्यमें मनुष्यकी कल्पनावृत्तिका जो एक स्थान है, उसे क्या तुम बिलकुल ही नहीं मानते निखिल ?"

"एक स्थान है यह मैं मानता हूँ। पर सब जगह उसीका स्थान है यह मैं नहीं मानता। देश क्या वस्तु है यह मैं अपने मनमें खूब समझ लेना चाहता हूँ, और दूसरों को भी समझाना चाहता हूँ—ऐसी बड़ी वस्तु के विषय में किसी माया-मन्त्र का प्रयोग करते हुए मुझे लज्जा होती है और डर भी लगता है।"

"तुम जिसे माया-मन्त्र कहते हो तो मैं उसीको सत्य समझता हूँ। मैं देशको वास्तवमें देवता मानता हूँ। मैं नर-नारायणका उपासक हूँ—जिस प्रकार मनुष्य द्वारा भगवान् के सत्य का प्रकाश होता है, उसी प्रकार देश द्वारा भी होता है।"

"इसी बातपर यदि पूर्ण विश्वास है तो तुम्हारे मनमें एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में और एक देश से दूसरे देश में कुछ भी अन्तर नहीं रहा।"

"यह बात सच है पर हमारी शक्ति थोड़ी है, इसी कारण हम अपने देश की पूजा द्वारा ही देश-नारायण की पूजा करते हैं।"

"पूजा करनेको मैं मना नहीं करता। पर अन्य देशों में जो नारायण हैं उनके प्रति विद्वेष रखते हुए यह पूजा किस प्रकार पूर्ण हो सकती है?"

"विद्वेष भी पूजाका अङ्ग है। किरात-वेशी महादेव के साथ युद्ध करके ही अर्जुन ने वरदान लिया था। हम यदि भगवान् से लड़े तो भी वह एक दिन हमसे प्रसन्न होंगे।"

"यदि ऐसा है तो जो लोग देशकी शत्रुता करते हैं और जो देशकी सेवा करते हैं दोनों ही भगवान् के उपासक हुए। फिर देश-भक्ति प्रचार करने की क्या ज़रूरत है?"

"अपने देश की बात दूसरी है—उसके प्रति हृदय में विशेष भक्ति-भाव की आवश्यकता है।"

"पर केवल अपने देश के प्रति क्यों? उसकी अपेक्षा स्वयं अपने ही सम्बन्ध में अधिक भक्ति-भाव की आवश्यकता है। अपने हृदय में जो नर-नारायण हैं उनकी पूजा का मन्त्र ही तो देश-देशान्तरों में गूंजा करता है।"

"निखल, तुम्हारा यह सब तर्क केवल बुद्धिकी सूखी विवेचना है। हृदय भी कोई वस्तु है, यह क्या तुम बिलकुल ही नहीं मानते?"

"मैं तुमसे सच कहता हूँ सन्दीप, देशको जब तुम देवता कह कर देशके लोगोंकी बुद्धिको भ्रान्ति में डालते हो, उस समय मेरा हृदय बड़ा व्याकुल होता है। देशका कल्याण करनेके बहाने मैं देशके लोगोंका अकल्याण नहीं कर सकता।"

भीतर-ही-भीतर मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा था। मुझसे

और नहीं रहा गया। मैं बोल उठी,—"इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी रूस ऐसा कौन-सा देश है जिसका इतिहास अपने देशके लिए चोरी करने का इतिहास नहीं?"

"उस चोरीकी जवाबदेही उन्हें करनी पड़ेगी, इस समय भी करनी पड़ रही है। इतिहास अभी खत्म नहीं हुआ।"

सन्दीप बाबूने कहा,—"अच्छा तो हम भी वही करेंगे। चोरीके मालसे पहले घरको खूब भर लें, फिर धीरे-धीरे दीर्घकाल तक हम भी जवाबदेही करेंगे। पर मैं पूछता हूँ तुमने जो कहा कि वे इस समय जवाबदेही कर रहे हैं—यह कैसे?"

"रोमने जिस समय अपने पापकी जवाबदेही की थी, उस समय उसे किसीने नहीं देखा। उस समय उसके ऐश्वर्य्यकी सीमा नहीं थी। इसी प्रकार जब बड़ी-बड़ी लुटेरी सभ्यताओं की जवाबदेही का दिन आता है, तो बाहर से मालूम नहीं पड़ता। पर एक बात क्या तुम देखते नहीं? उनकी राजनीति की झूठ भरी धोखेबाजी, विश्वासघातकता, गुप्तचरवृत्ति, आत्म-गौरव (प्रेस्टिज़) की रक्षाके लिए न्याय और सत्यका बलिदान, इस सब पापका बोझ जो सिरपर है, यह क्या कम है? देशसे पहले जो धर्मको नहीं मानते, मैं कहता हूँ वे देशको भी नहीं मानते।"

अकस्मात् सन्दीप बाबू मेरी ओर देख कर बोले,—"आप क्या कहती हैं?"

मैंने कहा,—मैं बालकी खाल निकालना नहीं चाहती। मैं तो मोटी बात ही कहूँगी। मैं मनुष्य हूँ, मुझे लोभ है, मैं देशके

लिए लोभ करूंगी—मुझे क्रोध है, मैं देशके लिए क्रोध करूँगी—इतने दिनके अपमानका बदला लूँगी; मुझे मोह है, मैं देशके लिए मोह करूँगी। मैं देशको ऐसे प्रत्यक्ष रूपमें देखना चाहती हूँ, जिसको माँ कह सकूँ, देवी कह सकूँ, दुर्गा कह सकूँ, जिसके सामने बलिदानके पशुको बलि देकर रक्तारक्त कर दूँ। मैं मनुष्य हूँ, मैं देवता नहीं हूँ।"

सन्दीप बाबू कुरसीसे उठे और सीधा हाथ आकाशकी ओर उठा कर एकदम पुकार उठे,—"हुर्रे हुर्रे!" फिर तुरन्त ही संशोधन करके बोले,—"बन्देमातरम् बन्देमातरम्!"

फिर सन्दीप बाबूने कहा,—"देखो निखिल, सत्य स्त्रियोंके प्राणके साथ मिलकर बिल्कुल एक हो गया है। हमारे सत्यमें रंग नहीं, आत्मा नहीं केवल युक्ति शेष है। इसलिए स्त्रियाँ ही भलीभांति निष्ठुर होना जानती हैं पुरुष नहीं जानते, क्योंकि धर्मबुद्धि पुरुषोंको दुर्बल कर देती है। स्त्रियाँ बिना संकोच सर्वनाश कर सकती हैं, इसलिए उनका अन्याय अत्यन्त सुन्दर होता है, पुरुषोंका अन्याय भी भोंडा होता है, क्योकि उनके मनमें न्यायबुद्धिकी द्विविधा लगी रहती है इसलिए मैं तुमसे कहे देता हूँ आजके दिन हमारी स्त्रियाँ ही हमारे देशको बचायँगी। आज धर्म-कर्म विचार-विवेकका दिन नहीं है, आज हमें निर्विकार होकर निष्ठुर होना पड़ेगा, अन्याय करना पड़ेगा, आज अपने देशकी स्त्रियोंके हाथसे रक्त-चन्दन लगवा कर पापको सुशोभित करना पड़ेगा। हमारे कवि क्या कहते हैं याद है?—

एस पाप, एस सुन्दरी !
तव चुम्बन अग्नि-मन्दिरा रक्ते फिरुक् संचरी !
अकल्याणेर वाजुक् शंख,
ललाटे लेपिया दाए कलंक
निर्लाज कालो कलुष पंक
बुके दाओ, प्रलयंकरी ?

(आओ पाप आओ सुन्दरी ! अपने चुम्बनकी अग्नि-मदिराका मेरे रक्तमें संचार कर दो। अकल्याण का शंख बजने दो, माथेपर कलंक लगा दो, और हे प्रलयङ्करी, निर्लज्ज, कलुषताका कीचड़ मेरी छातीपर मल दो।)

आज धिक्कार है उस धर्मको, जो प्रसन्न चित्त होकर सर्वनाश करना नहीं जानता।"

यह कहकर उन्होंने धरतीपर दो बार जोरसे पैर मारा—क़ालीनके ऊपरसे बहुत-सी निद्रित धूल घबरा कर उठ खड़ी हुई। उनके मुखकी ओर देखकर मेरे सारे शरीरमें रोमांच हो उठा।

वह फिर अकस्मात् गरज कर बोले,—"जो आग घरको फूँकती है, जो संसारको जलाती है, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ तुम उसी आगकी सुन्दरी देवी हो आज हम सबको नष्ट हो जानेका दुर्जय तेज प्रदान करो, हमारे उन्मादको सुन्दर बना दो।"

ये आखिरी बातें उन्होंने किससे कहीं, मैं न समझ सकी। वे बन्देमातरम् कह कर जिसकी बन्दना करते हैं या तो उससे कही या फिर उससे जो देशकी स्त्रियोंके प्रतिनिधिके रूपमें उनके सामने मौजूद थी।

जान पड़ता था और भी कुछ कहेंगे, पर इसी समय मेरे स्वामी उठे और उनके शरीरपर हाथ रख कर बोले,—"सन्दीप, चन्द्रनाथ बाबू आये हैं।"

मैं एकदम चौंक पड़ी और फिरकर देखा कि सौम्यमूर्ति बूढ़े मास्टर दरवाजेके पास खड़े सोच रहे हैं कि अन्दर घुसें या नहीं। मुझसे मेरे स्वामीने आकर कहा,—"मेरे मास्टर साहब हैं, इनका परिचय मैं तुम्हें अनेक बार दे चुका हूँ, इन्हें प्रणाम करो।"

मैंने उनके चरणोंकी धूल लेकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया,—भगवान तुम्हारी सदा रक्षा करें।"

उस समय मुझे इसी आशीर्वादकी आवश्यकता थी।

निखिलेशकी आत्म-कथा

एक दिन मैंने विमलासे कहा था, "तुम्हें बाहर निकलना चाहिये।"

उस समय एक बात मैंने नहीं सोची। किसीको उसके पूर्ण मुक्तरूपमें देखनेकी इच्छा करनेपर उसके ऊपर अधिकार रखने की आशा छोड़ देनी पड़ती है। यह बात मुझे क्यों नहीं सूझी? स्त्रीके ऊपर जो स्वामीका निश्चित अधिकार होता है, क्या उसके अहङ्कारके कारण?

मुझे अहङ्कार था कि सत्यके सम्पूर्ण अनावृत रूपको देख सकनेकी शक्ति मुझे प्राप्त है। आज उसी की परीक्षा हो रही है।

मेरे विषयमें एक बात विमला आजतक नहीं समझ सकी। ज़बरदस्तीको मैंने सदा दुर्बलता समझा है, पर विमला पुरुषके वेषमें अन्यायकारीको पसन्द करती है। उत्कट और साधारण होने पर उसके मनकी प्रीति है।

पर मेरा दृढ़ प्रण यही है कि उत्तेजना की कड़ी शराब पीकर पागलोंके समान कभी देशकार्यमें न लगूँगा।

आज समस्त देशके भैरवी-चक्रमें शराबको लेकर जो मैं बैठना नहीं चाहता, इससे मुझे सभीका बुरा बनना पड़ा है। देश के लोग सोचते हैं कि मैं खिताब चाहता हूँ या पुलिससे डरता हूँ; पुलिस सोचती है कि मेरा अवश्य कुछ गुप्त प्रयोजन है, इसलिए मैं ऐसा भलामानस बना हुआ हूँ। फिर भी मैं इसी अविश्वास और अपमानके मार्गपर चलरहा हूँ।

मेरा विश्वास है कि जो लोग देशको साधारण और सत्य भावसे देश समझ कर, मनुष्यपर मनुष्यवत् श्रद्धा रख कर सेवा और भक्तिका उत्साह नहीं पाते, जो गुल मचा कर, माँ कह कर, देवी कह कर, मन्त्र पढ़ कर केवल उत्तेजनाकी ही खोजमें रहते हैं, उनके मनमें देश-भक्तिका नहीं, बल्कि नशेबाज़ीका ध्यान रहता है।

मेरा बहुत दिनसे विचार है कि सन्दीपकी प्रकृतिमें कुछ लालसाका समावेश है। सुख-विलासकी आसक्ति धर्म-सम्बन्ध में उसे भूलमें डाल देती है और देशके काममें कुकर्मकी राह चलाती है। उसकी तीक्ष्ण बुद्धिके कारण उसकी प्रवृत्ति एक मान्य वस्तु दिखाई पड़ती है। उसे विलासकी तृप्ति भी चाहिए

और विद्वेषका नाश भी। रुपयेका भी सन्दीपको कुछ लोभ है—यह बात विमलाने मुझसे पहले ही कही थी। यह बात मैं स्वयं भी जानता था, पर रुपयेके सम्बन्धमें सन्दीपके साथ मैं कभी कंजूसी न कर पाया। पर आज विमलाको यह बात समझाना कठिन होगा कि देशके सम्बन्धमें भी सन्दीपका भाव उसी स्थूल लोलुपताका एक रूपान्तर है। सन्दीपकी विमला मन-ही-मन पूजा करती है, इसीसे सन्दीपके विषयमें उससे कुछ कहनेको मेरा मन नहीं होता। सम्भव है मेरे मनमें कुछ ईर्ष्या हो उठे या कुछ अत्युक्ति कर बैठूँ। सन्दीपका जो चित्र मेरे मनमें अङ्कित हो उठा है, शायद उसकी शाखाएँ मेरी वेदनाके तीव्र तापसे टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी हों। तो भी मनमें रखनेसे कह डालना ही अच्छा है।

अपने मास्टर साहब चन्द्रनाथ बाबू को मैं प्रायः तीस बरस से जानता हूँ। वह न निन्दा से डरते हैं, न विपत्ति से और न मृत्यु से। मैंने जिस घर में जन्म लिया, इसमें मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं था। पर इन्हीं सज्जन पुरुष ने अपनी शान्ति, अपने सत्य तथा अपनी पवित्र मूर्ति का मेरे जीवन में संचार कर दिया। इसी कारण मैंने कल्याण को इस प्रकार सत्य और प्रत्यक्ष रूप में देख पाया है।

यही चन्द्रनाथ बाबू उस दिन मेरे पास आकर बोले,—"क्या सन्दीप का यहाँ और अधिक ठहरना जरूरी है?"

कहीं अमंगल की जरा भी हवा चले तो उनके हृदय पर जाकर लगती थी। वह तुरन्त समझ जाते थे। उनका मन सहज में

विचलित नहीं होता। पर उस दिन उन्हें एक भयंकर विपत्ति की छाया दिखाई पड़ी थी। उन्हें मुझसे कितना स्नेह है यह मैं ही जानता हूँ।

चाय पीते समय मैंने सन्दीपसे कहा,—"तुम रंगपुर नहीं जाओगे? वे लोग समझ रहे हैं कि मैंने हीं तुम्हें ज़बरदस्ती रोक रक्खा है।"

विमला चायदानीसे प्यालेमें चाय डाल रही थी। एकदम उसका मुँह फीका पड़ गया। उसने सन्दीपके मुँहकी ओर एक बार तिरछी नज़र डाल कर देखा।

सन्दीपने कहा,—"हम जो घूम-घाम कर स्वदेशी प्रचार करते फिरते हैं मेरा विचार है कि इसमें आवश्यकतासे अधिक शक्ति खर्च होती है। मैं सोचता हूँ कि एक-एक जगह को केन्द्र बनाकर काम किया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है।"

यह कह कर उसने विमला की ओर देखकर कहा,—"आपका भी क्या यही विचार नहीं है?"

विमला पहले तो कुछ उत्तर न दे सकी, फिर कुछ सोच कर बोली,—देश का काम दोनों तरह हो सकता है। चारों ओर फिरकर काम करना या एक जगह बैठकर काम करना—इनमें से जिस ढङ्ग से काम करने को आपका मन चाहे, वही ढङ्ग आपके लिए उचित है।"

सन्दीप ने कहा,—"तो फिर सच बात कहूँ? मेरे हृदय को सब समय पूर्ण रख सके ऐसी शक्ति का स्रोत मुझे आजतक नहीं मिला। इसी कारण केवल देश-विदेश घूम कर नये-नये लोगों के

मनको उत्तेजित करके उसी उत्तेजनासे मुझे जीवनका तेज इकट्ठा करना पड़ता है। आज आप ही मेरे लिए देशकी वाणी हैं। यह अग्नि तो मैंने किसी पुरुषमें नहीं देखी। नहीं, लज्जा न कीजिये—आपका स्थान मिथ्या लज्जा और संकोचसे बहुत ऊपर है। आप ही हमारे छत्तेकी मक्खी रानी हैं—हम आप ही को चारों ओरसे घेर कर काम करेंगे—उस कामकी शक्ति आप ही की होगी—उस कामकी केन्द्र आप ही होंगी।"

लज्जा और गौरवसे विमलाका मुँह लाल हो उठा और चायके प्यालेमें चाय डालते हुए उसका हाथ काँपने लगा।

चन्द्रनाथ बाबू और एक दिन आकर कहने लगे,—"तुम दोनों कुछ दिनके लिए दारजिलिङ्गकी सैर कर आओ। तुम्हारा मुँह देखनेसे मालूम होता है कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। शायद अच्छी तरह नींद नहीं आती?"

सन्ध्या समय मैंने विमलासे पूछा,—"विमला दारजिलिङ्ग की सैर करने चलोगी?"

मैं जानता हूँ दारजिलिङ्ग जाकर हिमालय पर्वतको देखनेकी विमलाकी बड़ी इच्छा थी। पर उस दिन उसने कहा,—"ना, अभी रहने दो।"

देशकी क्षति होनेकी आशङ्का थी।

सन्दीपकी आत्म-कथा।

जिनका मन कामनासे परिपूर्ण है, जो अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे समस्त प्राण देकर सुख भोगना जानते हैं और जिनको द्विधा तथा संकोच नहीं है, वही प्रकृतिके वर पुत्र हैं। उन्हींके लिए प्रकृतिने सब सुन्दर और बहुमूल्य वस्तुएँ सजाकर रक्खी हैं। वही तैर कर नदियाँ पार कर जायँगे, कूद कर दीवारें फाँद जायँगे और लात मार कर दरवाजे तोड़ डालेंगे। लेने योग्य वस्तुएँ छीन लेंगे। इसीमें यथार्थ आनन्द और इसीमें बहुमूल्य वस्तुओंका मूल्य है। प्रकृति आत्म-समर्पण करती है—पर ऐसे ही डाकुओंके लिए। प्रकृतिको यह ज़बरदस्ती छीना-झपटी लगती है—इसी कारण वह अधमरे तपस्वीके गलेमें वसन्तके फूलोंकी स्वयं वरमाला पहनाना नहीं चाहती। नौबतखानेमें शहनाई बज रही है, शुभ मुहूर्त्त निकला जा रहा है, मन उदास हो गया। वर कौन है? मैं ही वर हूँ—मशाल जला कर जो धावा कर सकता है, वरका आसन उसीका है। प्रकृतिका वर सदा बिन बुलाया आता है।

लज्जा? नहीं, मैं लज्जा नहीं करता। मुझे जो चाहिए मैं माँग कर ले लेता हूँ। बिना माँगे भी ले लेता हूँ। लज्जाके कारण जिन्होंने लेने योग्य वस्तु नहीं ली, वे उसी न लेनेके दुःखको दबा रखनेके लिए लज्जाको बड़ी अच्छी वस्तु समझने लगते हैं। जिस पृथ्वीपर हमने जन्म लिया वह वास्तविकताकी पृथ्वी है। बड़ी-

बड़ी बातें बना-बनाकर स्वयं अपने आपको धोखा देकर जो मनुष्य इन वास्तविक वस्तुओंके हाटसे खाली हाथ और खाली तेज चला गया, उसने उस कड़ी मिट्टीकी पृथ्वीपर जन्म ही क्यों लिया था? मैं जो कुछ चाहता हूँ खूब ही चाहता हूँ। मैं अपने इष्ट-अर्थको दोनों हाथोंसे मलूँगा, दोनों पैरोंसे दलूँगा, सारे शरीरमें रगड़ूँगा, खूब पेट भर कर खाऊँगा। चाहनेमें मुझे लज्जा नहीं होती, न लेनेमें संकोच होता है। जो नियमित उपवास करते-करते सूख-सूख कर बहुत समयकी खाली पड़ी हुई खाटके खटमलोंके समान सफेद पड़ गये हैं, उनके रुद्ध कंठकी भर्त्सना मेरे कानों तक न पहुँच सकेगी।

मैं दुबका-चोरी करना नहीं चाहता, कापुरुषता प्रकट होती है, पर यदि आवश्यकता होनेपर धोखा न दे सकूँ तो इसमें भी कापुरुषता है। तुम जिस चीज़को चाहते हो दीवार बना कर रखना चाहते हो, मैं जिस चीज़को चाहता हूं सेंध लगा कर लेना चाहता हूँ। तुम्हें लोभ है, तुम दीवार बनाओ, मुझे लोभ है, मैं सेंध लगाऊँगा। तुम चाल चलोगे मैं उसका काट करूँगा। यही प्रकृतिकी वास्तविक बात है। इसीके आधारपर पृथ्वीके राज्य-साम्राज्य और बड़े-बड़े कारखाने स्थिर हैं। यह सब देवता जो स्वर्गसे आ-आकर वहाँकी बोलीमें बातें कहा करते हैं, यह बातें वास्तविक नहीं है। इसी कारण उनके उपदेश इतनी चीख़-पुकार पर भी केवल दुर्बलोंके घरके कोनेमें स्थान पाते हैं, जो सबल होकर पृथ्वीका शासन करते हैं, उनके लिए ये सब बातें नहीं हैं। वे भी यदि इन बातोंको सत्य मान लें तो अपना सारा

बल खो बैठें, क्योंकि ये बातें सत्यसे बहुत दूर हैं। जो यह बात समझनेमें द्विधा नहीं करते, माननेमें लज्जा नहीं करते, वही कृतकार्य होते हैं, और जो अभागा एक ओर प्रकृतिको और एक ओर इन देवताओंको मानकर वास्तव-अवास्तव दोनोंमें टाँग अड़ाता है, वह न आगे बढ़ सकता है और न पीछे हट सकता है।

जान पड़ता है कुछ लोग मरनेकी प्रतिज्ञा करके ही पृथ्वीपर जन्म लेते हैं। सूर्यास्त समयके आकाशके समान मुमूर्षतामें भी एक प्रकारका सौन्दर्य है, वे लोग उसीको देख कर मुग्ध हैं। हमारा निखिलेश भी इसी मतका अनुयायी है—उसे निर्जीव मानना ही पड़ेगा। चार बरस हुए उसके साथ इसी बात पर मेरी बड़ी बहस हुई थी। उसने मुझसे कहा था,—"बलसे ही हमारे काम बनते हैं यह मैं मानता हूँ, पर तुम बल किसे कहते हो? वास्तविक बल तो त्याग ही से मिलता है। पूंजीके व्यय ही में व्यवसायका बल है।"

मैंने कहा,—"इससे तो जान पड़ता है कि तुम सदा घाटेके ही नशेमें मस्त रहते हो।"

निखिलेशने कहा,—हाँ, जिस प्रकार अण्डेके भीतरका पक्षी अण्डेके खोलको तोड़नेकी चिन्तामें मस्त हो उठता है। खोल एक वास्तव चीज है और उसके बदलेमें उसे केवल हवा और उजाला ही मिलता है—फिर तुम्हारे मतके अनुसार तो वह घाटे ही में रहा।"

जब निखिलेश इस प्रकार रूपक का प्रयोग करने लगता है, तो उसे समझना कठिन है कि उसकी बातें वास्तविकतासे

कितनी दूर है। पर यदि वह उपमा और रूपक ही में प्रसन्न है तो हुआ करे—हम पृथ्वी के मांसभक्षी जीव हैं, हमारे दाँत हैं, नाखून हैं, हम दौड़ सकते हैं, पकड़ सकते हैं, चीर-फाड़ सकते हैं—हम घास खाकर सबेरे से सन्ध्या तक उसी की जुगाली करके दिन नहीं बिता सकते। इस पृथ्वी पर हमारे खाने की जो व्यवस्था है, उसमें रूपकवालों को हम कभी बाधा न डालने देंगे—चाहे चोरी करें, चाहे डाका डालें; नहीं तो हमारे प्राण बचना कठिन है। हम तो मृत्यु के प्रेम में मुग्ध होकर पद्म के पत्ते पर शयन किये हुए दशम दशा में प्राण त्याग करनेको राजी नहीं है—इसमें चाहे हमारे वैष्णव बाबाजी कितने ही दुखी क्यों न हों।

मेरी ये बातें सुन कर सब कहेंगे कि तुम्हारा तो मत ही अलग है, पर सच तो यह है कि पृथ्वी पर सब इसी नियम पर चलते हैं, हाँ बातें और ही प्रकार की करते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी ये बातें सम्मति-मात्र नहीं—मेरे जीवन में इनकी परीक्षा हो चुकी है। मैं जो चाल चलता हूँ उससे स्त्रियों का हृदय जीतने में ज़रा भी देर नहीं लगती। वे वास्तविक पृथ्वी की जीव हैं, वे पुरुषों के समान कल्पना के खोखले बैलून में चढ़ कर बादलों में घूमती नहीं फिरतीं। वे मेरी आँखोंमें, मुँहमें, देहमें, मनमें बातों में और भावमें एक प्रबल इच्छा का प्रकाश देखती हैं। वह इच्छा किसी तपस्या द्वारा नष्ट नहीं हो सकती, न किसी तर्क द्वारा उससे पीठ फिरा कर भागा जा सकता है। वह एकदम भरपूर इच्छा है और अग्निमय बाण के समान गरजती हुई चलती है।

स्त्रियाँ अपने मनमें जानती हैं कि यह दुर्गम इच्छा ही जगत की आत्मा है। यह आत्मा अपने अतिरिक्त और किसी को नहीं मानती। इसी कारण चारों ओर विजयी होती है। मैंने अनेक बार देखा है कि मेरी इसी इच्छा की बाढ़ में स्त्रियाँ अपने को बहा देती हैं—वे मरेंगी या बचेंगी इस बात का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। जिस शक्ति से स्त्रियों पर विजय हो वही वीरों की शक्ति है, वही वास्तविक जगत के पानेकी शक्ति है। जो लोग और किसी जगत की प्राप्तिकी इच्छा करते हैं, वे अपनी इच्छाकी धारा पृथ्वी की ओर से हटा कर आकाश की ओर ले जायें। मैं भी देखूँ उनका यह फुआरा कहाँ तक उठता है और कितने दिन चलता है! इन कल्पना-विहारी सूक्ष्म प्राणियों के लिए स्त्रियों की सृष्टि नहीं हुई!

विमला की आत्म-कथा

मैं सोचती हूँ, न जाने मेरी लज्जा कहाँ चली गई थी। स्वयं अपने ऊपर नजर डालने के लिए मुझे समय नहीं मिलता था—दिन और रात मानो मुझे एक भँवर में डाल कर घुमा रहे थे। इसी कारण लज्जा को मेरे मनमें प्रवेश करने का मौक़ा ही नहीं था।

एक दिन मेरे सामने ही मेरी छोटी जिठानी ने हँसते-हँसते

मेरे स्वामी से कहा, "भैया तुम्हारे इस घर में अब तक तो स्त्रियाँ ही रोती रही हैं, पर अब पुरुषों की बारी आई है, अबसे हम ही तुम्हें रुलायेंगी, तुम क्या कहती हो, छोटी रानी ? रणवेश तो पहन चुकी हो, अब पुरुषों की छाती में खींच-खींच कर बाण लगाओ।"

यह कहकर उन्होंने सिरसे पैर तक मुझे बड़े गौर से देखा। मेरे साज-सिङ्गार में, मेरी चाल-ढाल में, मानो एक विचित्र रंग की किरण झलक रही थी, जिसका लेशमात्र भी छोटी जिठानी की आँखों से छिपा नहीं था। आज मुझे यह बात लिखते हुए लज्जा होती है, पर उस दिन मुझे ज़रा भी लज्जा नहीं थी, क्योंकि उस समय मेरी प्रकृति अपने आप ही काम कर रही थी, मैं जानबूझ कर कुछ भी न करती थी ।

मैं जानती हूँ कि उस समय मैं साज-सिंगार पर विशेष ध्यान रखती थी। पर यह सब ऊपरी मन से होता था । मेरा कौन-सा जोड़ा सन्दीप बाबू को पसन्द था, यह मैं स्पष्ट मालूम कर लेती थी । इस विषय में अन्दाजे या अनुमान की कुछ आवश्यकता न थी । सन्दीप बाबू सबके सामने ही मेरे बनाव-सिगार की आलोचना किया करते। वह एक दिन मेरे सामने मेरे स्वामी से कहने लगे,—"निखिल, जिस दिन मैंने अपनी मक्खीरानी को वही जरी की गोट की धोती पहने सबसे पहले देखा था, तो जान पड़ता था मानो उनकी दोनों आँखें मार्ग भूले हुए तारे के समान असीमकी ओर देख रही हैं—मानो किसी खोजमें, किसी अपेक्षा में अथाह अन्धकार के किनारे हजारों बरस से इसी प्रकार देखती

रही हैं—उस दिन मेरा दिल काँप उठा और मैंने सोचा कि उनके मन की अग्निशिखा मानो बाहर आकर धोती की गोट से लिपट गई है। यही अग्नि तो हमें चाहिए, यही प्रत्यक्ष अग्नि। मक्खीरानी, मेरा यह एक अनुरोध मान लीजिए, मुझे एक बार और उसी अग्निशिखा में सज कर दिखा दीजिये।"

क्या आज विधाता ने मुझे बिलकुल नया चोला दे दिया? क्या उसने इतने दिनके अनादर की कमी पूरी कर दी? जो सुन्दरी नहीं थी, वह सुन्दरी हो उठी। जो साधारण थी, वह समस्त देश के गौरवका प्रत्यक्ष अनुभव करने लगी। सन्दीप बाबू तो केवल एक साधारण मनुष्य नहीं थे—वह मानो अकेले ही देश की लाखों विचारधाराओं के संगम थे। इसी कारण जब उन्होंने मुझे छत्ते की मक्खीरानी कहा तो मानों समस्त देश-सेवकों की स्तव-गुञ्जन-ध्वनि द्वारा मेरा अभिषेक हो गया। इसके बाद बड़ी जिठानी की निःशब्द अवज्ञा और छोटी जिठानी के सशब्द परिहास की मुझे जरा भी परवाह नहीं रही। सारे जगत के साथ मेरा सम्बन्ध एकदम बदल गया।

सन्दीप बाबू ने मेरे मनमें जमा दिया था कि मानो देश का काम मेरे बिना चल ही नहीं सकता। उस समय वह बात मानने में मुझे जरा भी कठिनाई न पड़ी—मुझे जान पड़ा मानों मुझमें एक ऐसी दिव्य-शक्ति आ गई है, जिसका मुझे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था। मेरे मनमें जो यह प्रबल आवेग एकदम आ घुसा, यह क्या चीज थी, इसपर विचार करने का मुझे समय नहीं था;—यह आवेग मेरे मनमें था, तो भी मेरा नहीं था, यह

मानो कहीं बाहरसे आया था, मानो बाढ़का जल था, गाँवके पोखरमें आकर भर गया था।

सन्दीप बाबू देशके सम्बन्धमें जरा-जरा-सी बातोंमें मुझसे सलाह लेते। पहले पहल मुझे बड़ा संकोच हुआ, पर थोड़े दिनोंमें सब जाता रहा। मैं जो कुछ कहती, उसीसे सन्दीप बाबू अचम्भे में पड़ जाते और कहते,—"पुरुष तो केवल सोच ही सकते हैं, पर आप लोग समझ लेती हैं, आपको सोच-विचारकी जरूरत ही नहीं। स्त्रियोंको ही विधाताने मनसे बनाया है, पुरुषोंको तो हाथमें हथौड़ी ले ठोंक-पीट कर गढ़ दिया है।"

धीरे-धीरे मुझे पक्का विश्वास होने लगा कि देशमें जो कुछ हो रहा है, उसके मूल-कारण सन्दीप बाबू हैं और स्वयं उनकी मूल-कारण एक साधारण स्त्रीकी साधारण बुद्धि है। मेरा मन एक भारी दायित्वके गौरवसे भर गया।

इन विचारोंमें मेरे स्वामीका कोई स्थान नहीं था। बड़ा भाई जैसे छोटे भाईको खूब प्यार करता है, पर काम-काजमें उसकी बुद्धिपर भरोसा नहीं करता, सन्दीप बाबू भी मेरे स्वामी की ओर वैसा ही भाव प्रकट करते थे। सन्दीप बाबू मेरे स्वामी को इस विषयमें बच्चा और उनकी बुद्धि-विवेचनाको औंधी समझते थे; पर वह अपना यह विचार बड़े स्नेहके साथ हँसते-हँसते प्रकट करते। स्वामीके अद्भुत मत और उलटी बुद्धिके कारण ही मानो सन्दीप बाबू उन्हें और भी प्यार करते थे, इसी कारण उन्हें देश-कार्यके समस्त दायित्वसे मुक्त कर दिया था।

प्रकृतिके औषधालयमें बहुत-सी दवाएँ ऐसी हैं, जिनसे

व्यथित अङ्ग सुन्न हो जाता है और दुःख मालूम नहीं पड़ता। जिस समय किसी गहरे सम्बन्धकी नाड़ी कटने लगती है उस समय न जानें कहाँसे ऐसी एक दवाका आप-ही-आप सञ्चार होने लगता है। बादको एक दिन अकस्मात् दिखाई पड़ता है कि एक बहुत बड़ा व्यवच्छेद उपस्थित है। मेरे जीवनके सबसे बड़े सम्बन्ध पर जिस समय छुरी चल रही थी उस समय मेरा मन एक तीव्र आवेगके गैस (Gas) से ऐसा बेसुध हो रहा था कि ख़बर ही नहीं थी कि कितनी बड़ी निष्ठुर घटनाका सामना है।

सन्दीप की आत्म-कथा

जान पड़ता है कुछ गड़बड़ होनेवाली है। उस दिन इसका कुछ परिचय मिल चुका है।

जबसे मैं आया हूँ निखिलेशकी बैठकमें मरदाना और जनाना दोनों आकर मिल गये हैं। बाहर मेरा अधिकार है और भीतर मक्खीरानीको कुछ आपत्ति नहीं है।

इस अधिकारका हम समझ-बूझ कर सावधानीसे भोग करते तो शायद काम चल जाता। पर बूँद जब पहले-पहल टूटती है तो जलका तोड़ बढ़ता जाता है। बैठकमें हमारी सभा ऐसे जोरसे चलने लगी कि और किसी बातका ध्यान ही नहीं रहा।

बैठकमें जब मक्खी आती है तो मुझे अपने कमरेमें बैठे ही बैठे किसी-न-किसी प्रकार मालूम हो जाता है। जरा चूड़ियोंका शब्द होता है। कमरेका दरवाजा अनावश्यक जोरसे धक्का देकर खोला जाता है। इसके अतिरिक्त किताबोंकी आलमारीके पासका किवाड़ जरा मुश्किलसे खुलता है। उसे जरा खींच कर खोलनेमें यथेष्ट शब्द हो उठता है। बैठकमें आकर देखता हूँ, दरवाजेकी ओर पीठ किये मक्खी अपनी पसन्दकी किताब देख कर निकालनेमें निमग्न है। इस कठिन काममें सहायता करनेका प्रस्ताव सुनते ही वह चौंक पड़ती है—इसके बाद और कुछ बातें होने लगती हैं।

बृहस्पतिवारको अशुभ घड़ीमें इसी प्रकारका शब्द सुन कर मैं अपने कमरेसे निकल कर चला। देखा कि बरामदेके बीचमें एक दरवान खड़ा है। उसकी ओर बिना देखेही मैं जाने लगा—पर उसने जल्दीसे रास्ता रोक कर मुझसे कहा,—"बाबूजी उस ओर न जाइये।"

"क्यों? जाऊँ क्यों नहीं?"

"बैठकमें रानी माँ हैं।"

"अच्छा तुम रानी माँ को खबर दो कि सन्दीप बाबू मिलना चाहते हैं।"

"नहीं मैं नहीं जाऊँगा, आज्ञा नहीं है।"

मुझे बड़ा बुरा लगा और मैंने जरा ऊँची आवाजसे कहा,—"मैं आज्ञा देता हूँ तुम जाकर पूछ आओ।"

मेरा गुस्सा देख कर दरवान चुप खड़ा रह गया। मैं फिर

कमरेकी ओर बढ़ा। दरवाजेके निकट पहुँचा ही था कि वह अपना कर्त्तव्य पालन करनेको आगे बढ़ा और मेरा हाथ पकड़ कर कहने लगा,—"बाबूजी मत जाइये।"

"क्या! मेरे शरीरपर हाथ!" मैंने हाथ छुड़ा लिया और उसके मुँहपर जोरसे एक थप्पड़ मारा। तुरन्त ही मक्खी कमरेसे निकल आयी और उसने देखा कि दरवान मेरा अपमान करनेको तैयार है।

उसकी वह मूर्त्ति मैं कभी न भूलूँगा। मक्खी सुन्दरी है यह बात पहले पहल मैंने ही मालूम की थी। हमारे देशके बहुतसे लोग शायद उसकी ओर देखे भी नहीं। पर वह मानों आत्माके कुआरेकी धार है और सृष्टिकर्त्ताकी हृदय-गुहासे वेगके साथ निकल पड़ी है। उसका रंग साँवला, असली लोहेकी तलवारके समान साँवला है। क्या तेज है और क्या धार है। वही तेज उस दिन उसके सारे चेहरे और आँखोंमें झलक रहा था। वह चौखटपर आ खड़ी हुई और दरवानकी ओर उँगली उठा कर कहने लगी,—"ननकू यहाँसे चले आओ।"

मैंने कहा—"आप रुष्ट न हों। जब आनेकी मनाई है तो मैं ही जा रहा हूँ।"

मक्खी काँपती हुई आवाजसे बोली,—"नहीं आप न जाइये—अन्दर आइये।"

यह अनुरोध नहीं था, आज्ञा थी। मैं कमरेके अन्दर गया और कुरसीपर बैठ कर पंखेसे हवा करने लगा। मक्खीने कागजके एक टुकड़ेपर कुछ लिख कर बैराको बुला कर दिया कि महा-

राज (निखिल) को दे आओ।

मैंने कहा,—"मुझे क्षमा कीजिये, मैं आपेमें न रह सका, दरवानको व्यर्थ मार बैठा।"

मक्खीने कहा,—"आपने बहुत अच्छा किया।"

"पर उस बेचारेका क्या दोष है? वह तो केवल कर्त्तव्य पालन करता था।"

इसी समय निखिल भी आ गया। मैं जल्दीसे कुरसीसे उठा और उसकी ओर पीठ करके खिड़कीके निकट जा खड़ा हुआ।

मक्खीने निखिलसे कहा,—"आज ननकूने सन्दीप बाबूका अपमान किया।"

निखिलने बड़े भोलेपनसे विस्मित होकर पूछा,—"क्यों?" उसकी यह बात देखकर मुझसे न रहा गया। मैंने मुँह फेर कर उसकी ओर देखा और सोचने लगा कि साधुओंके सत्यकी बड़ाई स्त्रीके सामने नहीं चलती, विशेषतः यदि स्त्री भी ऐसी हो।

मक्खीने कहा,—"सन्दीप बाबू बैठकमें आ रहे थे, वह उनका रास्ता रोक कर कहने लगा,—"हुक्म नहीं है?"

निखिलने पूछा,—"किसका हुक्म नहीं है?"

मक्खीने कहा,—"यह मैं कैसे बताऊँ।"

क्रोध और क्षोभसे मक्खीकी आँखोंमें आँसू आ गये।

निखिलने दरवान को बुला भेजा। वह कहने लगा,—"हुजूर मेरा तो कुछ कसूर नहीं है। मैंने तो हुक्मकी तामील की थी।"

"किसका हुक्म?"

"मँझली रानी माँने मुझे बुला कर कह दिया था।"

थोड़ी देरके लिए सब-के-सब चुप बैठे रह गये। जब दरवान चला गया तो मक्खीने कहा,—"अब ननकू यहाँ न रहने पायेगा।

निखिल चुप हो गया। मैं समझ गया, उससे यह अन्याय न होगा। उसकी न्याय-बुद्धिमें बड़ी जल्दी ठेस लग जाती है।

पर है बड़ी कड़ी समस्या! मक्खी सीधी-सादी लड़की तो थी नहीं। ननकूको निकाल कर जिठानियोंसे अपमानका बदला लेना था।

निखिल बराबर चुप रहा। अब तो मक्खीकी आँखोंसे आग बरसने लगी, उसे निखिल पर बड़ा क्रोध हो रहा था।

निखिल, बिना कुछ कहे उठकर कमरेसे बाहर चला गया।

दूसरे दिन वह दरवान वहाँ दिखाई नहीं पड़ा। पूछनेपर मालूम हुआ कि निखिलने उसे कहीं बाहरके कामपर नियुक्त कर के भेज दिया है—दरवानजीका इसमें नुकसान ही क्या था?

इन दिनों नेपथ्यमें जो तूफान चल रहा था, उसका आभास तो मैं भी देख सकता था। बार-बार यही सोचता था कि निखिल बड़ा विचित्र मनुष्य है, बिल्कुल ही दुनियासे निराला है।

इन सबका नतीजा यह हुआ कि इसके बाद कुछ दिनतक मक्खी रोज बैठकमें आकर बैराको भेजकर मुझे बुलाती और बातचीत किया करती—किसी काम या बहानेकी भी जरूरत न रही।

इसी प्रकार धीरे-धीरे अस्पष्ट स्पष्ट हो उठता है। मक्खी

राजघरानेकी बहू है, बाहरके पुरुषके निकट मानो एकदम नक्षत्र-लोककी रहनेवाली है, जहाँतक पहुँचनेका कोई निर्दिष्ट मार्ग ही नहीं है। सत्यकी यह कैसी आश्चर्यजनक जययात्रा है कि संस्कार और सांसारिक नियमोंके सब पर्दे एक-एक करके उठते चले गये, यहाँ तक कि अन्तमें केवल-नग्न प्रकृति दिखाई पड़ने लगी।

सत्य नहीं तो और यह क्या है? स्त्री-पुरुषके पारस्परिक सम्बन्धकी खींच एक वास्तविक चीज़ है। धूलके कणसे लेकर आकाशके तारे तक सब इसके साक्षी हैं, और मनुष्य कैसे-कैसे नियम बना कर उसे पर्देमें छिपाना चाहता है, अपने गढ़े हुए विधि-निषेध लगा कर उसे अपने घर की चीज़ बना बैठा है। मानो सौर-जगत्को गला कर जमाईके लिए घड़ीकी चैन बनवाने की तैयारी है। जिस समय वास्तविकता वास्तवका आह्वान सुन कर जाग उठती है और मनुष्यके सब वाक्य-जालोंको तोड़ ताड़ कर अपने स्थानपर आ खड़ी होती है, उस समय क्या केवल धर्म-बल या विश्वास-बल उसे रोक सकता है? फिर धिक्कार, हाहाकार और दण्ड, शासनका कितना गुल मचता है? पर अन्ध्याबके साथ लड़ाई करना क्या केवल शब्दोंका काम है? वह तो उत्तर नहीं देता, वह केवल टक्कर देना जानता है, क्योंकि वह वास्तव है।

इसी कारण आँखोंके सामने सत्यका यह प्रत्यक्ष प्रकाश देखना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। रही लज्जा, डर और द्विधा की बात, यदि ये सब न रहें तो सत्यके रसमें मज़ा ही क्या? पाँव काँपना, रह-रह कर मुँह फेरना, यह सब बड़ा मनोहर है

और यह सब छल और धोखा औरोंके लिये नहीं है, स्वयं अपने लिये है। वास्तवको जब अवास्तवसे लड़ना पड़ता है तो उसका प्रधान अस्त्र छल होता है, क्योंकि वस्तुको उसके विरोधी सदा घृणित और स्थूल बनाते हैं।

मैं सब देख रहा हूँ। यह जो परदा उड़ा जा रहा है, यही प्रलय-मार्गकी यात्राकी तैयारी हो रही है; वह जो लाल फ़ीता वालोंके भीतरसे ज़रा-सा दिखाई पड़ता है, मानो काल-वैशाखी की लोलुप जिह्वा है, जो कामनाकी गुप्त उद्दीपनामें रंगी गयी है। मैं इसका उत्ताप स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ और यह सब आयोजन आप ही आप हो रहा है, स्वयं उसे भी इसका पूरा ज्ञान नहीं है।

उसे ज्ञान क्यों नहीं है? कारण, मनुष्य वास्तवको छिपा-छिपा कर उसे स्पष्ट जानने और जाननेका उपाय स्वयं अपने हाथसे नष्ट कर देता है। वास्तवसे मनुष्य लज्जा करता है। इसीलिए मनुष्यकी बनाई हुई बाधाओं और रुकावटोंके भीतर ही रह कर उसे अपना काम करना पड़ता है। इसी कारण वास्तवकी चाल-ढालसे मनुष्य बेख़बर रहता है, अन्तमें जब एक-दम सिरपर आ पड़ती है तो उसे अस्वीकार करते नहीं बनता। मनुष्य उसे शैतान कहता है, बुरे-बुरे नाम धर कर उसे भगाना चाहता है, इसीलिए वह साँपका रूप धर कर चुपके-चुपके स्वर्गोद्यानमें प्रवेश करता है और केवल कानाफूसी द्वारा ही मानव-प्रेयसीकी आँखोंमें धूल झोंक कर उसे विद्रोही बना देता है, इसके बाद फिर विश्रामका नाम नहीं, मरण ही मरण बाकी है।

वास्तव पर मेरी पूरी श्रद्धा है। नग्न वास्तविकता कल्पनाका जेलखाना तोड़ कर खुले प्रकाशमें निकल कर आ रही है; उसके पग-पगपर मेरा आनन्द बढ़ता जाता है। मैं जिस चीजको चाहता हूँ उसे अपने निकट रक्खूँगा, खूब दिल भर कर बिलसूँगा। किसी तरह न रुकूँगा। बीचमें जो कुछ है वह चूर-चूर हो जाय, धूलमें मिल जाय, हवामें उड़ जाय। इसीमें आनन्द है, यही वास्तवका उन्मत्त नाच है, इसके पीछे जीवन-मरण, अच्छा-बुरा, दुख-सुख सब तुच्छ हैं।

मेरी मक्खी रानी अभीतक स्वप्नमें हैं। वह नहीं जानती किस ओर जा रही है। समय आने से पहले एकदम उसकी नींद तोड़ देना उचित नहीं है। उसे मेरे असली उद्देश्यका ज्ञान न होना चाहिये। उस दिन जब मैं भोजन कर रहा था, तो मक्खी रानीने मेरी ओर एक विशेष प्रकारसे देखा था। मानो बिलकुल भूल गई थी कि उस प्रकार देखनेका क्या अर्थ है? मेरी नजर उसकी आँखोंकी ओर उठते ही उसका मुँह लाल हो गया और उसने नजर दूसरी ओर फेर ली। मैंने कहा,—"आप मुझे खाता देख एकदम अवाक हो गईं। मैं अनेक बातें छिपा सकता हूँ, पर मेरा यह लोभ पग-पगपर खुल जाता है। पर देखिये जब मैं ही निर्लज्ज हूँ तो आप मेरे लिए क्यों लज्जा करती हैं?"

इसपर उसका चेहरा और भी लाल हो उठा। कहने लगी,—"नहीं, नहीं आप........।"

मैंने कहा,—"मैं जानता हूँ, लोभी मनुष्य स्त्रियोंको अच्छे लगते हैं। इस लोभके कारण ही स्त्रियाँ उनपर विजय पाती

हैं। मेरे लोभके कारण ही स्त्रियाँ मेरा सदा आदर-सत्कार करती हैं। इसी से आज मेरी यह दशा हो गई है कि लज्जाका लेशमात्र भी मुझमें नहीं रहा। अतएव आप देखती रहिये, जितनी अच्छी-अच्छी चीजें हैं,एक भी न छोड़ूँगा–मेरा यही स्वभाव है।"

मैंने कुछ दिन पहले अङ्गरेजीकी एक पुस्तक देखी थी, जिसमें स्त्री- पुरुषकी सम्भोगनीतिके सम्बन्धमें स्पष्ट-स्पष्ट वास्तव बातें लिखी थीं। इसी कारण मैं उसे बैठकमें डाल गया था। एक दिन दोपहरको किसी कामसे मैं उस कमरेमें गया। देखता क्या हूँ कि मक्खी रानी उसी पुस्तकको हाथमें लिये पढ़ रही हैं। पाँवकी आहट सुनते ही उसने झटपट एक और पुस्तक उसके ऊपर रख दी। इस पुस्तकमें लाँगफेलोकी कविताएँ थीं।

मैंने कहा,—"मैं आज तक नहीं समझा कि स्त्रियाँ कविताकी पुस्तकें पढ़ते हुए क्यों लज्जा करती हैं। पुरुष यदि लज्जा करें तो ठीक भी है। क्योंकि हमलोगों में कोई वकील है, कोई इञ्जीनियर, हम यदि कविता पढ़ें भी तो आधी रात को दरवाजा बन्द करके पढ़ना उचित है। पर आपका तो कविता के साथ बड़ा मेल है। जिस विधाताने स्त्रियों की सृष्टि की है वह स्वयं कवि हैं,—जयदेव ने इन्हीं के चरणोंमें बैठ कर यह निपुणता प्राप्त की है और 'गीतगोविन्द' की रचना की है।"

मक्खी रानी ने कुछ उत्तर न दिया। चेहरा लाल हो गया। वह हँस कर जाने के लिये तैयार थी कि मैंने कहा,—"नहीं, यह न होगा, आप बैठ कर पढ़िये। मैं एक पुस्तक यहाँ भूल गया था, उसीको लेकर भाग रहा हूँ।"

मैंने मेजपरसे अपनी पुस्तक उठा ली और मक्खीसे कहा,—"अच्छा हुआ यह पुस्तक आपके हाथमें नहीं पड़ी, नहीं तो आप मुझसे बड़ी रुष्ट हो जातीं।"

मक्खीने पूछा,—"क्यों ?"

मैंने कहा—"यों कि यह कविताकी पुस्तक नहीं है। इसमें जो कुछ है वह मनुष्यकी मोटी बात और मोटे ढङ्गसे लिखी हुइ है, किसी प्रकारका चातुर्य नहीं है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि इस पुस्तकको निखिल पढ़े।"

जरा-जरा भवें चढ़ाकर मक्खीने कहा,—"भला बताइये तो क्यों ?"

मैंने कहा,—"इसलिए कि वह पुरुष है और हमारे ही दलमें शामिल है। वह इस स्थूल जगतको धुँधला करके देखना चाहता है, इसीलिए उससे मेरा झगड़ा रहता है, और इसी कारण जैसा कि आप भी देखती हैं वह हमारे स्वदेशी-व्यापार को लॉंगफेलो की कविता समझ बैठा है—उसका मतलब है कि किसी बात से छन्दका माधुर्य न जाने पाये। हम लोग गद्यकी गदा लिए फिरते हैं और सब छन्दों को चूर-चूर करने की चिन्ता में हैं।"

मक्खीने कहा,—"स्वदेशी के विषय में आपकी पुस्तक में क्या है ?"

मैंने कहा,—"आप पढ़कर मालूम कर लेंगी। एक स्वदेशी क्या, हर विषय में निखिल कल्पित बातों के सहारे चलना चाहता है, इसी कारण मनुष्य की जितनी स्वाभाविक बातें हैं उनसे सदा उसकी खटपट रहती है। वह यह बात किसी तरह नहीं समझता

कि तर्क-वितर्क छिड़ने से बहुत पहले ही हमारा स्वभाव तैयार हो चुका है और इस शब्दाडम्बर के अन्त होने पर भी इसी प्रकार बना रहेगा।"

मक्खी जरा देर चुप रही, फिर गम्भीर भाव से बोली,—"अपने स्वभाव का दमन करके उससे ऊँचा उठाना भी क्या हमारा स्वभाव नहीं है?"

मैं मन-ही-मन हँसा—यह तो और ही कोई बोल रहा है, यह तुम्हारी बोली नहीं है। यह निखिलेशके पास सीख कर आई हो। तुम प्रकृतिकी सम्पूर्ण स्वस्थ जीव हो, स्वभावके आवेग से बेचैन हो रही हो। जबसे स्वभाव का आह्वान सुना है, तुम्हारे रक्त-माँसमें सनसनी पैदा हो गई है। इतने दिन तक जो इन लोगों ने तुम्हें मन्त्र दिया है, वही माया-मन्त्र-जाल क्या तुम्हें अब भी रोक सकेगा?

मैंने जोरसे कहा,—"पृथ्वीपर दुर्बल लोगों की संख्या अधिक है। उन्होंने अपने प्राण बचाने के लिये इसी प्रकार के मन्त्र रात-दिन जप-जप कर सबल लोगों के कान भी खराब कर दिये। स्वभाव से जो लोग कातर हैं, वही दूसरों के स्वभाव को भी कातर बनाने की चिन्ता में रहते हैं।"

मक्खीने कहा,—"हम स्त्रियाँ भी दुर्बल हैं, हमें भी दुर्बलों के षड्यन्त्रमें शामिल हो जाना चाहिये।"

मैंने हँस कर कहा,—"आप दुर्बल कैसे हैं? पुरुषों ने स्त्रियों को अबला बता कर स्तुतिवाद करके जबर्दस्ती दुर्बल बना दिया है। आप प्रबल हैं। पुरुषों का शोर-गुल सब बाहरका है, भीतर

से उनका मन बँधा पड़ा है। आज तक उन्होंने ही सदा अपने हाथसे शास्त्र गढ़ कर अपने आपको जकड़ा है, उन्होंने ही अपनी फूँक और आगसे स्त्री जातिको गला कर अपने लिए सोनेकी बेड़ियाँ तैयार की हैं। अपना तैयार किया हुआ फन्दा ही मनुष्य का सबसे बड़ा इष्टदेव होता है, परन्तु स्त्रियोंकी बात ही और है। उन्होंने ही देह देकर मन देकर, रक्त-माँसके वास्तवकी चाहना की है, वास्तवको जन्म दिया है, वास्तवको पाला है।"

मक्खी पढ़ी-लिखी लड़की थी। सहजमें हार माननेवाली नहीं थी। कहने लगी,—"यदि यह बात सच होती तो पुरुष क्या फिर भी स्त्रियोंको पसन्द करते?"

मैंने कहा,—"स्त्रियाँ इस बातको समझती हैं। वे जानती हैं पुरुषोंको चालबाजी पसन्द है, इसीलिए वे पुरुषोंकी बातें सीख कर उन्हींको भूलमें डालनेकी चेष्टा करती हैं। वे जानती हैं कि शराबी पुरुष जातिकी रुचि खाद्य पदार्थकी अपेक्षा शराबकी ओर अधिक है, इसीलिए वे नये-नये ढोंग, नई-नई तरकीबें करके अपने आपको शराबके रूपमें उपस्थित करना चाहती हैं। स्त्रियोंको किसी मोहकी आवश्यकता नहीं है—पुरुषोंके वास्ते ही वे मोहिनी बन गई हैं।"

मक्खीने कहा,—"फिर आप यह मोह तोड़ना क्यों चाहते हैं?"

मैंने कहा,—"क्योंकि मैं स्वाधीनता चाहता हूँ। देशको भी स्वाधीन करना चाहता हूँ, मानुषिक सम्बन्धमें भी स्वाधीनता चाहता हूँ।"

मेरा विचार था कि जो आदमी स्वप्नमें हो उसे एकदम जगा देना ठीक नहीं है। पर मेरा स्वभाव ऐसा तीव्र है कि मेरे लिये धीरे-धीरे चलना ही असम्भव है। मैं जानता हूँ कि जो बात मैंने उस दिन कही थी उनका स्वर बहुत साहसिक था, मैं जानता हूँ कि इस प्रकारकी बातोंका प्रथम आघात कुछ दुःसह होता है—पर स्त्रियोंपर सदा साहसी की जय होती है, क्योंकि पुरुष तो धुएँको पसन्द करते हैं, पर स्त्रियोंको सदा प्रत्यक्ष वस्तु अच्छी लगती है।

ठीक जिस समय हमारी बातें जरा गरम हो चली थीं, निखिलके बचपनके मास्टर चन्द्रनाथ बाबू आते हुए दिखायी पड़े। साधारणतः देखा जाय तो पृथ्वी अच्छी खासी जगह है, पर इन मास्टर महाशयोंके उत्पातके कारण यहाँसे भाग जानेको जी चाहता है। निखिलकी श्रेणीके मनुष्य इस संसारको मरते दम तक स्कूल बनाये रखना चाहते हैं। बड़े हुए तो भी स्कूल पीछे-पीछे चला, संसारमें प्रवेश किया वहाँ भी स्कूल आ घुसा। उचित तो यह है कि मरते समय भी स्कूल-मास्टरको अपने साथ-साथ घसीट कर ले जायँ। उस दिन हमारी बातचीतके बीचमें वही मूर्तिमान स्कूल आ मौजूद हुआ। हम सभीके मनमें जरा-जरा विद्यार्थीपन बना रहता है, यहाँतक कि उस समय मैं भी जरा चौंक पड़ा। और मक्खी तो एकदम कक्षाकी सबसे अच्छी लड़की बन कर गम्भीर भावसे बैठ गई—मानो परीक्षा देनेको तैयार बैठी है। कुछ मनुष्य रेलके प्वाएण्ट्मैनों (Pointsmen) के समान एक स्थानपर बैठे-बैठे अपने विचारकी गाड़ीको अकस्मात् एक लाईनसे दूसरीपर बदल देते हैं।

चन्द्रनाथ बाबू कमरे में घुसते ही संकुचित होकर लौट जाना चाहते थे—"क्षमा कीजियेगा मैं......." पर उनकी बात खतम होने से पहले ही मक्खी ने उनके पाँव छूकर प्रणाम किया और कहने लगी,—"मास्टर साहब आइये, थोड़ीदेर बैठकर जाइयेगा।" मानो डुबाव जल में गिर पड़ी थी और मास्टर साहब महाशय के आश्रय की जरूरत थी। डरपोक कहीं की!

चन्द्रनाथ बाबू स्वदेशीकी बात छेड़ बैठे। मेरी इच्छा थी कि उन्हीं को बकने दूँ और कुछ उत्तर न दूँ। बूढ़े आदमी की बातें केवल सुनता जाय स्वयं कुछ न बोले। इससे वह समझ बैठता है कि संसार की कल मैं ही चला रहा हूँ। बेचारेको खबर नहीं होती कि संसार का काम केवल जिह्वासे नहीं चलता। पहले तो मैं जरा चुप रहा, पर सन्दीपचन्द्र पर धीरज का अभियोग उनके शत्रु भी नहीं लगा सकते। चन्द्रनाथ बाबू ने जब कहा,—"देखिये, यदि बिना बीज बोये हम फसल काटनेकी आशा करने लगें तो...." उस समय मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा,—हमें तो फसल नहीं चाहिये। हम तो कहते हैं,—"माँ फलेषु कदाचन।"

चन्द्रनाथ बाबू को बड़ा अचम्भा हुआ। बोले,—"तब आप क्या चाहते हैं?"

मैंने कहा,—"हम चाहते हैं काँटे जिनके बोने में कुछ भी खर्च नहीं होता।"

मास्टर महाशय ने उत्तर दिया,—"पर काँटे तो केवल औरों को ही नहीं रोकते, वह तो अपने रास्ते में भी जञ्जाल हो जाते हैं।"

मैंने कहा,—"ये तो स्कूल में पढ़ाने की बातें हैं। हमें तो

खड़िया हाथ में ले केवल बोर्डपर लिखना नहीं है। हमारी छाती जिस बात से जली जा रही है, हमारे लिये आज वही महत्त्वपूर्ण बात है। इस समय हम औरों के तलवों का ध्यान रख कर ही मार्ग में काँटे बिछायेंगे, जब अपने पाँव में चुभेंगे तो धीरे-धीरे कुछ उपाय सोच लेंगे। जब मरने के दिन आयेंगे तभी ठण्डा पड़ने का समय होगा। जब तक हृदय में आग है तबतक तो भभकना ही शोभा देता है।

चन्द्रनाथ बाबू जरा हँस कर बोले,—"भभकना चाहें तो भभकिये, पर वीरत्व या कृतित्व समझ कर धोखे में न पड़िये। संसार में जो जाति बढ़ी है, भभक कर नहीं बढ़ी, परिश्रम करके बढ़ी है। जो लोग परिश्रम को भेड़िया समझ कर सदा उससे दूर भागते रहे हैं, उन्हीं को नींद टूटनेपर बिना परिश्रम सहज और सरल रास्ते से भाग निकलने की पड़ती है।"

इस बात का बहुत कड़ा उत्तर देने का विचार था, पर उसी समय निखिल आ गया। चन्द्रनाथ बाबू उठे और मक्खी की ओर देख कर बोले,—"मैं अब चलता हूँ, कुछ काम है।"

उनके जाते ही मैंने वही अङ्गरेजी की पुस्तक दिखाकर निखिल से कहा,—"मक्खी रानी से इसी पुस्तक की बातें कर रहा था।"

रुपये में साढ़े पन्द्रह आने आदमियों को झूठ बोल कर धोखा दिया जाता है, पर इन स्कूल-मास्टरों के स्थायी छात्रों को सच बोल कर ही धोखा देना सहज है। निखिल को समझा-बुझा कर ही फाँसना पड़ता है। उसके साथ पत्ते दिखा कर ताश खेलना चाहिये।

निखिल पुस्तकका नाम पढ़ कर चुप हो गया। मैंने कहा,—"मनुष्यने कल्पित सिद्धान्त गढ़ कर अपने सांसारिक जीवनको धुँधला कर दिया है, इस प्रकारके लेखक झाड़न हाथमें ले ऊपर की धूल उड़ा कर भीतरकी वस्तुको स्पष्ट करनेमें लगे हैं। इसी लिये मैंने कहा था कि यह पुस्तक तुम्हें पढ़नी चाहिये।"

निखिलने कहा,—"मैंने पढ़ी है।"

मैंने कहा,—"तुम्हारी क्या राय है?"

निखिलने कहा,—"जो लोग वास्तवमें सत्य असत्यका विचार करना चाहें उनके लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी है पर जो स्वयं भूलमें पड़ना चाहें उनके लिए जहर है।"

मैंने कहा,—"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

निखिल बोला,—"देखो जो लोग कहते हैं कि अपनी सम्पत्ति पर किसी मनुष्यका एकान्त अधिकार नहीं है, वह यदि निर्लोभ हों तभी उनके मुँहसे यह बातें अच्छी लगती हैं, पर यदि वह खुद चोर हों तो ऐसा कहना साफ झूठ बोलना है। जिस समय कामना प्रबल होती है, उस समय ऐसी पुस्तकोंका ठीक मतलब समझमें नहीं आता।"

मैंने कहा,—"कामना ही तो प्रकृतिका सिगनल है जिसे लक्ष्य करके हम यहाँ अपने मार्ग पर चलते हैं। कामनाको जो मिथ्या बताते हैं वे मानो आँख फोड़ कर दिव्य-दृष्टिकी दुराशा करते हैं।"

मेरी इच्छा थी कि मक्खी भी हमारे तर्कमें कुछ बोले, वह अब तक बराबर चुप बैठी थी। आज जान पड़ता है मेरी

बातों से उसके मनको कुछ अधिक धक्का पहुँचा है। इसीलिए मनमें दुविधा लगी है, स्कूल-मास्टर के निकट जाकर पाठ पूछने की इच्छा हो रही है।

सम्भव है, आजकी मात्रा जरा अधिक हो गई हो, पर अब सचेत कर देने की जरूरत भी है। जो अछेद्य है वह भी छिद सकता है, यह पहले समझ कर काम करना चाहिये।

मैंने निखिल से कहा,—"अच्छा हुआ तुमसे बातें हो गईं, नहीं तो मैं यह पुस्तक मक्खी रानी को देनेवाला था।"

निखिल ने कहा,—"इसमें क्या हर्ज है? वह पुस्तक जब मैंने पढ़ी है तो विमला क्यों न पढ़े? मैं तुम्हें केवल एक बात बताना चाहता हूँ। योरोप में मनुष्य की सब बातों को विज्ञान की दृष्टिसे देखा जाता है—पर वास्तव में मनुष्य पदार्थ न केवल देहतत्व है, न जीवतत्व, न मनस्तत्त्व, न समाजतत्त्व। कृपा करके यह बात न भूल जाना।"

मैंने कहा,—"निखिल, आजकल तुम इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हो?"

उसने कहा,—"मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि तुम लोग मनुष्य को तुच्छ समझ कर उसका अपमान कर रहे हो।"

"यह तुमने कहाँ देखा?"

"हवामें, अपने मनके दुःखमें। मनुष्यों में जो उत्तम हैं, तपस्वी हैं, सुन्दर हैं उनको तुम गला घोंट कर मारे डालते हो।"

यह कह कर वह कमरे से बाहर चला गया। मैं उसकी बातों पर अवाक् होकर विचार कर रहा था कि एक पुस्तक मेज पर से

नीचे गिरी। मैं चौंक पड़ा। फिर देखा तो मक्खी भी मुझ से बच कर उसके पीछे-पीछे जा रही थी।

यह निखिल बड़ा ही विचित्र मनुष्य है। वह खूब समझता है, एक घोर विपत्तिका सामना है फिर क्यों मुझे अपने घर से निकाल बाहर नहीं करता? जान पड़ता है यह देख रहा है कि विमला क्या करती है। विमला यदि उससे कहे कि तुम्हारे साथ मेरा जोर नहीं चलता तो भी वह सिर झुका कर स्वीकार कर लेगा कि हाँ बड़ी भूल हो गई। उसको यह समझने का साहस नहीं है कि भूलको भूल मानना ही सबसे बड़ी भूल है। कल्पना मनुष्य को कितना कातर बना देती है इसका निखिल प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। इस प्रकार का मैंने कोई आदमी नहीं देखा—मानो प्रकृति ने उसे विचित्र ढङ्ग से गढ़ा है। उसके चरित्र को लेकर उपन्यास या नाटक भी गढ़ना कठिन है, घरबार का काम तो वह क्या चलावेगा।

रही मक्खी, सो जान पड़ता है आज उसका स्वप्न बिलकुल टूट गया। वह किस धारा में बही जा रही है आज उसे मालूम हो गया। अब वह चाहे आगे बढ़े, चाहे पीछे हटे, जो कुछ करेगी जान-बूझ कर करेगी। हो सकता है एक बार आगे बढ़ कर भी फिर जरा पीछे हट जाय। पर इससे मुझे जरा भी डर नहीं। कपड़ों में जब आग लगती है तो जितने ही हाथ-पैर मारो उतनी और भड़कती है। भयके स्पर्श से उसके हृदय का वेग और भी अधिक हो जायगा।

मैं स्वयं उससे और अधिक कुछ न कहूँगा—केवल नये ढंग

की उदार भाव से लिखी हुई कुछ अङ्गरेजी पुस्तकें पढ़ने को दूँगा। वह धीरे-धीरे खूब समझ लेगी कि कामना को वास्तव मान कर उसपर श्रद्धा करना ही आधुनिकता है। कामना से लज्जित होकर त्याग की बड़ाई करना आधुनिकता नहीं है।

जो हो, इस नाटक को पंचम अङ्क तक देखना चाहिये। मैं यह डींग नहीं मारता कि मैं केवल दर्शक मात्र हूँ और उच्चासन पर बैठा-बैठा कभी-कभी ताली बजा देता हूँ। छाती में तनाव हो रहा है, नस-नस खिंची जाती है! रातको जब बत्ती बुझा कर बिछौने पर लेटता हूँ तो वही नजरें, वही बातें, वही हाव-भाव अन्धकार के भँवर में चक्कर लगाया करते हैं। सबेरे जब उठता हूँ तो मन में एक आनन्दमय प्रतीक्षा का अनुभव होता है—मानो रक्त के साथ-साथ सारे शरीर में किसी स्वर की धारा बह रही है।

उस मेज के ऊपर जो तस्वीरों का चौकटा रक्खा है, उसमें निखिल के पास मक्खी की तस्वीर थी। वह तस्वीर मैंने निकाल ली। कल वह खाली जगह दिखा कर मैंने मक्खी से कहा था,—"कंजूस की कंजूसी के कारण ही चोरी की जरूरत पड़ती है, अतएव इस चोरी का पाप कंजूस और चोर दोनों को बराबर बाँट देना चाहिए। आपकी क्या राय है?"

मक्खी ने हँस कर कहा,—"वह तस्वीर तो कुछ ज्यादा अच्छी भी नहीं थी।"

मैंने कहा,—"क्या किया जाय? तस्वीर तो फिर तस्वीर ही है। पर जैसी भी कुछ है मैं उसी से सन्तुष्ट रहूँगा।"

मक्खी एक पुस्तक खोल कर उसके पृष्ठ उलटने लगी। मैंने कहा,—"आप रुष्ट न हों मैं उस जगह को किसी-न-किसी तरह भर दूंगा।"

आज वह जगह खाली न रही। मेरी यह तस्वीर बहुत दिनोंकी है—उस समय चेहरे पर ज़रा-ज़रा कच्चापन था, मनकी भी वही दशा थी। उस समय तक लोक-परलोकको बहुत-सी बातोंमें विश्वास बना हुआ था। ऐसा विश्वास भूल अवश्य है, पर उसमें एक गुण भी होता है, उसके कारण मनमें एक प्रकार का लावण्य आ जाता है।

मेरी तस्वीर निखिलकी तस्वीरके पास लग गई—हम दोनों पुराने मित्र हैं।

निखिलेशकी आत्म-कथा

पहले कभी मैंने अपने विषयमें विचार नहीं किया। अब कभी-कभी अपने ऊपर बाहर से दृष्टि डालता हूँ। विमला मुझे किस भावसे देखती है, यही देखनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। हर बातको बढ़ा कर देखनेके अभ्यासने इस विषयको बड़ा गम्भीर बना दिया।

(और कुछ नहीं, जीवनको रो-रोकर आंसुओंमें डुबोनेसे हँस कर उड़ा देना ही अच्छा है।) इसी तरह संसारका काम

चलता है। दुनियामें आज जितना दुःख, जितनी विपत्ति मौजूद है, उसे हम छाया-मात्र समझ कर अपने मनसे उड़ा देते हैं, इसीलिए निश्चिन्त होकर खाते-पीते हैं—उसे यदि सत्य मान कर ज़रा देरके लिए भी देख सकते तो क्या मुँहमें अन्न रुचता या आँखोंमें नींद रहती ?

पर अपने आपको इस प्रकार छाया समझकर मनसे नहीं भुला सकता। समझता हूँ केवल मेरा ही दुःख जगतकी छाती पर पत्थर बन कर आ पड़ा है इसीलिए सब चीजें ऐसी गम्भीर दिखाई पड़ती है। इसीलिए अपनी ओर देखकर आँखोंमें आँसू भर आते हैं।

तू कैसा हतभाग्य है जो एक बार जगतके राजमार्गपर खड़ा होकर अपनेको सबके साथ मिलाकर नहीं देखता ! वहाँ युग-युगान्तरोंके महा मेलेमें, लाखों करोड़ों आदमियोंकी भीड़में, बेमला तेरी कौन है ? स्त्री है ? स्त्री किसे कहते हैं ? यह शब्द जैसे रात-दिन अपनी फूँकसे फुलाये फिरता है, समझ रखो कि बाहरसे जरा-सी सूई भी चुभ गई तो वहीं रह जायगा !

मेरी स्त्री है तो मानों बिल्कुल मेरी हो गई ! पर वह यदि कहे, नहीं मैं तो स्वतन्त्र हूँ—तो मैं क्या कहूँगा, नहीं यह कैसे हो सकता है, तुम तो मेरी स्त्री हो ! स्त्री ! मानों शब्दसे अधिकार और सत्य दोनों निश्चित हो गये ! एक शब्दके भीतर क्या मनुष्यके समस्त आत्माको हाथ-पाँव बाँध कर कैद कर सकते हैं ?

स्त्री ! इसी शब्दमें मैंने जीवनका समस्त माधुर्य्य इकट्ठा कर

के सदा अपने हृदयमें रक्खा है—वहाँसे हट कर उसे कभी धूल पर उतरने नहीं दिया। इसी नामकी वेदीपर कितनी पूजा की, धूप जली है, कितनी कामना की बंशी बजी है, कितने बसन्त और शरद्के फूल चढ़े हैं वह यदि कागजकी नावके समान गन्दे जलमें डूब जाय तो उसके साथ मेरा...........।

वह देखो, फिर वही गम्भीरता! ये सब गुस्से की बात हैं, तुम चाहे जितना क्रोध करो, जो बात है वह ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। यदि विमला तुम्हारी नहीं है तो बस नहीं है, जितना क्रोध करोगे, जितना सटपटाओगे उतना इस बात का और प्रमाण मिलता जायगा। छाती फटती है तो फटने दो। इससे दुनियाका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, दुनियाका क्या, तुम्हारा ही क्या बनता-बिगड़ता है। जीवनमें मनुष्य जो कुछ खोता है उस सबसे 'मनुष्य' बहुत बड़ा है—आँसुओंके समुद्रका पार अवश्य है, इसीलिए हम रोते हैं। नहीं तो रोते भी नहीं।

रहा समाजका खयाल—सो समाज आप सोच ले और जो करना हो सो करे। मैं जो रोता हूँ यह मेरा अपना रोना है, समाजका रोना नहीं है। यदि विमला कहे कि मैं तुम्हारी नहीं हूँ, तो फिर मेरी सामाजिक स्त्री होकर चाहे जहाँ रहे, मुझसे कुछ वास्ता नहीं।

मास्टर महाशय अभी हमारे पास आये थे। उन्होंने मेरे कन्धेपर हाथ रख कर मुझसे कहा था,—निखिल सोने जाओ, बहुत रात हो गई है।"

बात यह है कि जबतक विमला खूब गहरी नींद नहीं सो

जाती मुझे अन्दर जाकर सोना बहुत कठिन मालूम होता है। दिनके समय उसके पास बैठता हूँ, बातचीत भी होती है—पर रातके समय जब उसके साथ अकेला होता हूँ तो कहनेकी कुछ बात ही नहीं सूझती। उस समय मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है।

मैंने मास्टर महाशयसे छा,—"आप अभी तक क्यों नहीं सोये?"

वह हँस कर बोले,—"मेरे सोनेके दिन गये अब जागनेके दिन हैं!"

मैं जाने ही वाला था कि खिड़कीके सामने आकाशमें जो गहरा मेघ छाया हुआ था, वह जरा फटा और अकस्मात् एक बड़ा-सा तारा चमकता हुआ दिखाई पड़ा और मुझसे कहने लगा, कितने सम्बन्ध बनते बिगड़ते हैं, पर मैं उसी प्रकार स्थिर हूँ, मानों मिलन-रात्रिके कभी न बुझनेवाले प्रदीप की शिखा हूँ।

तुरन्त ही ऐसा जान पड़ने लगा कि इन विश्व-वस्तुओंके परदेके पीछे मेरी अनन्त-कालकी प्रेयसी स्थिर होकर बैठी है। कितने जन्म, कितने दर्पणोंमें उसकी छवि दिखाई पड़ी है—दर्पण भी कैसे-कैसे—टूटे, फूटे, धुँधले। जैसे ही सोचता हूँ इस दर्पण को अपना करके बक्समें बन्द कर रक्खूँ वैसे ही छवि फिर ओझल हो जाती है। जाने दो, करना ही क्या है, मुझे न दर्पण चाहिये और न तस्वीर!

अन्धेरेमें खड़ा एक शैतान कह रहा है, यह सब सबोंका फुसलाना है। यही सही, बच्चेको तो फुसलाना ही पड़ता है।

पर यह लाखों करोड़ों बच्चे, ये रोते हुए बच्चे, ये सब क्या केवल झूठ ही बोल कर फुसलाये जाते हैं । मेरी प्रेयसी मुझे नहीं फुसला सकती—वह अवश्य सत्य है, इसी कारण मैंने बार-बार उसे देखा है, बार-बार देखूँगा—भूल में पड़ कर भी उसे देख रहा हूँ—आँसू भरी आँखों से भी उसे देखा है। जीवन के हाट की भीड़भाड़ में उसे बार-बार देखा है, बार-बार खोया है, मृत्यु की धारा में डूब कर निकलूंगा तो भी उसे देखूँगा। तुम निष्ठुर हो, पर अधिक मत सताना—जिस मार्ग पर तुम्हारे पैरों के निशान पड़े हैं—जिस हवा में तुम्हारे खुले बालों की सुगन्ध भरी है, उसे यदि फिर खो बैठूं तो इसी भूल में मुझे सदा के लिये न छोड़ देना ! वह तारा, मेघरूपी घूंघट उठा कर मुझसे कह रहा है, नहीं, नहीं घबराओ मत जो चिरस्थायी है वह सदा बना रहेगा।

इसी समय छोटी भाभी भी कमरे में आ गई। घड़ी में दो बजे थे।

"निखिल तुम क्या कर रहे हो ? भैया सोने जाओ, अपने आपको क्यों व्यर्थ कष्ट पहुँचा रहे हो ? तुम्हारा जो हाल हो गया है मुझसे देखा नहीं जाता।"

यह कहते-कहते उनकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मैं कुछ नहीं बोला। उनके चरण छूकर और प्रणाम करके सोने के लिए चला गया।

---

*

विमला की आत्म-कथा

—❀—❀—❀—

पहले मुझे कुछ सन्देह नहीं था, न किसी प्रकार का डर था; मैं समझती थी देश के लिये आत्म-समर्पण कर रही हूँ। (परि-पूर्ण आत्म-समर्पण में कैसा आनन्द मिलता है उस समय मुझे पहली बार मालूम हुआ था कि अपना सर्वनाश करके ही परमानन्द प्राप्त होता है।

सम्भव था यह नाश आप ही आप दूर हो जाता। पर सन्दीप बाबू से न रहा गया, उन्होंने अपने मन का भाव स्पष्ट कर डाला। उनकी बातों का स्वर मुझे हर ओर से स्पर्श करने लगा, उनकी चाह भरी नज़रें मानो मेरे पाँव पकड़ कर भिक्षा माँगने लगीं। इन सब बातों में इच्छा का जोर ऐसा प्रबल दिखाई पड़ता था, मानो मुझे निष्ठुर डाकू के समान चोटी पकड़ कर खींच ले जायगा।

सच बात तो यह है कि इस भयङ्कर इच्छा की प्रलय-मूर्ति रात दिन मेरे मनको खींच रही थी। मैं जानती थी; अपना सत्यानाश कर रही हूँ, पर यह ख़याल भी कसा मनोहर मालूम होता था! कैसी लज्जा होती थी, कैसा डर लगता था, पर उसका माधुर्य्य बड़ा ही तीव्र था।

फिर कौतूहलका भी अन्त नहीं था,—जिस मनुष्य को अच्छी तरह नहीं जानती, जो निश्चित रूप से मेरा नहीं हो सकता, जिस की शक्ति प्रबल है, जिसका यौवन सहस्र शिखाओं में जल रहा

है, उसकी भड़कती हुई कामना का रहस्य कैसा प्रचण्ड, कैसा प्रबल होगा। जो समुद्र बहुत दूर था, जिसका नाम केवल पुस्तकों में पढ़ा था, उसकी एक भयङ्कर लहरने समस्त बाधाएँ तोड़ डालीं, और अकस्मात् मेरे पैरों को छूकर अपनी असीमता का परिचय दे दिया।

पहले सन्दीप बाबूपर मेरी बड़ी भक्ति थी, पर अब तो भक्ति क्या श्रद्धा भी नहीं है। तौ भी मेरी यह रक्तमाँस की वीणा उन्हीं के हाथ से बजने लगी। उन हाथों की मैं अवज्ञा करना चाहती थी और इस वीणा की भी—पर वीणा तो बजने लगी।

ऐसा होते हुए भी मेरे मनमें न जाने क्या बात थी, जिसके कारण ऐसा मालूम होता था कि इस जीने से तो मरना ही अच्छा है।

एक दिन मेरी मँझली जिठानी हँस कर कहने लगीं,—"हमारी छोटी रानी में कैसे-कैसे गुण हैं! अतिथि का कैसा आदर-सत्कार किया है कि घर छोड़ कर जाना ही नहीं चाहता। हमारे समय भी मेहमान आते थे, पर उनका इतना आदर नहीं था। इसके अतिरिक्त उस समय हमें पतियों की भी कुछ सेवा-सुश्रूषा करनी पड़ती थी। बेचारा निखिल इस नये युग में पैदा हुआ है, इसी का फल भोग रहा है। वह यदि मेहमान बनकर इस घर में आता तो शायद उसकी भी कुछ पूछ होती। छोटी रानी तुझ से एक बार उसकी ओर देखा भी नहीं जाता, उसका क्या हाल हो गया है!"

उस समय इन उलझनों का मुझ पर कुछ असर नहीं था, मैं

सोचती थी, मैंने जो व्रत किया है, उसका ये अर्थ ही नहीं समझतीं। उस समय मेरे चारों ओर एक प्रवल भाव का चक्र था। मैं अपने विचारमें देश के लिये प्राण दे रही थी, मुझे लाज-शरम की जरूरत नहीं थी।

कुछ दिन से देशोपकार की बात बन्द हैं। आजकल आलोचना, आधुनिक काल के स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध और अन्य हजारों इसी प्रकार की बातें हुआ करती हैं। बीच-बीच में अङ्गरेजी कविता और वैष्णव कविता का भी जिक्र छिड़ जाता है। इसी कविता में एक ऐसा स्वर सुनाई पड़ता है जो बहुत मोटे तार का स्वर है। इस स्वरका स्वाद मुझे अपने घर में अबतक नहीं मिला था। मुझे जान पड़ता था, मानो यही पौरुष का स्वर है, इसी में प्रबल शक्ति की झङ्कार सुनाई पड़ती है।

किन्तु अब यह पर्दा भी उठ गया। सन्दीप बाबू क्यों बिना कारण इस प्रकार दिन बिता रहे हैं, मैं क्यों बिना प्रयोजन उनके साथ आलाप-आलोचना करने में निमग्न हूँ, इन बातों का आज मेरे पास कुछ भी उत्तर नहीं है।

इसीलिए उस दिन मुझे अपने ऊपर, छोटी जिठानी के ऊपर, सारे जगत् के व्यवहार के ऊपर बड़ा क्रोध आया। मैंने सोच लिया कि अब कभी बाहर की बैठक में न जाऊँगी—चाहे मर जाऊँ तो भी न जाऊँगी।

दो दिन तक बाहर नहीं गई। उन्हीं दो दिन में मुझे पहले-पहल अच्छी तरह मालूम हुआ कि कितनी दूर निकल गई हूँ। ऐसा मालूम होता था मानो एकदम सारा जीवन फीका

पड़ गया। जो चीज सामने आती थी तोड़ कर फेंक देनेको जी चाहता था। सिरसे पैरतक सारा शरीरका रक्त बाहरकी ओर कान लगाये हुए था।

हर घड़ी काम-काजमें लगी रहनेकी चेष्टा करने लगी। सोने का कमरा बिलकुल साफ़ था, तो भी अपने सामने जलके घड़े डलवा-डलवा कर उसे खूब धुलवाया। आलमारीमें सब चीजें ठीक रखी थीं, मैंने सब निकाल डालीं और झाड़-पोंछ कर एक नये ढङ्गसे सजाईं। उस दिन मुझे सिर धोकर चोटी बाँधनेका समय भी न मिला। भंडारमें जाकर देखा तो खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री चोरी हो गई थी। मैंने नौकर-चाकरोंको खूब डाँटा-डपटा, पर किसीको चोर ठहरानेकी हिम्मत न पड़ी—क्योंकि दोष मेरा भी था, मेरी क्या इतने दिन तक आँखें फूट गई थीं।

उस दिन मैंने ऐसी गड़बड़ी मचाई मानो मुझपर भूत सवार था। दूसरे दिन पुस्तक पढ़नेकी चेष्टा की, पर कुछ याद नहीं क्या पढ़ा। एक बार भूलमें पुस्तक हाथमें लिये घूमते-घूमते खिड़कीके पास जा खड़ी हुई और बैठकके आँगनकी ओर झाँकने लगी। उत्तरकी ओर जो कमरे हैं वहाँसे वह सब दिखाई पड़ते हैं। उनमेंसे एक कमरा मानो मेरे जीवन-समुद्रके उस पार जा पहुँचा है, और पार उतरनेको नाव नहीं मिलती, मैं खड़ी बाट जोह रही हूँ। परसों मैं जो कुछ थी आज मानो उसकी छाया मात्र हूँ, उसी स्थानमें हूँ तो भी जान पड़ता है कहीं और हूँ।

इसी समय सन्दीप बाबू एक समाचार-पत्र हाथमें लिये

कमरेसे बरामदेमें आते हुए दिखाई पड़े। उनके मनकी बेचैनी चेहरे ही पर दिखलाई पड़ती थी। बार-बार जान पड़ता था मानों उन्हें आँगनपर और बरामदेके जँगलेपर बड़ा क्रोध आ रहा है। समाचार-पत्र अब उन्होंने अधीर होकर दूर फेंक दिया, जान पड़ता था यदि सम्भव होता तो आकाश तकके टुकड़े कर डालते। प्रतिज्ञा अब न रह सकेगी! जैसे ही बैठककी ओर जानेका विचार कर रही थी, देखा कि अकस्मात् छोटी जिठानी पीछे आ खड़ी हुई! "ओ हो, अब यों ताका झाँकी हुआ करेगी?" केवल यही कह कर वह लौट गई। मैं फिर बाहर न जा सकी।

अगले दिन सवेरे गोविन्दकी माँ आकर मुझसे बोली,—छोटी रानी! भोजनकी सामग्री अभी तक नहीं दी गई।" मैंने चाबीका गुच्छा फेंक दिया—"जा, हरिमतीसे कह, वह निकाल देगी।" और खिड़कीके पास बैठी विलायती सिलाईका काम करती रही। इसी समय बैराने एक चिट्ठी लाकर मेरे हाथमें दी कि सन्दीप बाबूने भेजी है। साहसकी भी हद हो गई, बैरा अपने मनमें क्या सोचेगा? दिल धड़कने लगा। चिट्ठी खोल कर देखी। उसमें लिखा था,—"विशेष प्रयोजन। देशका काम। सन्दीप।"

सिलाई-विलाई सब धरी रही। आइनेके सामने जाकर जरा बाल ठीक कर लिये। साड़ी पहने रही, जाकट दूसरी बदल ली। मैं जानती हूँ इस जाकटके साथ उनकी नजरोंमें मेरा कुछ विशेष सम्बन्ध हो गया है।

मुझे जिस बरामदे में होकर जाना था, उसमें छोटी जिठानी नियमानुसार बैठी सुपारी काट रही थीं। आज मुझे कुछ भी सङ्कोच नहीं हुआ। उन्होंने पूछा,—"छोटी रानी कहाँ चलीं?"

मैंने कहा,—"बैठक में।"

"इतने सबेरे?"

मैं विना कुछ उत्तर दिये बैठक में चली गई। छोटी जिठानी गाने लगीं—

"राई आमार चले जेते ढले पड़े
अगाध जलेर मकर जेमन,
ओ तार चिटे चिनि ज्ञान नेई!"

[मेरी राधा, मेरी प्रियतमा, चलते-चलते ढुलक पड़ती, जैसे गहरे जल में मगरमच्छ, पर ज्ञान इतना भी नहीं है कि गुड़ और खांड में पहिचान कर सके।]

बैठक में जाकर देखा, सन्दीप बाबू द्वार की ओर पीठ किये ब्रिटिश एकडेमी द्वारा प्रकाशित तस्वीरों की एक पुस्तक बड़े ध्यान से देख रहे हैं।

मैं कमरे के अन्दर चली। मेरे पैरों की आहट सन्दीप ने अवश्य सुनी होगी, किन्तु वह फिर भी पुस्तक उसी तरह पढ़ते रहे, मानों उन्हें कुछ खबर ही न हुई। मुझे डर था कि कहीं आर्ट की (शिल्प विद्या की) बात न छेड़ बैठें। सन्दीप बाबू शिल्पकी आड़ में जिन बातों की आलोचना किया करते थे, उनसे अब तक मुझे लज्जा मालूम होती थी। मेरी लज्जा छिपाने के लिए ही

वह इस ढङ्ग से बातें करते थे, मानों उसमें लज्जा की कुछ बात ही नहीं थी।

इसीलिए मैंने सोचा कि लौट जाऊँ—उसी क्षण सन्दीप बाबू ने बहुत गहरी साँस लेकर सिर उठाया और मुझे देख कर चौंक पड़े। बोले,—"आप आ गईं!"

उनकी आवाज में और दोनों नेत्रों में एक प्रकार की दबी हुई भर्त्सना झलक रही थी। मेरे ऊपर जो सन्दीप का अधिकार जम गया था, उसके कारण मेरा दो-तीन दिन तक बाहर न आना मानों बड़ा अपराध था। मैं जानती थी कि सन्दीप के इस अभिमान से मेरा अपमान होता है, पर क्रोध करने की शक्ति कहाँ थी?

मैं चुप रही। मैं दूसरी ओर देख रही थी, तो भी खूब जानती थी कि सन्दीप के दोनों नेत्र मेरे मुखपर पड़े स्वयं मेरे ही विरुद्ध नालिश कर रहे हैं और वहाँ से हटना नहीं चाहते। यह कैसी विचित्र घटना थी। यदि सन्दीप कोई बात छेड़ देते तो उसी की आड़ में मुझे छिपने का अवसर मिल जाता। याद नहीं कितनी देर तक यही दशा रही, अन्त में जब लज्जा के मारे विह्वल हो उठी तो कहना ही पड़ा,—"आपने किस काम के लिये मुझे बुलाया था?"

सन्दीप कुछ विस्मित होकर बोले,—"क्यों कामकी क्या सदा ही आवश्यकता है? मित्रता कुछ अपराध है? संसार में जो चीज सबसे बड़ी है, उसका आप इतना अनादर करती हैं! हृदय की पूजा भी क्या सड़क का कुत्ता है कि बाहर से खदेड़ दिया?"

मेरा दिल धड़कने लगा—विपत्ति धीरे-धीरे निकट आ रही है, अब बचना कठिन है। मेरे हृदयमें हर्ष और भय दोनोंका समान ज़ोर था। इस सर्वनाशका बोझ मैं अपनी पीठपर कैसे उठाऊँगी ? क्या मुँहके बल कीचड़में गिरना ही पड़ेगा ?

मेरा सारा शरीर काँप रहा था। मैं अपना मन खूब कड़ा करके उनसे बोली,—"सन्दीप बाबू, आपने देशके कौन-से काम के लिये मुझे बुलाया है, मैं इसलिये घरका काम छोड़ कर आई हूँ ?"

वह जरा हँस कर बोले—"वही तो मैं आपको बता रहा हूँ। आप जानती हैं, मैं पूजा करने यहाँ आया हूँ ? क्या मैंने आपसे नहीं कहा कि आपके द्वारा मैं देशकी शक्तिको प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ? केवल भूगोल विवरण ही तो सत्य वस्तु नहीं है—क्या कोई नक्शे की रेखाओंका स्मरण करके जान दे सकता है ? जब आपको सम्मुख देखता हूँ तभी तो समझता हूँ देश कितना सुन्दर, कितना प्रिय, कितना तेजस्वी है। आप अपने हाथसे मेरे माथेपर जय-टीका लगा दें तभी मैं जानूँगा कि मुझे देशका आदेश मिल गया। इस बातको स्मरण रख कर यदि लड़ते-लड़ते मृत्यु-बाण खाकर धूलपर गिर पड़ूँगा तो भी समझूँगा कि यह धूल भूगोल-विवरणकी धूल नहीं है, यह एक प्रेम से भरा आँचल है। कैसा आँचल है यह आप स्वयं जानती हैं। आपने उस दिन वह साड़ी पहनी थीं, जिसका लाल मिट्टीका रंग था, जिसकी चौड़ी गोट रक्तकी धाराके समान थी, वह उसी साड़ी का आँचल होगा—उसे क्या मैं कभी भूल सकता हूँ ? यही स्मृति

तो जीवनको सतेज और मृत्युको रमणीय बना सकती है।"

सन्दीपकी आँखोंसे आग निकल रही थी। यह आग कामना की थी या पूजाकी, यह मैं मालूम न कर सकी। मुझे वही दिन फिर याद आ गया जिस दिन मैंने उनकी वक्तृता पहले-पहल सुनी थी। उस दिन मैं यह भी भूल गई थी कि सन्दीप बाबू मनुष्य हैं या अग्नि-शिखा।

इसके बाद मुझसे कुछ भी न रहा गया। मुझे डर था कि कहीं सन्दीप बाबू एकदम उठकर मेरा हाथ न पकड़ लें, क्योंकि उनका हाथ चञ्चल अग्नि-शिखाकी तरह काँप रहा था और उनकी नजर चिनगारियोंके समान मेरे ऊपर पड़ रही थी।

वह फिर कहने लगे,—"क्या आप घरके काम-काज ही को सदा जीवनका सर्वस्व समझती रहेंगी? आपका तेज ऐसा प्रबल है कि उसके आभासमात्रसे हम जीवन-मरणको तुच्छ समझने लगते हैं; यह क्या घूँघटमें घोट कर रखनेकी चीज है? मिथ्या लज्जा आपको नहीं सोहाती, न लोगोंकी काना-फूँसीपर ध्यान देना आपके लिये उचित है। आज आपको विधि-निषेध का चक्र तोड़ कर स्वतन्त्रताके मैदानमें निकल आना चाहिये।"

इस प्रकार जब सन्दीप बाबूकी बातोंमें देश-भक्तिके साथ-साथ मेरी प्रशंसा मिली रहती तो संकोचका बन्धन टूटने लगता और खूनमें गर्मी आ जाती। जितने दिन शिल्प और वैष्णव कविता, स्त्री-पुरुषके सम्बन्ध और वास्तव अवास्तवके विचारके विषयमें बातें चलती रहीं, मेरा मन प्रायः ग्लानिसे काला हो उठता था। आज उस अङ्गारेकी कालिमाने फिर आग पकड़

ली और उसके सामने लज्जा अधिक न ठहर सकी। मैं समझने लगी कि मेरा सतेज स्त्रीत्व वास्तव में एक दिव्य महिमा है।

इसी समय खेमा दासी रोती-पीटती गुल मचाती कमरे में आ उपस्थित हुई। बोली,—"मेरा हिसाब कर दो मैं जाती हूँ, मुझे कभी ऐसी........।" सिसकियों के नारे और कुछ सुनाई न पड़ा।

मैंने पूछा,—"क्या हुआ ? बात क्या है ?"

विदित हुआ कि मँझली रानी माँकी दासी थाको खेमा से लड़ पड़ी थी और दोनों की आपस में खूब गाली-गलौज हुई थी।

मैंने बहुतेरा कहा कि मैं स्वयं आकर देखती हूँ कि क्या बात है, पर उसका रोना किसी प्रकार न थमा।

सबेरे-सबेरे दीपक-रागिन का स्वर खूब मधुर हो उठा था, उसपर मानों बासन माँजने का पानी डाल दिया गया। स्त्रियाँ जिस पद्मसरोवर की पद्म हैं उसकी तलीकी कीचड़ घुल कर ऊपर आ गई। इसे सन्दीप बाबू से छिपाने के लिए ही मैं जल्दी से अन्दर चली गई। देखा छोटी जिठानी उसी बरामदे में बैठी माथा नीचे किये सुपारी काट रही हैं। होठोंपर ज़रा-ज़रा हँसी है और वही गीत गुनगुना रही हैं,—"राई आमार चले जेते ढले पड़े"—अभी कुछ उपद्रव हो चुका है, इसकी मानों उन्हें कुछ भी खबर नहीं है।

मैंने कहा,—"मँझली रानी, तुम्हारी थाको झूठ-झूठ क्यों खेमा को गाली दिया करती है ?"

वह भवें चढ़ाकर विस्मित भाव से बोलीं,—"हाँ, क्या सच

बात है ? चुड़ैल की चोटी पकड़ कर घरसे निकाल दूँगी । देखो तो सही, तुम्हारा सबेरे-सबेरे का सारा जमा-जमाया रङ्ग मिट्टी कर दिया । खेमा भी बड़ी समझदार है, जानती है मालकिन मेहमान के साथ बातचीत करती होंगी, एकदम वहीं जाकर उपस्थित हो गई—मानों लज्जा शर्म सब हड़प कर गई । जाओ छोटी रानी तुम घर-गृहस्थी के झगड़ों में मत पड़ो, तुम बाहर जाओ, मैं किसी-न-किसी तरह सुलझा लूँगी ।"

मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है । क्षण भर में काया-पलट हो जाती है ! अभी सबेरे घर का काम-काज फेंक कर किस भाव से सन्दीप से अलाप-आलोचना करने बैठक में गई थी ! अब जो लौट कर आई तो घर-गृहस्थी के अभ्यस्त आदर्श के सामने वही बात ऐसी अनोखी और अनुचित मालूम होने लगी कि मुझसे कुछ उत्तर न बन पड़ा और सीधी अपने कमरे में चली गई ।

मैं खूब जानती हूँ मँझली रानी ने यह झगड़ा जान-बूझ कर कराया था । पर इस बात पर कुछ कहने का मेरा मुँह नहीं रहा था । ननकू दरवान के निकालने पर जो उस दिन मैंने स्वामी के साथ जिद्द की थी, उसीपर अन्त तक दृढ़ न रह सकी । धीरे-धीरे अपनी उत्तेजना पर आप मुझे लज्जा होने लगी और फिर मँझली रानी का मेरे स्वामी से कहना,—"भैया, अपराध मेरा ही है । हम तो पुरानी चाल के लोग हैं, हमें तुम्हारे उन सन्दीप बाबू का चाल-चलन किसी तरह भला नहीं लगता, इसी कारण मैंने जरा दरवान से कह दिया था । इसमें छोटी रानी का कुछ अपमान है यह कभी ध्यान में भी नहीं आया था, बल्कि मैंने

तो इसे बिलकुल उलटा सोचा था। पर क्या करूँ मैं हूँ ही ऐसी मूर्ख !"

देश-सेवा और पूजाकी दृष्टिसे जो बात ऐसी उज्ज्वल दिखाई पड़ी थी, उसीको जब इस प्रकार नीचेकी ओरसे देखनेका मौका मिला तो पहिले तो क्रोध हुआ; फिर मनमें ग्लानि होने लगी।

आज सोनेके कमरेका द्वार बन्द करके खिड़कीके पास बैठ कर सोचने लगी कि सबके साथ स्वर मिला कर रहनेसे जीवन कितना सरल हो सकता है! वह देखो, मँझली रानी निश्चिन्त मनसे बरामदेमें बैठी सुपारी काट रही हैं। इस सरल भावसे ऐसा सहज काम मेरे लिये कैसा कठिन हो गया है। रोज अपने मनसे पूछती हूँ, इसका अन्त कहाँ है? सचेत होकर उठनेपर यह सब बातें क्या ज्वर-पीड़ित रोगीके प्रलापके समान भूल जाऊँगी, या हाथ-पैर तोड़ कर सर्वनाशके सागरमें ऐसी डूबूँगी कि इस जीवनमें फिर उद्धार ही न होगा? अपने सौभाग्यको सरल भाव से ग्रहण क्यों न कर सकी? जीवनका क्यों व्यर्थ नाश कर डाला?

यही हमारा शयन-गृह है। इसीमें मैं नौ बरस पहले नव-वधू होकर आई थी। आज इस कमरेकी दीवारें, छत, धरती मुँह खोले, आँखें फाड़े मेरी ओर देख रही है। एम० ए० की परीक्षा देकर जब मेरे स्वामी घर आये थे, तो फूलोंका यह पौधा अपने साथ लेते आये थे। यह पौधा भारत-सागरके किसी द्वीपका है और इसके लिये उन्होंने बहुत दाम खर्च किये थे। इसमें पत्ते तो बहुत कम हैं, पर एक समय जा लम्बा-सा फूलों

का गुच्छा इसमेंसे निकला था, वह मानों सौन्दर्यका प्याला था, मानों इन्द्र-धनुषने उन पत्तोंकी गोदमें जन्म लिया था।

हम दोनोंने निश्चय करके इसे अपने शयन-घरकी खिड़कीके पास टाँग दिया था, फूल वही एक बार खिला था, फिर नहीं खिला, आशा अब भी है शायद फिर एक बार खिले। आश्चर्य यही है कि अब भी अभ्यासवश इसमें रोज जल दे देती हूँ और इसके पत्ते अब तक हरे हैं।

आज चार बरस हुए मैंने अपने स्वामीकी एक तस्वीर हाथी दाँत के चौकठेमें लगाकर सामने ताक में रखी थी। आज अकस्मात् भी उसकी ओर नजर जा पड़ती है तो आँखें नीची करनी पड़ती हैं। कुछ दिन पहले तक रोज स्नानके बाद फूल तोड़कर उस तस्वीरके सामने रखकर प्रणाम किया करती थी कई बार उसी बातपर स्वामी के साथ मेरी बहस हो चुकी है।

उन्होंने एक दिन कहा था,—"तुम जो मेरा इतना आदर करके फूलोंसे मेरी पूजा करती हो, इससे मुझे बड़ी लज्जा होती है।"

मैंने पूछा,—"तुम्हें लज्जा क्यों होती है?"

वह बोले,—"केवल लज्जा नहीं, ईर्ष्या भी होती है।"

मैंने कहा,—"लो और सुनो। ईर्ष्या तुम्हें किससे होती है?

वह बोले,— "इसी तस्वीरसे। मैं सामान्य साधारण पुरुष हूँ, मुझसे तुम सन्तुष्ट नहीं होती, तुम किसी ऐसेको चाहती हो, जो असाधारण हो और तुम्हारी बुद्धिको अभिभूत कर दे, इसी लिये तुम मेरा दूसरा रूप गढ़कर अपना मन बहलाती हो।"

मैंने कहा,-"मुझे तुम्हारी यह बातेंसुनकर बड़ा गुस्सा आता है।"

यह बोले,—"मुझपर गुस्सा करने से क्या होगा, गुस्सा अपने भाग्यपर करो। तुमने मुझे स्वयंवर-सभा में पसन्द करके थोड़े ही लिया है, मैं जैसा कुछ भी हूँ तुम्हें आँखें बन्द करके लेना पड़ा। इसीलिये मुझे देवत्व देकर यथाशक्ति संशोधन करना चाहती हो। दमयन्ती का स्वयंवर हुआ था, इसीलिये वह देवताओं को छोड़कर मनुष्य को पसन्द कर सकी, तुम्हारा स्वयंवर नहीं हुआ, इसलिए तुम रोज मनुष्य को छोड़ कर देवताके गले में माला पहनाती हो।"

उस दिन इस बात पर मुझे इतना गुस्सा आया था कि मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। उसी दिन को याद करके आज उस तस्वीर की ओर आँख नहीं उठा सकती।

आज मेरे गहने के बक्स में और एक तस्वीर है, उस दिन बैठक की झाड़-पोंछ कराते समय उस चौकठे को उठा कर ले आई थी—वही चौकठा जिसमें मेरे स्वामी की तस्वीर के साथ सन्दीप की तस्वीर लगी थी। उस तस्वीर की मैं पूजा नहीं करती, वह मेरे हीरे-मोती के बक्स में ढकी रक्खी है। वह बन्द पड़ी है। इसीलिये मानो हृदय को और भी आकर्षित करती है। कमरे के सब दरवाजे बन्द करके उसे कभी-कभी निकाल कर देखती हूँ। रात को उसे लैम्प के पास रख कर घण्टों बैठी देखा करती हूँ। इसके बाद रोज सोचती हूँ, उसे लैम्प की बत्ती से जला कर राख कर डालूँ पर रोज ही लम्बी साँस लेकर उसे धीरे-धीरे अपने गहने के बक्स में बन्द करके रख देती हूँ। किन्तु ओ अभागी, ये हीरे मोती तुझे किसने दिये थे? उनमें से हर एक में कितना

आदर, कितना प्रेम भरा है ! आज तुझे देख कर इन्हें अवश्य मुँह छिपाने की इच्छा हो रही है । इससे तो मैं मर ही जाती ।

सन्दीप की आत्म-कथा

मेरे मनमें यह प्रश्न कई दिन से उठ रहा है कि विमला के लिये मैंने अपना जीवन क्यों जञ्जाल में डाल दिया। मेरा जीवन न हुआ नदी में पड़ा केले का वृक्ष हो गया कि जहाँ-तहाँ अटक-अटक कर बह रहा है !

विमला मेरी कामना की अभीष्ट हो गई है, इस बात पर मैं जरा भी लज्जित नहीं हूँ। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, वह मुझे कितना चाहती है । इसीलिये मेरा उस पर पूर्ण अधिकार है। फल वृक्ष की टहनी में लटक रहा है, उस पर क्या सदैव उसी टहनी का अधिकार रहेगा ? उनका जितना रस, जितनी मिठास है, यह सब मेरे लिये है—मेरे फैले हुए हाथों में गिर पड़ना ही उसकी सार्थकता है—यही उसका धर्म है, यही नीति है। मैं उसे अवश्य तोड़ूँगा, उसे कदापि व्यर्थ न होने दूँगा।

पर मुझे चिन्ता यही है कि मैं बन्धन में क्यों फँस गया। जान पड़ता है, विमला मेरे जीवन का अंश बनती जाती है । मैं पृथ्वी पर कुछ करने आया हूँ, लोगों के मन प्रेरित करने आया हूँ, जनता को उसकाने आया हूँ—वही जनता की भीड़ मेरे युद्ध

का घोड़ा है, मेरा आसन उसकी पीठपर है, उसकी लगाम मेरे हाथमें है। उसे अपने लक्ष्यकी खबर नहीं, यह भी मैं ही जानता हूँ, उसे केवल काँटों और कीचड़से काम है, उसे विचारका अवसर न दूंगा, केवल हाँके जाऊँगा।

मेरा वही घोड़ा आज द्वारपर खड़ा अस्थिर हो रहा है। पैरोंसे धरती खोदे डालता है, उसकी हिनहिनाहट से आकाश फटा जाता है, पर मैं कहाँ हूँ? और क्या कर रहा हूँ? इस प्रकार बैठा क्यों समय नष्ट कर रहा हूँ? उस ओर न जाने कितने शुभ अवसर निकल गये।

मैं सोचता था, मैं तो आँधीके समान हूँ, मार्गमें, जो फल तोड़ कर गिराऊँगा, वे मेरा प्रवाह कैसे रोक सकेंगे? पर इस बार जो मैं फूलके चारों ओर चक्कर लगा रहा हूँ, यह तो भ्रमर का काम है, आँधी का काम नहीं है।

तभी तो कहता हूँ कि कल्पनाकी सहायतासे मनुष्य अपने आपको जिस रंगमें रङ्ग लेता है, वह रंग केवल बाहरी होता है, भीतरसे मनुष्य वहका वही रहता है। यदि कोई अन्तर्यामी मेरा जीवन-बृत्तान्त लिखता तो स्पष्ट मालूम हो जाता कि मुझ में और उस गंवार पंचूमें ही नहीं बल्कि मुझमें और निखिलमें भी अधिक अन्तर नहीं है। कल मैं अपनी आत्म-कहानीके पुराने पृष्ठ उलट रहा था। देखा कि जिस समय बी० ए० पास कर चुका था, मेरा मस्तिष्क दर्शन-शास्त्रके जोर से फटा जाता था। तभी मैंने प्रण किया था कि अपने या और किसीके रचे

हुए किसी माया-जालको अपने जीवनमें स्थान न दूंगा, अपने जीवनको नितान्त वास्तवके आधारपर उठाऊँगा। पर उसके बादसे आजतक सारी जीवन-कहानीसे क्या स्पष्ट होता है? वह गठी हुई बुनावट कहाँ है? यह तो सारा विस्तार जालके समान है, सूतके तार तो बराबर चल रहे हैं, पर जितने तार हैं, उनसे भी अधिक छेद दिखाई पड़ते हैं। उन छेदों के साथ बहुत लड़ाई की, पर अबतक उन्हें भर न सका। कुछ दिन अपनी सफलतापर निश्चिन्त हो खूब जोरमें चलता रहा, आज देखता हूँ एक ओर एक बड़ा-सा छेद सामने है।

आज देखता हूँ, मनमें कभी-कभी काँटा-सा चुभता है। जिस चीजकी कामना हो, उसे सामने आनेपर कभी न छोड़े—यह स्पष्ट बात और संक्षिप्त मार्ग है। इस मार्गपर जो दृढ़ होकर चल सकते हैं, वही सिद्धि प्राप्त करते हैं। मेरा सदा इस बातपर विश्वास रहा है। पर इन्द्रदेव इस तपस्याको सहजमें पूरा नहीं होने देते; कहीं-न-कहींसे सहानुभूतिकी अप्सराको भेज कर साधककी दृष्टिको अस्पष्ट कर देते हैं।

मैं देख रहा हूँ विमला जालमें फँसी हिरनीके समान छट-पटा रही है, उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें कितना भय, कितनी करुणा भरी है, अपना बन्धन तोड़नेके लिये वह कैसा जोर लगा रही है—शिकारी तो यही देख कर प्रसन्न होता है। प्रसन्न मैं भी हूँ, पर दुखित भी हूँ। केवल इसीलिए फँदा खींचनेमें देर हो रही है।

मैं जानता हूं, कई बार ऐसा अवसर आ चुका है कि मैं झपट कर विमलाका हाथ पकड़ उसे खींच कर अपने हृदयसे लगा लेता, और वह कुछ भी न बोलती, पर समयको जान-बूझ कर टाल दिया—निःसङ्कोच बलका प्रयोग कर "निश्चितप्राय" को क्षण भरमें "अनिश्चित" न होने दिया। इससे स्पष्ट समझ गया कि इतने दिनसे जो बाधाएँ मेरी प्रकृति में छिपी पड़ी थीं, आज मार्ग रोके खड़ी हैं।

रावण, जिसे मैं रामायणका प्रधान नायक समझता हूं, इसी प्रकार मरा था। उसने सीताको अपने अन्तःपुरमें न लाकर अशोक वनमें रक्खा था—इतने बड़े वीरके हृदयमें यह जो एक कच्चा सङ्कोच बाकी था, उसीके कारण सारा लङ्काकाण्ड व्यर्थ हो गया। यह सङ्कोच न रहता तो सीता अपना सतीत्व छोड़ कर रावणकी पूजा करती। इसी सङ्कोचके कारण जहाँ विभीषण को मार डालना उचित था, वहाँ रावणने सदा उसपर दया की, अन्तमें यह हुआ कि प्राण देने पड़े।

जीवनकी यही बड़ी शोकजनक समस्या है। यह पहले तो छोटेसे रूपमें हृदयके किसी कोनेमें छिपी तड़फती रहती है, किन्तु पीछे बढ़ कर एकदम सर्वनाश कर डालती है। मनुष्य अपनेको जैसा समझता है, वास्तवमें वैसा नहीं है, इसीलिये सारी घटनाएँ घटती हैं।

रही निखिलकी बात। वह कैसा ही अद्भुत! सही है उसकी बातोंपर कितना ही हँसूँ, पर यह किसी तरह अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह मेरा मित्र है। पहले उसकी बातोंपर मैंने

कभी अधिक विचार नहीं किया, पर अब कुछ दिनसे मुझे उसके सामने लज्जा होने लगी है, कष्ट भी होता है। इसीलिये आज कल निखिलसे दूर रहना चाहता हूँ, किसी तरह सामना न हो तो ही अच्छा है।

यही सब दुर्बलताके लक्षण हैं। अपराधके भूतपर विश्वास करते ही वह वास्तविक रूपमें आ उपस्थित होता है—फिर कितना ही अविश्वास करो वह सिरपर चढ़ ही बैठता है। मैं निखिलको निसंकोच होकर यही बताना चाहता हूं कि इन सब बातोंको अच्छी तरह वास्तविक रूपमें देखना चाहिये। सत्य और वास्तव से सच्चे मित्रोंके मनमें विकार आना उचित नहीं।

किन्तु यह अस्वीकार करना कठिन है कि इसी विचारने मुझे दुर्बल कर दिया है। मेरी इस दुर्बलतापर विमला मुग्ध नहीं हुई—मेरे निःसंकोच पौरुषकी आगमें ही उस पतङ्गिनीने अपने पर झुलस लिए हैं। संकोच जब उसके प्रकाशको धुँधला कर देता है, उसी समय विमलाके मनमें भी द्विविधा पैदा होती है। पर जब उसका मन घृणासे भर उठता है, उस समय भी अपनी स्वयंवर माला मेरे गलेसे नहीं निकाल सकती, केवल आँखें मूँदना चाहती है।

किन्तु हम दोनोंके लिये लौटनेका मार्ग बन्द हो गया है। हम दोनों एक दूसरेको नष्ट करेंगे, घृणा करेंगे, पर छोड़ नहीं सकते।

—❀—❀—❀—

*

निखिलेश की आत्म-कथा

पहले जो एक बात स्पष्ट नहीं थी, अब अच्छी तरह समझ में आने लगी। स्त्री-पुरुषके पारस्परिक प्रेमकी अग्निको हम सबने फूँक मार-मार कर इतना भड़का दिया है कि आज समस्त मनुष्यत्वकी दुहाई देकर भी हम उसे बसमें नहीं ला सकते। घरके प्रदीपको घरकी अग्नि बना बैठे हैं। अब उसे बढ़नेके लिये और स्थान देना उचित नहीं है, अब उसका दमन करनेका दिन आ गया है। स्त्री-पुरुषकी आपसकी प्रीति प्रकृतिके हाथों आदर-सत्कार पाते-पाते देवीका रूप धारण कर बैठी है। पर यदि उसके सामने पुरुषके पौरुषको बलि देकर उसे रक्तपान कराना ही पूजा है, तो मैं ऐसी पूजापर विश्वास नहीं रखता। उसने जो बनाव-शृङ्गार, लज्जा-सङ्कोच, हाव-भाव, हँसने-रोनेका इन्द्रजाल तैयार किया है, उसे तोड़ना ही पड़ेगा।

आज सबेरे सोनेके कमरेवाली आलमारीमेंसे एक पुस्तक लेने गया था। बहुत समयसे कभी दिनके समय इस कमरेमें नहीं गया था। आज जो दिनके प्रकाशमें उसे देखा तो मन कैसा व्याकुल हो गया! खूँटीपर विमलाकी चुनी हुई साड़ी पहिननेके लिये तैयार रक्खी थी। सिङ्गारदानके ऊपर उसके बालोंके काँटे, तेल, कँघी, लैवेंडरकी शीशी ये सब चीजें रक्खी थीं और वहीं सिन्दूरकी डिबिया भी थी! मेजके नीचे उसका वही छोटा-सा कामदार जूतेका जोड़ा रक्खा था। यह जूता मैंने एक मित्र के द्वारा लखनऊसे मँगाया था। विमला उस समय किसी तरह यह जूता पहननेको राजी नहीं थी। जूता पहन कर कमरे

से बरामदे तक जानेमें उसे बड़ी लज्जा मालूम होती थी। इसके बादसे विमलाने बहुत से जूते तोड़ डाले, पर इसे स्मारकके तौर पर रख छोड़ा है। मैंने उससे एक दिन हँसीमें कहा था, जब मैं सोता रहता हूँ तो तुम चुपकेसे मेरे पैरोंकी धूल लेकर मेरी पूजा करती हो, मैं तुम्हारे चरणकी धूल निवारण करके आज अपने जाग्रत देवताकी पूजा करूँगा। विमलाने उत्तर दिया था, जाओ तुम ऐसी बातें मत करो, नहीं तो मैं उस जूतेको कभी न पहनूँगी। यही मेरा चिर-परिचित शयनघर है। इसमें एक विशेष सुगन्ध भरी है, जिसे मेरा हृदय ही जानता है। मुझे पहले ध्यान भी नहीं था कि मेरे रसपिपासु हृदयसे अनेक लतायें निकल-निकल कर यहाँकी सब छोटी-छोटी चीजोंपर लिपट गई हैं। अब जड़मूल कट जानेसे भी आत्मा मुक्त नहीं होती, यह छोटा-सा जूता तक भी उसे अपनी ओर खींच रहा है। देखते-देखते अकस्मात् अपनी उसी तस्वीरपर नज़र जा पड़ी। उसके सामने बहुत दिनके सूखे हुए काले-काले फूल पड़े थे। पूजामें इतना विकार आ जानेपर भी तस्वीरके मुखपर कुछ विकार दिखाई नहीं पड़ता। इस कमरेमें ये सूखे हुए काले-काले फूल ही मेरा उचित उपहार है। इनके अबतक यहाँ रहनेका कारण यही है कि इनका फेंक देना भी व्यर्थ समझा गया। जो हो, सत्यको मुझे इसी नीरस काले रूपमें ग्रहण करना चाहिये—कभी-न-कभी उस चौखटेके अन्दरवाली तस्वीरके समान बिलकुल निर्विकार भी हो जाऊँगा।

इसी समय विमला भी अकस्मात् पीछेसे आ गई। मैंने

जल्दीसे नजर बचाकर आलमारीकी ओर जाते हुए कहा,—"Amiel's Journal (एमियलकी पत्रिका) लेने आया था।" मुझे यह कैफियत देनेकी क्या आवश्यकता थी, यह मैं नहीं जानता। पर उस जगह मानों मैं अपराधी या अनाधिकारी था, मानों किसी ऐसी वस्तुपर नजर डालने आया था जो छिपी हुई थी और छिपाने योग्य थी। मैं विमलाके मुखकी ओर आँख न उठा सका और झटपट बाहर चला गया।

बाहर अपने कमरेमें पुस्तक लिये बैठा था, पर पढ़ना बिलकुल असम्भव जान पड़ा, यही नहीं, जीवनमें जो कुछ है मानों अब असाध्य हो उठा, कुछ देखने या सुनने, कहने या करनेकी मानों लेशमात्र भी इच्छा नहीं रही। जान पड़ता था कि सारा भविष्य उसी एक मुहूर्तमें इकट्ठा होकर पत्थरके समान मेरी छातीपर आ पड़ा। ठीक इसी समय पंचू एक टोकरीमें बहुतसे नारियल लिये हुए आया और मुझे प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया।

मैंने कहा,—"यह क्या, पंचू, ये क्यों लाये हो?"

पंचू मेरे पड़ोसी जिमींदारी हरीश कुण्डकी रैयत है। मैं उसे मास्टर महाशयके द्वारा जानता हूँ। पंचू बहुत गरीब है और मेरा रैयत भी नहीं है, इसीलिये उसके हाथसे कोई उपहार लेना मेरे लिये उचित नहीं था। मैंने सोचा, जान पड़ता है बेचारेने निरुपाय होकर पेट भरनेका यही उपाय सोचा है और कुछ बख्शीशकी अभिलाषा लेकर आया है।

मैं जेबसे दो रुपये निकाल कर उसे देने लगा, पर वह हाथ जोड़ कर बोला,—"नहीं हजूर यह मैं नहीं ले सकता।"

"यह क्या, पंचू ?"

"अब हजूरसे क्या छिपाऊँ। एक बार बड़ी तंगीके समय जब कुछ उपाय न सूझा तो मैंने हजूरके सरकारी बागसे कुछ नारियल चुरा लिये थे, वही अब देने आया हूं, अब बूढ़ा हुआ, न जाने कब समय आ जाय!"

'एमियलका जर्नल' पढ़नेसे आज मुझे कुछ लाभ न होता, पर पंचूकी इस एक बातने मानों मनका बोझ हलका कर दिया। एक स्त्रीके संयोग-वियोगका सुख-दुःख छोड़ कर इस पृथ्वीपर और भी अनेक वस्तुएँ हैं, मनुष्यका जीवन बहुत विस्तृत है, उसके बीचमें खड़े होकर ही हम अपने दुःखसुखका भी ठीक अन्दाजा कर सकते हैं।

पंचू मास्टर महाशयपर बड़ी भक्ति रखता है। वह अपना और अपने कुटुम्बका पेट कैसे पालता है, यह भी मैं जानता हूँ। रोज सवेरे उठ कर एक टोकरीमें पान तम्बाकू, रंगीन सूत, छोटे छोटे कँघे और आइने इत्यादि लेकर वह फेरी लगाता है और ये चीजें गाँवकी स्त्रियोंके हाथ बेच कर कुछ धान ले आता है। इस प्रकार उसे कुछ पैसे बच रहते हैं। जिस दिन सवेरे लौट आता है, उस दिन झटपट खा-पीकर बताशेवालेकी दूकानपर जाकर काम करता है। इसके बाद घर आकर शंखकी चूड़ियाँ तैयार करता है—इसीमें कई प्रहर रात चली जाती है। ऐसा भारी परिश्रम करके भी उसके बाल-बच्चोंके लिये पेटभर खाना नहीं जुटता। उसका नियम है कि खाने बैठते ही लोटाभर जल पीकर पेट भर लेता है और उसके भोजनका अधिकांश प्रायः

सस्ता बीज भरा केला हुआ करता है।

एक बार मैंने सोचा था कि उसको कुछ महीना बाँध दूं, पर मास्टर महाशयने मुझसे कहा,—"तुम्हारे दानसे दुःख तो नष्ट होनेसे रहा, मनुष्यत्व चाहे नष्ट हो जाय। हमारे देशमें न जाने कितने पंचू हैं। आज सारे देशकी छातियोंमें मानों दूध सूख गया है। यह ऐसी चीज नहीं है, जिसे तुम केवल रुपया देकर बाहरसे उत्पन्न कर सको।"

यह वास्तवमें बड़ी चिन्ताका विषय है। मैंने निश्चय किया था कि इसी समस्याके सुलझानेमें अपना सर्वस्व लगा दूंगा। उसी समय मैंने विमलासे कहा था,—"विमला, हम दोनोंको चाहिए कि देशका दुःख निवारण करनेमें अपना समस्त जीवन लगा दें।"

विमलाने हँसकर कहा,—"तुम मेरे लिये राजपुत्र सिद्धार्थके समान हो, पर देखो अन्तमें मुझे छोड़ कर न चले जाना।"

मैंने कहा,—"सिद्धार्थकी तपस्यामें उनकी स्त्री शामिल नहीं थी, मैं अपनी तपस्यामें स्त्रीको भी चाहता हूँ।"

इस प्रकार हँसीमें बात उड़ गई। वास्तवमें विमलाकी गणना उन स्त्रियोंमें होनी चाहिये, जिन्हें महिला कहते हैं। वह गरीब घरकी लड़की है, पर उसका स्वभाव रानियोंका-सा है। वह जानती है कि जो लोग नीची श्रेणीके हैं, उनकी दुःख-सुख व अच्छे-बुरेकी कसौटी भी नीची श्रेणीकी होती है। उन्हें अभाव अवश्य रहता है, पर यह अभाव उनके लिये वास्तवमें अभाव नहीं है। उनकी हीनता ही उनकी रक्षा करती है। छोटेसे तालाबका

जल कूएके भीतर ठीक रहता है, कुआ काट कर उसकी सीमा बढ़ाने का उपाय करते ही तलीकी कीचड़ दिखाई पड़ने लगती है।

बात यह है कि विमला मेरे घरकी अंश अवश्य है, पर मेरी साधनाकी अंश नहीं।

विमला की आत्म-कथा

सारे देशको आज जिस आवेगने विह्वल कर रक्खा है, उसीका प्रभाव एक नये रूपमें मेरे जीवनपर भी पड़ा है। मेरे भाग्य-देवताका रथ धीरे-धीरे बढ़ रहा है, पहियोंकी घड़घड़ाहट रात-दिन मेरे हृदयमें गूँजा करती है। मेरा विचार था कि यदि मेरी अवस्थामें कोई अनहोनी घटना उपस्थित हो जायगी, तो उसका दायित्व मेरे ऊपर न होगा। जिस क्षेत्रमें पाप-पुण्य, विचार-विवेक, दया-मायाका ध्यान रखना पड़ता है, वहाँ से मैं बहुत दूर गई थी। मैंने तो कभी इस बातकी कामना या आशा नहीं की, फिर मैं क्यों इसकी उत्तरदाता समझी जाऊँ? इतने दिन तक जिस देवताकी एक मनसे पूजा करती आई थी, वर-दानके समय उसके स्थानमें एक और देवता आ उपस्थित हुआ। इसी कारण जिस प्रकार सारा देश सचेत हो उठा है और भविष्यकी ओर दृष्टि जमा कर "वन्देमातरम्" पुकार रहा है, उसी प्रकार मेरी समस्त आत्मा एक अपूर्व, अनोखे, अनजान और अपरिचित मनुष्यके प्रति "वन्दे" शब्दकी ध्वनिसे गूँज रही है।

मैं कभी-कभी रात के समय चुपके से उठकर ऊपर खुली हुई छत पर जा खड़ी होती हूँ। हमारे बागसे लगे हुए अधपके धानके खेत हैं, उनसे आगे गाँवके घने वृक्षोंके बीचमें नदी का जल दिखाई पड़ता है—सारा दृश्य मानों विराट रात्रि के गर्भ में किसी भावी सृष्टिके भ्रूण के समान निद्रित पड़ा रहता है, ऐसे समय मुझे जान पड़ता है मानों देश भी मेरे ही समान एक युवती है, अबतक अपने घर में निश्चित बैठी थी, आज अपूर्व और अज्ञात् भविष्य का आह्वान सुन कर निकल आई है—उसे सोच-विचार का भी समय नहीं मिला, सीधी अन्धकार में जा रही है, दिया-बत्ती लेने तक की सुध न रही। मैं जानती हूँ, इस सुप्त रात्रि में उसके हृदयमें कैसी धुकड़-पुकड़ हो रही है। मैं जानती हूँ, इस नई वंशी की आवाज सुन कर उसका मन खिंचा जा रहा है, वह समझती है कि जिस वस्तु की खोज थी वह मिल गई, जहाँ जाना था; वहाँ पहुँच गई। मानों अब आँख मूँद कर चलने में भी भय नहीं है। पर यह सब तो माता का कर्त्तव्य नहीं हैं। माँ तो भूखी सन्तान को दूध पिलाती है, अन्धेरे में दीया जलाती है, घरका काम-धंधा करती है पर इस युवती को इन बातों का कुछ भी ध्यान नहीं है। वह आज अभिसारिका बनी हुई है, क्योंकि हमारा देश तो वैष्णव कविता का देश है। उसे घर-बार या काम-काज की कुछ भी सुध नहीं है। इसे केवल अन्तहीन आवेग से मतलब है, उसी आवेग के बल पर चल रही है, पर मार्ग कौन-सा है और कहाँ को जा रहा है, इसकी उसे कुछ भी खबर नहीं है। मैं भी वैसी ही अभिसारिका हूँ, घर-बार खो बैठी हूँ और मार्ग की कुछ खबर

नहीं है। उपाय और उद्देश्य दोनों मेरे निकट छायामात्र हो गये हैं, केवल आवेग और गमन रह गया है। अरी निशाचरी याद रख जब सवेरा होगा तो लौटने की बटिया का चिह्न तक मुझे न मिलेगा। किन्तु लौटना कैसा! मुझे तो मरना है! जिस काले अन्धकार की ओरसे वंशी की आवाज सुनाई पड़ी थी, यदि उसीमें मेरा सर्वनाश हो जाय, तो चिन्ता की कौन-सी बात है। सब नष्ट हो जायगा? निशान तक न रहेगा, कालिमा के साथ मेरा कलङ्क भी मिल कर एक हो जायगा, इसके पश्चात् कैसा अच्छा और कैसा बुरा, किसकी हँसी और किसका रोना!

उस समय बँगला देशमें समय के एँजिन में परी भाप भरी हुई थी। जो घटनाएँ कठिन दिखाई पड़ती थीं, उनका आज भक-भक करके विकाश हो रहा था, देश के जिस कोने में हम पड़े थे, उसको भी अब वंचित रहना कठिन दिखाई पड़ने लगा। अब तक हमारे जिले में और भागों की अपेक्षा आन्दोलन का जोर वहुत कम था। इसका प्रधान कारण यह था कि मेरे स्वामी किसी पर दबाव डालना नहीं चाहते थे। उनकी राय थी कि देश की निमित्त जो त्याग करते हैं वही साधक हैं, पर जो उपद्रव करते हैं वे शत्रु हैं, वे मानों स्वाधीनता की जड़ काट कर पत्तों में जल देना चाहते हैं।

पर सन्दीप बाबू जब से वहाँ आये, उनके चेलोंने हर ओर आन्दोलन करना शुरू किया, सभाएँ होने लगीं, वक्ताओं की धूम मच गई और उत्तेजना की लहरें वेग के साथ उठने लगीं। सन्दीप की सरपरस्ती में स्थानीय युवकों का एक दल बन गया।

उनमें अनेक ऐसे थे, जो गाँवके कलङ्क समझे जाते थे। उत्साहकी ज्वालासे उनका चरित्र भी उज्ज्वल हो उठा। यह भली-भाँति स्पष्ट हो गया कि देश में जब आनन्दकी हवा चलती है, तो मनुष्य की विकृति आप-ही आप दूर हो जाती है। जब देशमें आनन्द नहीं होता तो देशकी सन्तानके लिये भी सरल, सबल और स्वस्थ होना बड़ा कठिन हो जाता है।

इसी समय सबका ध्यान मेरे स्वामीकी ओर भी आकर्षित हुआ। उनके इलाक़ेसे अभीतक विलायती नमक, विलायती चीनी और विलायती कपड़े वहिष्कृत नहीं हुए थे। रियासतके नौकर-चाकर तकको इस बातपर लज्जा होने लगी। जब कुछ पहले स्वयं उन्होंने स्वदेशी चीजोंका प्रयोग बढ़ाने की चेष्टा की थी तो बूढ़े, बच्चे सभीने उनकी हँसी उड़ाई थी। विदेशीके बहिष्कारसे पहले हम ही सब स्वदेशीकी अवज्ञा करते थे। मेरे स्वामी अब भी देशी चाकूसे देशी पेंसिल बनाते हैं, सरकंडेके कलमसे लिखते हैं, पीतलके लोटेसे जल पीते हैं और रातको समादानमें देशी बत्ती जलाकर काम करते हैं—किन्तु उनका यह अत्यन्त सादा स्वदेशीपन हमें सदा नीरस जान पड़ा। उनकी बैठककी चीजों की सादगी और गँवारपन पर मुझे सदा लज्जा होती थी, विशेषतः जब मजिस्ट्रेट या और कोई साहब उनसे मिलनेके लिये आते थे। मेरे स्वामी हँस कर कहा करते,—"ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर तुम विचलित क्यों होती हो।"

मैं उत्तर देती,—"पर वे तो हमें असभ्य समझने लगेंगे।"

वह कहते,—"तो मैं भी समझूँगा कि उनकी सभ्यता चमड़ेकी

पालिश ही तक है, भीतरकी लाल रक्तधारा तक नहीं पहुँचती।"

उन्होंने अपने लिखने-पढ़नेकी मेजके लिये एक साधारण पीतलके ग्लासको फूलदान बना रक्खा था। मैं जब किसी साहबके आनेकी खबर सुनती, उस ग्लासको चुपकेसे उठा लेती और एक विलायती रंगीन काँचके फूलदानमें फूल सजाकर रख देती।

पीछे मेरे स्वामी कहते,—"देखो विमल, प्रकृतिके फूल जैसे सादे और भोले-भाले हैं, वैसा ही यह पीतलका ग्लास भी है। पर तुम्हारी यह विलायती फूलदानी तो ऐसी भड़कीली है कि उसमें वृक्षके फूल न रखकर कागजके फूल रखना ही उचित है।"

उस समय इस विषयमें उनका समर्थन करनेवाला मँझली रानीके सिवा और कोई नहीं था। एक बार वह हाँफती हुई आकर बोली,—"भैया सुना है आजकल देशी साबुन चला है। मेरे तो अब साबुन मलनेके दिन गये, तो भी उसमें चर्बी न हो तो एक बार देखूँ कैसा है।"

मेरे स्वामी इससे बड़े प्रसन्न होते थे। रोज नये-नये ढंगके देशी साबुन आने लगे। साबुन क्या थे अच्छे खासे पीली मिट्टी के ढले थे! मँझली रानीको भी क्या मैं देखती नहीं थी? स्नानके लिये वही पुराना विलायती साबुन, देशी साबुन केवल कपड़े धोनेके काम आता था।

और एक दिन आकर बोलीं,—"भैया, सुना है देशी कलम चलीं हैं, वह तो मुझे मँगा देना।"

"भैयाके उत्साहका अन्त नहीं। कलम नामकी जितनी

दाँतौन की लकड़िया बाजार में मिल सकीं, सभी एक-एक मँझली रानी के कमरे में भेज दी गई। इसमें उनका हर्ज ही क्या था, क्योंकि लिखने पढ़ने का उन्हें काम ही नहीं पड़ता था। एक धोबी का हिसाब रखने का काम था सो पेड़ की टहनी से भी चल सकता था। पर इसके लिये भी वही पुराना हाथी दाँतका कलम सन्दूकची से निकाला जाता था।

असली बात यह थी कि मैं जो अपने स्वामी का समर्थन नहीं करती थी, उसी का उत्तर देने के लिये मँझली रानी यह स्वाँग रचा करती थीं। स्वामी को असली बात समझाने का कोई उपाय नहीं था। जरा बात छेड़ते ही वह ऐसे गम्भीर हो जाते कि मुझे चुप होते ही बन पड़ता। ऐसे लोगों को धोखे से बचाना आप धोखे में पड़ना है।

मँझली रानी को सीने-पीरोने का शौक है। एक बार जब सिलाई कर रही थीं, तो मैंने उनसे कहा,—"यह क्या बात है? देवर के सामने तो स्वदेशी कैंची का नाम आते ही तुम्हारे मुँह में लार टपक पड़ती है और सिलाई करते समय वही विलायती कैंची निकाल बैठती हो।"

मँझली रानी बोलीं,—"इसमें दोष क्या है? उसे इसी बात से कितना आनन्द होता है। मेरा उसका बचपन से साथ रहा है, मैं तो तेरी तरह बिना कारण उसे कष्ट नहीं दे सकती। बस बेचारे का और कोई दिल-बहलावा भी तो नहीं है, एक यह देशी चीजों का खेल है, और दूसरी तू और तेरे ही पीछे सर्वनाश होगा।"

मैंने कहा,—"जो हो, कहना कुछ और करना कुछ, यह अच्छा नहीं लगता।"

मँझली रानी हँस पड़ी और कहने लगीं,—"ओहो सरला, तू तो जान पड़ती है बड़ी सीधी-सादी है, बिलकुल गुरु महाशय के बेंत के समान! स्त्रियों को इतना कड़ा होना शोभा नहीं देता, जरा नरम होना ही ठीक है, जो मुड़ भी जाय तो कुछ हानि न हो।"

मँझली रानी की यह बात कभी न भूलूँगी,—"और उनका तेरे ही पीछे सर्वनाश होगा।"

आज मैं यही सोचती हूँ कि पुरुषों का दिल-बहलावा यदि स्त्री न हो तो ही अच्छा है।

शुक्सायर का हाट इस जिले में सबसे बड़ा हाट है। वहाँ जो एक तालाब है उसके इस पार स्थायी बाजार है और उस पार हर शनिवार को पेंठ लगती है। चौमासे में यहाँ विशेषतः बड़ी भीड़-भाड़ रहती है। तालाब का पानी नदी से जा मिलता है और सूती और ऊनी कपड़ा नावों में आसानी से आ सकता है।

इस समय विदेशी नमक, चीनी और विदेशी कपड़े के विरुद्ध घोर आन्दोलन हो रहा था। मुझसे सन्दीप बाबू ने कहा,—इतना बड़ा बाजार मेरे हाथ में है, इसे बिलकुल स्वदेशी करके छोड़ेंगे, इस इलाके से विदेशी का कलङ्क एकदम मिट जाना चाहिये।"

मैं भी कमर बाँध कर बोली,—"अवश्य ऐसा ही होगा, इसमें सन्देह क्या है?"

सन्दीपने कहा,—"इसी बातपर मेरा निखिलके साथ कितना तर्क-वितर्क हुआ। पर वह किसी तरह नहीं मानता। वह कहता है व्याख्यान चाहे जितने दो, पर जबरदस्ती दबाव न डालने दूंगा।"

मैंने अहंकारके साथ कहा,—"अच्छा यह मैं देख लूँगी।"

मैं जानती हूँ उन्हें मुझसे कितना गहरा प्रेम है। उस दिन मेरी बुद्धि यदि स्थिर होती तो ऐसे समय उस प्रेमके बलपर उनसे कुछ कहते हुए लज्जाके मारे मेरा सिर कट जाता। पर मुझे तो सन्दीपको अपनी शक्ति दिखानी थी! उनके निकट मैं शक्ति-रूपिणी थी! वह अपनी प्रबल व्याख्याके द्वारा मुझे बार-बार समझा चुके थे कि परमाशक्ति प्रत्येक मनुष्यमें विशेष रूप धारण करती है। वे कहते थे, हम वैष्णव तत्त्वकी आह्लादिनी शक्तिको प्रत्यक्ष देखनेके लिये इतने व्याकुल होकर घूम रहे हैं, जब कहीं देख पाते हैं तो भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि हृदयमें जो त्रिभंगमुरारि बंशी बजा रहे हैं उसका क्या अर्थ है? कभी-कभी मुझे यह गीत गाकर सुनाते :—

जखन देखा दाओनि राधा तखन बेजेछिल बांशि।
एखन चोखे चोखे चेये सुर जे आमार गेल भासि॥
तखन नाना तानेर छले
डाक फिरैचे जले स्थले,
एखन आमार सकल कांदा राधार रूपे उठ्ल हासि।

[जबतक तुम सामने नहीं आईं और मेरी बंशी बजती रही। अब तुमसे आँख-से-आँख मिलते ही मेरा सुर बह गया, अर्थात् बंशी बन्द हो गई। उस समय नाना सुरोंके भेषमें मैं जल और स्थलपर बुलाता फिर रहा था। अब मेरा सारा विलाप तुम्हारे रूप को देख कर हँस उठा है।]

यह सब सुनते-सुनते मैं भूल गई थी कि मैं विमला हूँ। मैं मानो शक्तितत्त्व हूँ, रसतत्व हूँ, मेरे लिये कोई बन्धन नहीं है, मेरे लिये सब कुछ सम्भव है, मैंने जिस वस्तुको स्पर्श किया है उसकी मानों नई सृष्टि हो गई है, मैंने अपने लिये मानों जगत्की भी नई सृष्टि कर ली है ; मेरे हृदयकी पारसमणिके स्पर्शसे पहले शरद्के आकाशमें इतना सुवर्ण नहीं था। और उस वीरको भी मैंने समय-समयपर नया उत्साह प्रदान किया है, उसी साधक वीरको, उसी अपने भक्तको, उसी ज्ञानमें उज्ज्वल, तेजमें उद्दीप्त, भावरसमें अभिषिक्त अपूर्व प्रतिभाको—मैं तो स्पष्ट अनुभव कर रही हूँ कि उसके हृदयमें मैंने क्षण-क्षणपर नई जान डाल दी है, वह मानो मेरी ही सृष्टि है। उस दिन सन्दीप बाबू बहुत अनुरोध करके एक नवयुवकको मेरे पास लाये थे। वह उसके विशेष भक्तोंमें है और उसका नाम अमूल्यचरण है। तुरन्त ही मैंने देखा कि उसकी आँखोंमें एक नई दीप्ति जल उठी। मैं समझ गई उसने आद्याशक्तिको देख लिया और उसके रक्तमें मेरी सृष्टि का कार्य आरम्भ हो गया। अगले दिन सन्दीपने आकर मुझसे कहा,—"तुम्हारा मन्त्र कैसा विचित्र है! उस नवयुवककी तो एकदम कायापलट हो गई, मानो जीवनकी शिखा अकस्मात् जल

उठी। तुम्हारी यह अग्नि घर के भीतर कैसे छिपी रह सकती है? एक-एक करके सभी आयेंगे। एक-एक करके जलते-जलते एक दिन देश में दिवाली के उत्सव की धूम मचेगी।"

अपनी इस महीमा के नशे से उन्मत्त होकर मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि भक्त को वरदान दूँगी और यह भी विश्वास था कि मैं जो चाहूँगी उसमें कोई बाधा न डाल सकेगा।

उस दिन जब सन्दीप के पास से लौट कर आई तो सिरके बाल खोलकर एक नये ढङ्ग से बाँधे। सिरके ऊपर की ओर जूड़ा बाँधनेका यह ढङ्ग मैंने एक मेमसे सीखा था। मेरे स्वामी इसे बहुत पसन्द करते थे। वे कहा करते—गर्दन की सुन्दरता कहाँतक पहुँच सकती है, यह विधाता ने कालिदास के सामने प्रकाशित न करके मुझ-जैसे अकविको दिखाया—कवि तो शायद इसे पद्मकी मृणाल बताते, पर मुझे तो यह मशाल दिखाई पड़ती है, जिसके किनारे पर तुम्हारे काले जूड़े की काली शिखा जलकर ऊपर को उठ रही है।" यह कह कर वह मेरी केशरहित गर्दन को—किन्तु हाय, अब इन सब बातों से क्या लाभ है?

इसके बाद मैंने उन्हें बुला भेजा। पहले मैं झूठ-सच सैकड़ों बहाने गढ़ कर उन्हें बुला लिया करती थी—कुछ दिन से बुलाने का उपलक्ष्य बन्द हो गया, गढ़ने की शक्ति भी नहीं रही।

————

निखिलेश की आत्म-कथा

पंचू की स्त्री ज्वर में घुल-घुल कर चल बसी। पंचू को प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। बिरादरी ने हिसाब लगा रखा है कि साढ़े तेइस रुपये खर्च होंगे।

मैं रुष्ट होकर बोला,—"प्रायश्चित्त नहीं किया तो क्या। तुम्हे किसका डर है?"

वह थकी-माँदी गौके समान धीरज भरी आँखें मेरी ओर उठा कर बोला,—"लड़की का ब्याह भी तो करना है और फिर बहू की गति भी होनी चाहिये।"

मैंने कहा,—"यदि पाप ही तुम्हे लगना है तो अबतक उसका प्रायश्चित्त भी तो कुछ कम नहीं हुआ है।"

उसने उत्तर दिया,—"हजूर, कम क्या बहुत हो चुका। डाक्टर के खर्च में कुछ जमीन तो बिक गई और बाकी सब आड़ हो गई। पर बिना ब्राह्मणों को भोजन कराये और दान-दक्षिणा दिये तो उद्धार नहीं हो सकता।"

बहस करना व्यर्थ था, मैंने मन-ही-मन सोचा, जो ब्राह्मण ऐसी दान दक्षिणा स्वीकार करते हैं, उनके पाप का प्रायश्चित्त न जाने कब होगा।"

पंचू पहले ही भूखा मर रहा था, पर स्त्री की चिकित्सा और क्रिया-कर्म ने उसे कहीं का न छोड़ा। इसी समय कुछ सान्त्वना मिलने की आशा में उसने एक संन्यासी साधु के पास आना-जाना शुरू किया। इसमें यही हुआ कि उसके बाल-बच्चों के लिये जो पेट भर भोजन नहीं जुटता था, इसको मन से भुलाये रखने के

लिये वह एक प्रकार के नशे में रहने लगा। उसने मनको समझा लिया कि संसार कुछ नहीं है—जिस प्रकार सुख मिलना कठिन है, उसी प्रकार दुःख भी स्वप्नमात्र है। अन्त में वह एक दिन रात के समय चारों बच्चों को अपने फूटे घर में पड़ा छोड़, वैरागी बन कर निकल गया।

इन सब बातों की मुझे कुछ खबर नहीं थी, मेरे मन में उस समय सुरासुर समुद्र मंथन कर रहे थे। मास्टर महाशय पंचू के बच्चों को अपने घर रख कर पाल रहे हैं—यह बात भी मुझे मालूम नहीं थी। उस समय खुद उनका लड़का अपनी माँ को लेकर रंगून चला गया था, घरमें वही अकेले थे और सारे दिन उन्हें स्कूल में रहना पड़ता था।

इसी प्रकार जब एक महीना बीत गया, तो एक दिन सबेरे देखा कि पंचू सामने खड़ा है। उसका वैराग्य बहुत ठण्डा पड़ गया था। उसकी दोनों लड़की और बड़ा लड़का उसके निकट धरती पर बैठकर पूछने लगे,—"बाबा, तुम कहाँ गये थे?" छोटा लड़का उसकी गोद में जा बैठा और बड़ी लड़कीने पीठ की ओर जाकर दोनों हाथ गले में डाल दिये। उस समय बस रोना ही रोना था, किसी प्रकार भी उसके आँसू नहीं थमते थे। फिर वह कहने लगा,—"मास्टर साहब, मैं न तो इनका पेट भर सकता हूँ और न उन्हें छोड़ कर भाग सकता हूँ। मैंने क्या पाप किया है, जो ऐसा बेबस होकर दुःख भोग रहा हूँ?

पहले जिस व्यवसाय से उसका किसी न किसी प्रकार काम चल जाता था, उसका इन दिनों में सिलसिला टूट चुका था।

आते ही तो मास्टर साहब के यहाँ रहा, पर यह आश्रय उसे ऐसा सुखप्रद जान पड़ा कि फिर अपने घर जाने का नाम भी लेना नहीं चाहता था। अन्त में मास्टर साहब ने उससे कहा,—"पंचू, तुम अब अपने घर जाकर रहो, नहीं तो वह रहा-सहा नष्ट हो जायगा। मैं तुम्हें कुछ रुपये उधार दे दूँगा, तुम कपड़ा बेचना शुरू कर दो, थोड़ा-थोड़ा करके उतार देना।'

इस बात से पंचू को पहले-पहल कुछ शोक हुआ सोचने लगा, क्या दया-धर्म दुनियाँ से बिलकुल उठ गया? इसके बाद जब मास्टर साहब ने रुपये देते समय उससे रुक्का लिखाया तो उसे और भी बुरा लगा—मनमें सोचा होगा, जब कि मुझे रुपये उतारना ही है, तो इसमें उपकार क्या हुआ? बाहरी दान देकर हृदय को ऋणी बनाना मास्टर साहब को कदाचित् पसन्द नहीं था—वह कहा करते हैं, जब मन का गौरव चला गया तो मनुष्यत्व भी नहीं रहता।

रुक्के पर रुपया लेने के बाद पंचू फिर मास्टर साहब का उतना आदर करके उन्हें प्रणाम न कर सका, पाँव छूना भी बन्द हो गया। मास्टर साहब मन-ही-मन हँसा करते, वे स्वयं यही बात चाहते थे। वे कहते हैं,—मैं उसकी श्रद्धा करूँ, वह मेरी श्रद्धा करें; यही दूसरे मनुष्य के साथ मेरा उचित सम्बन्ध है, मैं अपने को भक्ति के योग्य नहीं समझता।"

पंचू, बाजार से कुछ धोती-साड़ी, कुछ जाड़े का कपड़ा लाकर गाँव के किसानों के घरों में फेरी लगा-लगाकर बेचने लगा। उसे नक़द बहुत कम मिलता था, पर धान, सन या फ़सल की और

चीजें जो कुछ इकट्ठी कर लाता, उन्हीं से अपना ऋण चुका दिया करता। दो महीने में उसने मास्टर साहब के सूद की एक किस्त उतार दी और असल में से भी कुछ दे दिया, पर मास्टर साहब के ऋण की जितनी मात्रा वसूल हुई उतनी गौरवकी घट गई। पंचूको निश्चय होने लगा था कि मैं गुरु मानकर मास्टर साहब का इतने दिन से आदर करता आया हूँ यह मेरी बड़ी भूल थी, वह तो वैसे ही लोभी हैं जैसे और लोग होते हैं।

इसी प्रकार पंचू के दिन कट रहे थे। इसी समय स्वदेशी का तूफ़ान भी बड़े जोर से उठा। यह छुट्टी का समय था। हमारे गाँव में और आसपास के गाँवमें बहुत से नवयुवक स्कूल कालेजसे अपने-अपने घर आये हुये थे। प्रायः सभी सन्दीप को दलपति बनाकर बड़े उत्साह से स्वदेशी प्रचार में लग गये। अनेक ने स्कूल-कालेज भी छोड़ दिये। इनमें से बहुत से लड़कों ने मेरे ही फ्री (निःशुल्क) स्कूल से एन्ट्रेन्स पास किया था और कई मेरी सहायता से कलकत्ते में पढ़ रहे थे। ये सब एक दिन दल बांधकर मेरे सामने आ उपस्थित हुए। कहने लगे,—"हमारा जो शुकसायर का हाट है उसमें विलायती सूत का व्यापार आपको एकदम बन्द कर देना चाहिए।"

मैंने कहा—"मैं यह नहीं कर सकता।"

वे बोले,—"क्यों, क्या आपको बहुत घाटा रहेगा।"

मैं इन व्यंगपूर्ण बातों का अर्थ समझ गया और कहने वाला था कि घाटा मेरा नहीं है बल्कि बेचारे ग़रीबों का है, पर मास्टर साहब वहाँ मौजूद थे। वह बोल उठे,—"घाटा तो

इनका ही है तुम्हारा थोड़े ही है, इसमें सन्देह क्या है ?"
वे बोले,—"पर देश के लिए..........।"

मास्टर साहब ने उनकी बात काट कर कहा,—"देश से मतलब देश की मिट्टी नहीं है बल्कि देश की जनता है। इस जनता की ओर कभी पहले तुमने दृष्टि उठाकर देखा है ? आज अकस्मात् बीच में कूद कर बताते हो वह नमक खाओ, यह नमक मत खाओ, यह सब कपड़ा मत पहनो वह कपड़ा पहनो। यह सब अत्याचार जनता क्यों सहेगी और हम क्यों सहने देंगे ?"

उन सबने उत्तर दिया,—"हम खुद भी तो देशी नमक, देशी चीनी, देशी कपड़े का प्रयोग करते हैं।"

वह बोले,—"तुम्हारे मन में क्रोध है, तुम्हें ज़िद चढ़ी है, इसी नशे में तुम जो कुछ करते हो प्रसन्न चित्त से करते हो। तुम्हारे पास धन है, तुम दो पैसे अधिक देकर देशी चीजें लेते हो। तुम्हारे इस आनन्द में वे तो बाधा नहीं डालते। पर उनसे तुम जो कुछ कराना चाहते हो वह केवल जबर्दस्ती है। उनके सामने नित्य जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित रहता है, उन्हें पेटभर भोजन प्राप्त करने में जान लड़ा देनी पड़ती है, उनके निकट दो पैसे का कितना मूल्य है इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। उनके साथ तुम्हारा क्या मुकाबला ? जीवन के महल में उनका सदा पहली मंजिल में वास रहा है और तुम्हारा दूसरी मंजिल में, आज तुम अपने दायित्व का भार उनके सिर पर डालना चाहते हो, अपने क्रोध की उत्तेजना उनके द्वारा शान्त करना चाहते हो। मैं तो इसे कायरता समझता हूँ।"

वे प्रायः सभी मास्टर महाशयके छात्र थे, स्पष्ट कोई कड़ी बात न कह सके, पर क्रोधके मारे उनका रक्त गरम हो उठा और चेहरे पर झलकने लगा। मेरी ओर देखकर बोले,—"देखिए समस्त देशने आज जो व्रत धारण किया है, उसमें केवल आप ही बाधा डाल रहे हैं।"

मैंने कहा,—"मैं देशके व्रतमें बाधा डालनेवाला कौन हूँ? बल्कि मैं तो उसका समर्थन करनेके लिए प्राण तक देनेको तैयार हूँ।"

एम० ए० क्लासका एक विद्यार्थी व्यंगसे हँसकर बोला,—"आप क्या समर्थन कर रहे हैं?"

मैंने उत्तर दिया,—"देशी मिलोंसे देशी कपड़ा और देशी सूत मँगाकर मैंने बाज़ार में रखवा दिया हैं। यही नहीं, दूसरे इलाकोंमें भी बराबर भिजवा रहा हूँ।"

वही विद्यार्थी बोला,—"पर हम तो आपके बाजारमें जाकर देख आये हैं आपका देशी सूत कोई भी नहीं लेता।"

मैंने कहा,—"यह तो न मेरा दोष है न मेरे बाज़ारका दोष है, इसका कारण एक यही है कि समस्त देशने तुम्हारा व्रत ग्रहण नहीं किया।"

मास्टर साहबने कहा,—"केवल यही नहीं है, बल्कि जिन्होंने व्रत लिया है उन्होंने केवल दूसरोंको तंग करनेका ही व्रत लिया। तुम चाहते हो जिन्होंने व्रत नहीं लिया वही इस सूतको खरीदें, वही कपड़ा बुनें और वही फिर उस कपड़ेको खरीद कर पहने। तुम्हारा उपाय क्या है? केवल ज़बर्दस्ती और ज़मींदारी

का दबाव ! अर्थात् व्रत तुम्हारा है, पर उपवास करेंगे वह लोग और उपवासका पारण तुम्हे मिलेगा ही !"

विज्ञानके एक विद्यार्थीने कहा,—"बहुत अच्छा, पर यह तो बताइये कि उपवासका आप लोगोंके भागमें कौन-सा अंश आया है ?"

मास्टर साहब बोले,—"बताऊँ ? सुनोगे ? देशी मिलोंसे जो निखिलने सूत मँगाया है, वह निखिल ही को खरीदना पड़ता है, निखिल ही वह सूत जुलाहोंको देकर कपड़ा बुनवाते हैं, उन्होंने ही कपड़ा बुननेका स्कूल खोला है, और पीछे उस सूतसे तैयार किये हुए झन्ने कपड़ेको कमख्वाबके मोलसे लेकर वही अपने बैठकके पर्दे बनवाते हैं, पर्दे भी कैसे कि जिनके होनेसे न होना अच्छा है। जब तुम्हारे व्रतका वेग धीमा पड़ेगा उस समय तुम्हीं स्वदेशी दस्तकारीके उन विचित्र नमूनों पर सबसे ज्यादा उच्च स्वरसे हँसोगे और कहीं यदि इन रंगीन अँगोछोंके लिए आर्डर (माँग) या आदर मिलेगा भी तो अंग्रेजों में।"

मैं मास्टर साहबको जानता हूँ, पर इस प्रकार उन्हें उत्तेजित होते मैंने कभी नहीं देखा। मैं असली कारण समझ गया। मेरे विषयमें उन्हें जो चिन्ता थी, उसीने धीरे-धीरे उनका स्वाभाविक धैर्य्य नष्ट कर दिया था।

मेडिकल कालेजका एक विद्यार्थी बोला,—"आप बड़े हैं, आपके साथ हम तर्क करना नहीं चाहते। इसलिए बस एक

बात बता दीजिए, अपने हाटमें आप विलायती मालका व्यापार बन्द करेंगे या नहीं ?"

मैंने कहा,—"नहीं, मैं बन्द नहीं करूँगा क्योंकि वह माल मेरा नहीं है।"

एम० ए० के विद्यार्थीने जरा हँसकर कहा,—"क्योंकि इस में आपका घाटा होगा !"

मास्टर साहबने कहा,—"हाँ इनका घाटा है इसलिए इस विषयको यही सोच सकते हैं।"

इसके बाद सब विद्यार्थी उच्च स्वरसे "वन्देमातरम्" पुकार कर बाहर चले गये।

इसके कुछ दिन पीछे मास्टर साहब पंचूको साथ लिए मेरे सामने आ उपस्थित हुए।

मैंने पूँछा,—"क्या मामला है ?" मालूम हुआ पंचूके ज़मींदार ने उसपर सौ रुपये जुरमाना कर दिया है।

"क्यों, इसने क्या किया था ?"

"पंचू विलायती कपड़ा बेचता था। ज़मीदारके पास जाकर इसने बहुतेरे हाथ-पैर जोड़े और वचन दिया कि ये जो थोड़ेसे कपड़े उधार करके लाया हूँ; ये बिक जायेंगे तो फिर कभी ऐसा काम न करूँगा। ज़मींदार ने कहा, नहीं यह नहीं हो सकता, हमारे सामने सब कपड़े जला डाल तब माफ किया जायगा। उसके मुँहसे निकल गया, मुझसे तो ऐसा नहीं हो सकता, मैं ग़रीब हूँ, आपमें शक्ति है आप दाम देकर ख़रीद लीजिये और जला डालिये। सुनते ही ज़मींदारकी आँखें लाल

हो गईं। बोला, हरामजादा, जवाब देना सीख गया है। लगाओ जूते!" इस प्रकार अपमान तो हुआ ही और फिर सौ रुपये जुरमाना भी कर दिया!"

"कपड़े कहाँ गये?"

"सब जला डाले!"

"वहाँ और कौन-कौन था?"

"खूब भीड़ हो रही थी। वे सब-के-सब चिल्लाने लगे, "वन्देमातरम्" वहाँ सन्दीप भी थे। वह एक मुट्ठी राख उठा कर कहने लगे, भाइयों, विलायती मालके अन्त्येष्टि संस्कारमें तुम्हारे गाँवमें यह पहली चिता जली है—यह राख पवित्र है—इस राखको शरीरमें मलकर मांचेस्टरका जाल तोड़ डालो और नागे संन्यासी बनकर अपनी साधना पूर्ण करनेको निकल खड़े हो!"

मैंने पंचूसे कहा,—"पंचू तुम्हे फ़ौजदारीमें मामला लड़ना पड़ेगा।"

पंचूने कहा,—"गवाही कौन देगा?"

"गवाही कौन देगा! सन्दीप! सन्दीप!!"

सन्दीपने अपने कमरेसे बाहर निकल कर पूछा—"क्या मामला है?"

इस आदमीके कपड़ोंकी गठरी इसके जमींदारने तुम्हारे सामने जलाई है, तुम गवाही नहीं दोगे?"

सन्दीपने हँसकर कहा,—"दूंगा क्यों नहीं? पर मैं तो इसके जमींदारके पक्षका गवाह हूँ।"

मैंने कहा,—"गवाही में पक्ष क्या? गवाह तो सदा सत्यके पक्षमें होता है।"

सन्दीपने कहा—"जो कुछ हमारे सामने होता है क्या वही सत्य है?"

मैंने पूछा—"और सत्य क्या है?"

सन्दीपने कहा—"जो होना चाहिये। जो सत्य हमें गढ़कर बनाना है उस सत्यके लिये बहुतसे झूठकी ज़रूरत है। प्रत्यक्ष जगत मायाके आधार पर ही खड़ा किया गया है। पृथ्वी पर जो नई सृष्टि करने आये हैं, वे सत्यको मानते नहीं, वे सत्यको बनाते हैं।"

"अतएव—"

"अतएव तुम जिसे झूठी गवाही कहते हो मैं वही झूठी गवाही दूँगा। जिन लोगोंने राज्योंकी नींव डाली है, साम्राज्य खड़े किये हैं, समाजका संगठन किया है, धर्म-सम्प्रदाय स्थापित किये हैं, वही तुम्हारे कल्पित सत्यकी अदालतमें छाती निकाले झूठी गवाही देने आते हैं। जिन्हें शासन करना है वे झूठसे नहीं डरते, जिनपर शासन किया जाता है उन्हींके लिए सत्यके लोहेकी जंजीरें गढ़ी गई हैं। तुमने क्या इतिहास नहीं पढ़ा? तुम क्या नहीं जानते कि पृथ्वीकी बड़ी-बड़ी रसोइयोंमें जहाँ राजनीतिकी खिचड़ी तैयार होती है, वहाँ मसालोंके स्थानमें मिथ्या और झूठका ही प्रयोग होता है?"

"संसारमें बहुत खिचड़ी पक चुकी अब................।"

"पर तुम लोगोंको खिचड़ी पकानेकी क्या पड़ी है, तुम्हारे मुँह में तो पकी-पकाई ठूँसी जायगी। बंग विभाग होगा और तुमसे कहा जायगा, तुम्हारे ही सुभीतेके लिए है; शिक्षाका द्वार खूब ठोंककर वन्द किया जायगा और तुमसे कहेंगे, तुम्हारे ही आदर्श अत्युच्च करनेके लिए ऐसा किया है, तुम साधु बनकर आँसू बहाओगे और हम असाधु होकर झूठका कोर्ट खड़ा करेंगे। तुम्हारे आँसू ज़रा देरमें सूख जायँगे। पर हमारा कोर्ट सदा बना रहेगा।"

मास्टर महाशयने मुझसे कहा—"यह तर्क-वितर्ककी बात नहीं है, निखिल। जो लोग अपने मनसे इस बातको नहीं मानते कि हमारे अन्दर एक विराट सत्य मौजूद है और वही सत्य सारे जगतका जड़मूल है, वे कैसे विश्वास कर लेंगे कि इसी आन्तरिक सत्यको समस्त आवरण हटाकर प्रकाशित करना ही मनुष्यका परम उद्देश्य है, बाहरी वस्तुओंको स्तूपाकार करके खड़ा करना परम उद्देश्य नहीं हैं।"

सन्दीपने हँसकर कहा—"आपने यह बात बिलकुल मास्टरों की सी कही! यह सब बातें केवल पुस्तकोंके पृष्ठोंमें देखनेमें आती हैं, संसारके पृष्ठ पर तो यही देखनेमें आया है कि बाहरी वस्तुओंको स्तूपाकार करके खड़ा करना ही मनुष्यका परम उद्देश्य है। इसी उद्देश्यको जिन्होंने पूर्ण रूपसे सिद्ध किया है, वही व्यवसायोंके विज्ञापनोंमें रोज़ नये-नये झूठ बोलते हैं, वही राष्ट्रनीतिकी बहीमें खूब मोटे क़लमसे जाली हिसाब लिखते हैं, उन्हींके समाचार-पत्र झूठकी पोटली होते हैं और जिस प्रकार

मक्खियाँ बीमारी फैलाती हैं, उसी प्रकार उनके धर्म प्रचारक झूठका प्रचार करते फिरते हैं। मैं उन्हींका शिष्य हूँ—जब मैं कांग्रेस दलमें था उस समय हवाका रुख देखते हुए आध सेर सत्यके दूधमें साढ़े पन्द्रह सेर पानी मिलानेमें मुझे कभी लज्जा नहीं हुई, आज उस दलसे अलग होकर भी मेरा यही विश्वास है कि सत्य मनुष्यका उद्देश्य नहीं है, फल-लाभ ही उद्देश्य है।"

मास्टर साहबने कहा—"सत्यफल लाभ!"

सन्दीपने कहा—"पर सत्यकी फ़सल सदा झूठकी ज़मीन पर फलती है। और जो सत्य आप-ही-आप उगता है वह झाड़-झंकारके समान है, काँटेदार वृक्ष है, केवल कीड़े-मकोड़ेका दल ही उस फलसे सन्तुष्ट हो सकता है।"

यह कहकर सन्दीप झटपट बाहर चला गया। मास्टर साहब ज़रा हँसे और मेरी ओर देखकर बोले—"जानते हो, निखिल! सन्दीप अधार्मिक नहीं है, विधार्मिक है। वह मानो अमावस्याका चाँद है; घटनाक्रमसे पूर्णिमाके बिलकुल उलटी ओर जा पड़ा है।"

मैंने कहा—"जान पड़ता है इसीलिए मतभेद रहने पर भी मेरा हृदय उसकी ओर आकर्षित होता है। उसने मुझे बहुत हानि पहुँचाई है और भी पहुँचाएगा, पर तो भी उसके प्रति मैं उपेक्षा नहीं कर सकता।"

वह बोले—"यह मैं भी समझ गया हूँ। पहले मुझे आश्चर्य था कि तुम सन्दीपकी बातें इतने दिनसे कैसे सह रहे हो? यही नहीं, कभी-कभी मैंने इस बातको तुम्हारी दुर्बलता ही समझा

है। अब समझ गया कि उसका तुम्हारा शब्दका मेल नहीं है, केवल छन्दका मेल है।"

मैंने हँसकर कहा—"मित्र-मित्रके मिलनेसे अमित्राक्षर× की रचना हुई है। जान पड़ता है हमारे भाग्य-कविने 'पैराडाइस लास्ट' के सामने एक महाकाव्य लिखनेका संकल्प किया है।"

मास्टर साहबने कहा—"अब पंचूके विषयमें क्या किया जाय?"

मैंने कहा—"मैंने सुना है पंचूका ज़मींदार उसका पैत्रिक मौरूसी स्वत्व छीननेकी चेष्टा कर रहा है—उसकी वह ज़मीन मैं खरीद लेता हूँ। पंचू वहाँ मेरी रैयत होकर रहेगा।"

"और जुरमानेके सौ रुपये?"

"जब ज़मीन मैं ले लूँगा तो जुरमाना वसूल कहाँसे करेंगे?"

"और उसके कपडों की गठरी?"

"वह मैं दूँगा। मेरी रैयत होकर वह जो मन चाहे बेचे, मैं देखूँगा उसे कौन रोकता है?"

पंचू हाथ जोड़कर बोला—"हज़ूर, राजा-राजाकी लड़ाई है बीचमें जान मेरी जायगी।"

"क्यों तेरा क्या करेंगे?'

"मेरे घरमें आग लगा देंगे बाल-बच्चा सहित जल मरूँगा।"

× अमित्राक्षर उस कविताको कहते हैं, जिसके अन्तिम शब्दोंकी तुक न मिलती हो। अंग्रेजीमें ऐसी कविताको Blank verse कहते हैं।

मास्टर साहब बोले—"अच्छा, तेरे बाल-बच्चे कुछ दिन तक मेरे घर रहेंगे। तुझे किसी बात का डर नहीं है। अपने घर बैठकर जो काम चाहे कर, तुझसे कोई कुछ हरगिज न कह सकेगा।"

उसी दिन पंचूकी ज़मीन ख़रीदकर दख़ल ले लिया। इस बातपर बड़ी गड़बड़ी मची।

पंचूकी ज़मीन उसे अपने नानासे मिली थी। सब जानते थे कि पंचूको छोड़कर उसके नानाका और कोई वारिस नहीं था। अकस्मात् कहींसे एक मामी अपना बँधना-बोरिया और एक अधेड़ अवस्थाकी भतीजीको साथ लिए पंचूके घर आ उपस्थित हुई और लगी अपना जीवन-स्वत्व प्रमाणित करने।

पंचू विस्मित् होकर बोला,—"मेरी मामी तो बहुत दिन हुए मर चुकी।"

उसने उत्तर दिया,—पहलेकी ब्याहता मर गई होगी पर दूसरी तो मैं मौजूद हूँ।

"पर मामी तो मामासे बहुत दिन पीछे मरी है; दूसरी ब्याहता कहाँसे आ गई ?"

नई मामीने उत्तर दिया,—"मेरा ब्याह उनकी मृत्युसे पीछे नहीं पहले ही हुआ था। सौतनके डरके मारे मैं बराबर अपने मैके रही। उनके मरनेके पीछे दर्शन-यात्राके लिए बृन्दावन चली गई थी; इस बातको गाँवके बहुत लोग जानते हैं और यदि जमींदार बाबू फिर भी आपत्ति करें तो मैं उन लोगोंको बुला सकती हूँ, जिन्होंने ब्याहके समय न्योता खाया था।"

उस दिन दोपहरके समय जब पंचूके मामले पर विचार करते-करते हैरान हो गया था, अन्दरसे विमलाने मुझे बुला भेजा।

मैं चौंक पड़ा, पूछने लगा—"किसने बुलाया है।"

"रानी माँ ने।"

"बड़ी रानी माँ ने?"

"नहीं छोटी रानी माँ ने।"

छोटी रानी ने? जान पड़ा लगभग सौ बरससे छोटी रानी ने मुझे नहीं बुलाया।

बैठकमें सबको बैठा छोड़ भीतर गया। कमरेमें जाकर विमलाको देखा तो और भी अचम्भा हुआ। आज कुछ विशेष बनावसिंगार हुआ था। बहुत दिन से वह कमरा भी बुरी दशा में था, सब चीजें तितर-बितर पड़ी थीं। आज उसमें भी विशेष प्रयत्नके लक्षण दिखाई पड़ रहे थे।

मैंने विमलासे कुछ न कहा और चुप खड़ा उसके मुँहकी ओर देखने लगा। विमलाका मुँह ज़रा-ज़रा लाल हो गया। वह अपने दाहिने हाथसे बाएँ हाथके कड़ेको जोरसे घूमाते-घूमाते मुझसे कहने लगी,—"देखो, देशभरमें केवल हमारी हाटमें विदेशी कपड़ा आता है, यह क्या अच्छी बात है?"

"विदेशी मालका आना बन्द कर दो।"

"मेरा माल तो नहीं है।"

"पर हाट तो तुम्हारा है।"

"हाट ! मुझसे भी अधिक उन लोगोंका है जो वहाँ सौदा खरीदने आते हैं।"

"उन्हें लेना हो तो देशी माल लें।"

"वे यदि देशी माल लें तो बड़ी अच्छी बात है, मैं भी बहुत प्रसन्न होऊँगा। पर यदि वे लेना पसन्द न करें तो ?"

"यह कैसे हो सकता है ? तुम्हारे होते उनकी ऐसी मजाल—?"

"मुझे इस समय अवकाश नहीं है, इस बातपर व्यर्थ बहस करनेसे कुछ न होगा ? मैं अत्याचार नहीं कर सकता।"

"अत्याचार तो तुम्हारे अपने लिए नहीं, देशके लिए होगा।"

"देशके लिए अत्याचार करना देशके ऊपर ही अत्याचार करना है। तुम इस बातको न समझ सकोगी।"

यह कहकर मैं बाहर चला आया। अकस्मात् मेरे दृष्टिके सामने सारा जगत् दीप्यमान हो उठा। जिस प्रकार पृथ्वी जीव पालनका सब काम करते हुए भी अद्भुत शक्तिके वेगसे दिन रात्रिको जयमालके समान फिराते-फिराते आकाशमें चक्कर लगाती है, उसी प्रकार मेरे मनमें भी कर्मभार और मुक्तिवेग दोनोंकी सीमा नहीं रही ! अब कौन सा बन्धन मुझे रोक सकता था ? अकस्मात् एक विपुल आनन्द मेरे हृदयकी गहराई से उठकर मानों समुद्रके जलस्तम्भके समान आकाशके बादलसे जा टकराया।

मेरे मनमें बार-बार यही प्रश्न उठता था, यह एकदम मुझे क्या हो गया ? पहले कुछ उत्तर न सुझा पर धीरे-धीरे स्पष्ट

समझमें आने लगा कि जिस बन्धनने इतने दिनसे मेरे मनको पीड़ित कर रक्खा था, अब वह टूटनेवाला है। मुझे बड़ा अचम्भा था कि मेरे मनका चक्कर एकदम कहाँ चला गया। फोटूकी प्लेटपर जिस प्रकार तस्वीर उतर जाती है, उसी प्रकार विमलाका सम्पूर्ण रूप, मेरी दृष्टिमें अंकित हो गया। मैंने स्पष्ट समझ लिया कि विमलाने मुझसे काम निकालनेके लिए आज विशेष बनाव सिंगार किया है। सिंगारको अलग करके नहीं देखा। आज उसका विलायती ढङ्गका जूड़ा मुझे केवल साधारण बालोंकी कुण्डली दिखाई पड़ा—केवल यही नहीं बल्कि जो जूड़ा एक दिन मेरे निकट अमूल्य था, आज वही ऐसा दिखाई पड़ा मानों सस्ते दामोंमें बिकनेके लिए तैयार रक्खा है।

जब मैं अपने शयनघरके अँधेरे गढ़े में से निकलकर हेमन्तकी दोपहरके खुले उजालेमें आया तो देखा कि बागके वृक्षोंके नीचे चिड़ियों के एक दलने उत्तेजित होकर बड़ी चीं-चीं मचा रक्खी है; दक्षिणकी ओर ईंट कुटे रास्तेमें दोनों ओर चम्पा के वृक्ष थे, उनके असंख्य गुलाबी फूलोंके भड़कीले रंगने आकाशको अभिभूत कर रक्खा है, कुछ दूरपर एक खाली बैलोंकी गाड़ी आकाशकी ओर पूँछ उठाए मुँहके बल पड़ी है। उसीके निकट एक बैल खड़ा घास खा रहा है, दूसरा धूपमें पड़ा सो रहा है; उसकी पीठपर कौवा बैठा ठोर मार-मारकर कीट निकाल रहा है—यह बैलको ऐसा अच्छा लग रहा है कि उसने आँखें मूँद ली हैं। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं इस अत्यन्त सरल

और वृहत् विश्वके धड़कते हुए हृदय के बहुत निकट आ पहुँचा हूँ, उसीकी गर्म-गर्म साँस उन चम्पा के फूलों की सुगन्ध के साथ मिलकर मेरे हृदय को स्पर्श कर रही है। मैं सोचता हूँ, हमारी आत्मा का विश्व के साथ सुर मिलने पर जो सङ्गीत उठता है, वह कैसा उदार है, कैसा गम्भीर है, कैसा अनिर्वचनीय सुन्दर है !

आखिर यह मोह कबतक ? क्या अब भी आत्मा अन्तःपुर के स्वप्न के जाल में जकड़ी पड़ी रहेगी ? हम पुरुष हैं, मुक्ति ही हमारी साधना है, आदर्श की आवाज सुनकर हम सामने की ओर झपटेंगे, दैत्यपुरी की दीवारें फाँदकर बन्दिनी लक्ष्मी का उद्धार करेंगे। जो स्त्री अपने निपुण हाथों से हमारे इस अभिमान की जयपताका तैयार कर सकेगी वही हमारी सहधर्मिणी है और जो घर के कोने में बैठकर हमारे लिए माया जाल बुनती है, उसका छद्मवेश तोड़कर मोहमुक्त सत्य का परिचय पाना हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि उसे हम अपनी कामना के रसमें रंग कर अप्सरा बनाकर मानों स्वयं अपनी ही तपस्या भंग करने को भेजते हैं। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मेरी जय होगी—मैं सरल रास्ते पर खड़ा हूँ—मैं सरल नेत्र से सब देख रहा हूँ—मुझे मुक्ति मिल गई है, मैंने मुक्ति दे भी दी है, जहाँ मेरा कर्त्तव्य है वहीं मेरा उद्धार है।

———

सन्दीप की आत्म-कथा

उस दिन आँसुओं का बाँध मानों टूट ही पड़ा था ।

विमला ने मुझे बुला भेजा पर कुछ देरतक उसके मुँह से कोई बात न निकली । उसके नेत्रों में आँसू झलक रहे थे । मैं समझ गया कि निखिल ने उसकी बात नहीं मानी । उसे अहंकार था कि जैसे भी होगा निखिल से यह काम कराके छोड़ूँगी, पर मुझे यह आशा नहीं थी । पुरुष जिस बात में दुर्बल है उसे स्त्रियाँ खूब पहचानती हैं, पर पुरुष जहाँ वास्तव में पुरुष है वहाँ के रहस्य को स्त्रियाँ नहीं पा सकतीं । असली बात यह है कि पुरुष स्त्रियों के निकट रहस्य है और स्त्रियाँ पुरुषों में निकट रहस्य हैं, यदि ऐसा न होता तो उन दोनों का जाति-भेद प्रकृति के पक्ष में एक अपव्यय दिखाई पड़ता ।

अभिमान इसी का नाम है । जो बात होनी चाहिए थी वह क्यों न हुई, इस बात का विशेष ध्यान नहीं है, रोना इस बात का है कि मुँह-मांगा वरदान क्यों नहीं मिला । स्त्रियों के इसी अहंकार में कितना रस, कितना रंग, कितनी हँसी, कितना रोना, कितना हाव-भाव भरा हैं, इसी में उनका माधुर्य है । उनमें हमारी अपेक्षा कहीं अधिक व्यक्ति विशेषता है । विधाता ने जब हमारी सृष्टि की थी तो वह मानों स्कूल मास्टर थे, उस समय उनकी झोली में पोथी और तत्व को छोड़कर और कुछ नहीं था ; पर स्त्रियों की सृष्टि के समय वह स्कूल-मास्टरी छोड़

चित्रकार बन गये थे, उस समय तूलिका और रंग के बक्स का प्रयोग हुआ था ।

इसीलिये जब विमला उस आँसू भरे अभिमान की रक्तीमा में सूर्यास्त समय के जल और आग से भरे मेघ के समान चुपचाप खड़ी थी तो मुझे बड़ी मनोहर दिखाई पड़ी । मैंने निकट जाकर उसका हाथ पकड़ लिया ; उसने हाथ छुड़ाने की चेष्टा नहीं की, पर उसका सारा शरीर थर-थर कांपने लगा । मैंने कहा,—"मक्खी हम दोनों सहयोगी हैं, हमारा एक ही लक्ष्य है । तुम जरा बैठ जाओ ।"

यह कहकर मैंने विमला को एक कुरसी पर बैठा दिया । कैसा आश्चर्य है ! मेरे हृदय का सारा वेग बस यहीं तक आकर रुक गया । वर्षा ऋतु में जो पद्मा नदी तोड़ती फोड़ती हुई चलती है मानों जो कुछ सामने आयेगा बहा ले जायगी, वही पद्मा नदी मानों अकस्मात् अपने तोड़ का सीधा मार्ग छोड़कर एकदम इधर से उधर जा पहुँची । उसकी थाह में कहाँ क्या बाधा छिपी पड़ी थी, इसका उस मकरबाहिनी को स्वयं ज्ञान नहीं था । विमला का हाथ पकड़ते ही मेरी देह-वीणा का तार बज उठा, परन्तु यह झंकार ऐसे बेमौके क्यों रुक गई, भीतर तक क्यों न पहुँच सकी ? जान पड़ता है अबतक हृदय में कुछ संकोच बाकी था । इस संकोच का कोई एक कारण नहीं था; इसके अनेक कारण थे । इसीलिए मैं इसे कभी स्पष्ट न पहचान सका, केवल इतना ही जानता था कि यह एक बाधा है । मैं वास्तव में जो कुछ हूँ यह किसी अदालत किसी दलील या प्रमाण द्वारा

साबित नहीं हो सकता। मैं स्वयं अपने ही निकट रहस्य हूँ, इसी से मेरी दृष्टिमें मेरा अपना मान है; इसी रहस्यको यदि पूर्ण रूप से समझ लेता तो सारी बाधाओं का दमन करके आज मुक्ति प्राप्त कर चुका होता।

कुरसी पर बैठे-बैठे विमला का मुख एकदम पीला पड़ गया, वह मानों सोच रही थी कि बहुत बची, बड़े घोर संकट का सामना हुआ था। धूमकेतु तो सरसराता हुआ पास से निकल गया पर उसकी आग भरी पूँछ की चोट से मानों विमला क्षणभर के लिये मूर्च्छित हो गई। मैं उसके सर से युमेर उतारने के लिए कहने लगा,—"बाधा अवश्य है पर यह खेद का समय नहीं, लड़ाई का समय है। क्या कहती हो रानी ?"

विमला ने जरा खँकार कर अपना रुद्ध कण्ठ साफ किया और बोली,—"हाँ।"

मैंने कहा,—"जिस प्रकार का काम आरम्भ करना हो उसका उपायक्रम पहले से ठीक कर लेना चाहिए।"

यह कहकर मैंने अपनी जेब से एक पेंसिल और कागज निकाल कर सामने रखा। कलकत्ते से आये हुए जितने उत्साही नवयुवक उन दिनों वहाँ उपस्थित थे, उनमें किस प्रकार काम का विभाग किया जाय इसी की आलोचना होने लगी, पर तुरन्त ही विमला बीच में बोल उठी,—"इस समय रहने दो, सन्दीप बाबू, मैं पाँच बजे फिर आऊँगी उस समय ठीक कर लेंगे।" यह कहकर वह झटपट कमरे से बाहर चली गई।

मैं समझ गया कि इतनी देर तक चेष्टा करने पर भी विमला

मेरी बातों पर ध्यान न दे सकी। इस समय उसे कुछ देर एकान्त में रहने की जरूरत है, संभव है मुँह ढककर रोने की भी जरूरत पड़े। विमला के जाने के बाद कमरे के भीतर की हवा में मानो और भी नशा भर गया। सूर्यास्त के पश्चात् जिस प्रकार आकाश में मेघ रंगीन हो उठते हैं, उसी प्रकार जब विमला चली गई तो मेरा मन भी आवेग के रंग से भर गया। सोचने लगा फिर अवसर हाथ से निकाल दिया। यह कैसी कापुरुषता है। मेरी इस अद्भुत द्विधासे उसे अवश्य ग्लानि हुई है। इसलिये वह चली गई, और ग्लानि होने की बात भी है।

इन्हीं विचारों से मन विह्वल हो रहा था कि बैरा ने आकर खबर दी, अमूल्य आपसे मिलना चाहते हैं। पहले तो मैंने सोचा इनकार कर दूं—पर निश्चय करनेसे पहले ही वह स्वयं कमरे में आ गया।

अब स्वदेशी विदेशी के युद्ध का समाचार चला। उस समय कमरे की हवा से नशा दूर हो गया था। जान पड़ा जैसे स्वप्न देखकर अभी उठा हूँ। कमर बाँधकर खड़ा हो गया। अब क्या चलो रणक्षेत्रमें वन्देमातरम्!

समाचार यह था :—कुण्डु जमींदार की सब रैयत हमारा लोहा मान गई। निखिल के सब मुनीम गुमास्तों की सहानुभूति हमारी ओर है, वे चुपके-चुपके हमें सहायता दे रहे हैं। मारवाड़ी लोग कहते है, हमसे कुछ दण्ड लेकर हमें विलायती कपड़ा बेचने दो, क्यों व्यर्थ झगड़ा मोल लेते हो? मुसलमान किसी तरह बस में नहीं आते।

एक किसान अपने बाल-बच्चों के लिये एक सस्ते दाम का जर्मन साल लिये जा रहा था। हमारे दल के एक लड़के ने उसकी वह शाल छीनकर जला डाली। इसी बात पर बड़ी गड़बड़ मची है। हम उससे कहते हैं तुझे सस्ते दामों का देशी गर्म कपड़ा ला देंगे। पर सस्ते दामों का देशी गर्म कपड़ा आये कहाँ से? रंगीन कपड़े तो बिल्कुल आते ही नहीं? फिर क्या उसे काश्मीर की शाल ले दें? अब वह निखिल के सामने आकर रोया पीटा है। उन्होंने उस लड़के पर नालिश करने की आज्ञा दी है? पर नालिश को बिगाड़ देने का भार उनके मुनीम गुमास्ता ने अपने सिर पर लिया है। मुख्तार हमारे दल में है ही।

अब यह प्रश्न है, जिन लोगों के हम कपड़े जलाते हैं, यदि उन्हें देशी कपड़ा लाकर देना पड़ेगा और फिर अदालतमें मामले भी चलेंगे तो इन सबके लिए रुपया कहाँसे आयेगा? और इस फूँका-फाँकीसे विलायती कपड़े का व्यवसाय और चमक उठेगा। सुनते हैं कोई नवाब बिल्लोरी झाड़के टूटनेका शब्द बहुत पसन्द करता था और घर-घर झाड़ तोड़ता फिरता था। उस समय झाड़ वालों के अवश्य गहरे हुए होंगे।

दूसरा प्रश्न यह है, सस्ता देशी गर्म कपड़ा बाजार में नहीं है, जाड़ा सिर पर आ गया, अब विदेशी शाल, चादर, मलीदे इत्यादि का क्या किया जाय? उनकी बिक्री होने दें या बन्द कर दें।

मैंने कहा विदेशी कपड़े के बदले देशी कपड़ा बख़शीस में

देनेसे काम नहीं चलेगा। जो लोग विदेशी माल देते हैं, दण्ड उन्हीं को मिलना चाहिये, हम क्यों दण्ड भोगें? जो अदालत में मामला करने जायें उनके खलियानों में एकदम आग लगा दो, पुचकारने चुमकारने से काम नहीं चलेगा। किसानों के खलियानों में आग लगाकर मुझे रोशनी करने का शौक नहीं है। पर यह तो युद्ध है। दुख देते हुए यदि घबड़ाते हो तो मधुर रसमें जाकर डूब मरो, और राधाके समान प्रेम में निमग्न होकर "क" सुनते ही बेसुध होकर धरती पर गिर पड़ो।

"रही विलायती गर्म कपड़े की बात, सो जिस प्रकार भी हो हम, लोगों को इसका प्रयोग न करने देंगे। हमारा देशी माल विलायती माल का मुकाबिला नहीं कर सकता, पर जब विदेशी रंगीन चादरें नहीं थीं तो किसान दुलाई लपेट कर काम चलाते थे, अब भी वही करें। इससे उनका शौक पूरा न होगा, पर यह तो शौक पूरा करने का समय भी नहीं है।"

वहाँ जिन व्यापारियों की नावें चलती थीं उनमेंसे बहुतसे हमारे दलमें आ गये थे। पर उनमें सबसे बड़ा मीरजान था और वह किसी तरह नहीं सुनता था। इस गाँवके नायब* से पूछा गया, उसकी वह नाव किसी तरह डुबवा सकते हो? वह बोला, इसमें मुश्किल क्या है, डुबवा सकता हूँ; पर अन्त में बात तो मेरे सिर नहीं पड़ेगी? मैंने कहा ऐसा करो कि किसी के सिर भी न पड़े, फिर भी यदि पड़ ही जाय तो मेरा सिर मौजूद है।

* बंगालमें जमींदारके गुमाश्तेको नायब कहते हैं।

हाट खतम होने पर मीरजानकी नाव घाट पर बँधी थी। उसपर मल्लाह भी नहीं थे। नायब ने तरकीब करके किसी स्वांग यात्राके बहाने उन्हें अलग कर लिया था। उसी रात को नाव मझधार में ले जाकर डुबा दी गई।

मीरजान सब समझ गया। सीधा रोता पीटता मेरे पास आया और हाथ जोड़कर कहने लगा—"एक बार कसूर हो गया अब कभी·······।"

मैंने कहा,—"अब यह बात कैसे एकदम तुम्हारी समझ में आ गई?"

इसका उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और कहने लगा,—"उस नाव के दाम दो हजार रुपये से कम न होंगे हूजूर! अब मेरी आँखें खुल गई, इस बार का अपराध यदि क्षमा करें·······।"

यह कहकर उसने मेरे पाँव पकड़ लिये। मैंने उससे दस दिन पीछे आने को कह दिया। इस आदमी को यदि दो हजार रुपये दे दिये जाँय तो बस मानो इसे हमने मोल ले लिया। ऐसे ही लोगोंके दलमें आने से काम चलेगा। इस समय कुछ अधिक रुपये की जरूरत है, कुछ प्रबन्ध न हुआ तो सारा काम बिगड़ जायगा।

सन्ध्या समय विमला ज्यों हीं कमरे में आकर कुर्सी पर बैठी मैंने उससे कहा,—"मक्खी रानी सब काम तैयार है, केवल रुपया चाहिये।"

विमलाने कहा,—"रुपया? कितना रुपया?"

मैंने कहा,—'इस समय केवल पचास हजार बहुत होगा।"

यह सुनते ही विमला भीतर ही भीतर चौंक पड़ी, किन्तु मन का भाव बाहर नहीं प्रकट होने दिया। इसे भी कैसे कह देती कि मेरे बस का काम नहीं है।

मैंने कहा,—रानी, तुम असम्भव को सम्भव कर सकती हो, तुम कई बार कर भी चुकी हो। तुमने जो कुछ किया यदि मैं दिखा सकता तो तुम भी देख लेती। पर अब उसका समय नहीं है, सम्भव है किसी दिन आ जाय। इस समय तो रुपया चाहिये।

विमलाने कहा,—"अच्छा दूँगी।"

मैं समझ गया विमला ने मन ही मन अपना गहना बेचने का निश्चय किया है। मैंने कहा,—"अपना गहना अभी रहने देना, न जाने किस समय क्या जरूरत आ पड़े।

विमला कुछ न बोली और मेरे मुँह की ओर देखने लगी।

मैंने कहा,—"यह रुपया तुम्हें अपने स्वामीके रुपये में से लेना होगा।"

विमला और भी स्तम्भित हो गई; कुछ देर बाद बोली,—"उनका रुपया मैं कैसे ले सकती हूँ?"

मैंने कहा,—"उनका रुपया क्या तुम्हारा रुपया नहीं है?"

उसने अभिमानके साथ उत्तर दिया,—"नहीं"

मैंने कहा,—"तो फिर वह रुपया उनका भी नहीं है। वह रुपया देशका है। जब देशको जरूरत हो तो यही समझना

चाहिये कि निखिल ने वह रुपया देशके पाससे चुराकर रख छोड़ा है।"

विमलाने कहा,—"मुझे वह रुपया मिलेगा किस तरह?"

जिस तरह भी हो। तुम सफल होगी अवश्य। जिसका रुपया है तुम्हें उसे लाकर सौंपना पड़ेगा। बन्देमातरम्! इसी बन्देमातरम् से तुम लोहेके सन्दूक खोलोगी, खजानों की दीवारें तोड़ोगी और जो धर्म का आसरा लेकर उस महाशक्तिके मानने में आपत्ति करेंगे, उनके हृदय विदीर्ण हो जायेंगे! मक्खी, बोलो—बन्देमातरम्, बन्देमातरम्!"

हम पुरुष हैं, हम राजा हैं, हम दुनियासे कर वसूल करेंगे। हमने जबसे जन्म लिया है, पृथ्वी को लूट रहे हैं। जैसे-जैसे हमारी लूट बढ़ती जाती है, वैसे ही पृथ्वी पर हमारा अधिकार भी बढ़ता जाता है। हम पुरुष लोग आदि कालसे फल तोड़ते आते हैं, हमने पेड़ उखाड़े हैं, मिट्टी खोदी हैं, पशुओं का संहार किया है, पक्षियों को मारा है, मछलियों को खाया है। समुद्र की तहमें से, धरती के नीचे से, मृत्युके मुखमें से हमने कर वसूल किया है—हम वही पुरुष जाति है। विधाताके भण्डार में हमने एक भी लोहे का सन्दूक नहीं छोड़ा—हम सदा तोड़ फोड़में लगे रहे हैं।

इस प्रकार हम पुरुषों की माँग पूरी करने ही में धरणीको आनन्द मिलता है। रात दिन हमारी आवश्यकतायें पूरी करते-करते ही पृथ्वी उर्वरा हो गई है, सुन्दर और सार्थक बन गई है, अन्यथा झाँड़-झंखारोंमें छिपी पड़ी रहती, उसे स्वयं

अपना भी ज्ञान नहीं होता, उसके हृदयके सारे द्वार बन्द पड़े रहते, उसकी खानों के हीरे खानों ही में पड़े रह जाते, उसकी सीपियोंके मोती कभी दिन का प्रकाश न देखते।

हम पुरुषोंने केवल अपने दावेके जोरसे ही स्त्रियों की प्रकृति को उद्घाटित किया है! हमारे लिये आत्म-समर्पण करते-करते ही उन्होंने अपना सारा गौरव प्राप्त किया है। उन्होंने अपने सुखके हीरे और दुःखके मोती हमारे राजकोषमें जमा कर दिये हैं, तभी उन्होंने अपना सच्चा धन पाया है। इसी कारण पुरुषों के पक्षसे स्वीकृति ही यथार्थ दान और स्त्रियोंके पक्षमें दान ही यथार्थ लाभ है।

मैंने विमलाको बड़ी कठिन समस्यामें डाल दिया है। कोई कोई जान-बूझकर ऐसी बात नहीं करता जो स्वयं आपको बुरी लगे, इसीलिये मुझे पहले जरा दुविधा हुई थी। सोचा उसे बुलाकर कह दूं, नहीं तुम इस झंझटमें मत पड़ो, मैंने व्यर्थ तुम्हें चिन्तामें डाला। क्षण भरके लिये मानों मैं भूल ही गया था कि पुरुषकी जाति सकर्मक है, हमें अकर्मकों को झंझट और अशान्तिमें डालकर उनके जीवनको सार्थक बनाना है! पुरुषों का काम मानो त्रिभुवनमें हाहाकार मचा देना है, नहीं तो उनकी भुजाएँ ऐसी सबल और उनकी मुट्ठी ऐसी कड़ी न होती!

विमला मन से चाहती है कि सन्दीप मुझसे किसी बहुत बड़े कामको कहे, मुझसे मेरे जीवन का दान माँगे और वास्तव में ऐसा न होनेसे उसे सन्तोष भी न होगा। वह कभी जी भर

कर नहीं रो सकी है, इसीलिये मानो मेरी बाट देख रही थी। उसने अभी सुख-ही-सुख देखा था, इसीलिये मुझे देखते ही उसके हृदयके दिगन्तमें दुःखकी घनघोर घटा उठने लगी। मैं यदि दया करके आँसू पोछने लगूँ तो मानो मेरा पृथ्वी पर आना ही व्यर्थ हो गया।

असलमें तो मेरे मनमें संकोच हुआ था, उसका कारण यही था कि यह रुपयेका प्रश्न है। रुपया पैसा पुरुषों का भाग है। उसे कहीं और माँगने जानेमें एक प्रकारकी भिक्षुकता दिखाई पड़ती है। इसीलिये रुपयेकी मात्राको इतना बढ़ाना पड़ा। एकआध हजार होता तो चोरी-सी दिखाई पड़ती, पर पचास हजार तो पूरी-पूरी डकैती है।

बात यह है कि मेरे पास खूब धन होना चाहिए था। इसी अभावके कारण न जाने कितनी इच्छायें पूरी न हो सकीं, यह बात और किसीके लिए कैसी ही हों, मुझे तो बिल्कुल शोभा नहीं देती। यह मेरे साथ केवल अन्याय नहीं है, इससे मेरे भाग्य देवता की मूर्खता प्रकट होती है! इसीलिए मुझे बड़ा क्रोध होता है। घर किराये पर लिया तो हर महीने सिर पकड़कर सोच रहे हैं, किराये का क्या प्रबन्ध करें। रेल पर गये तो बड़ी चिन्ता और देर तक जब जेब टटोलने के बाद इन्टरका ही टिकट लेना पड़ा—यह सब बातें मेरे समान मनुष्यके लिये दुःखकर नहीं हास्यकर है। मैं साफ देख रहा हूँ निखिल, सरीखे मनुष्योंके लिये इतनी अधिक सम्पत्ति बिल्कुल व्यर्थ है। वह गरीब होता तो कुछ भी हानि नहीं थी, वह अनायास दरिद्रता-

के छकड़े में अपने मास्टर महाशय के साथ जुट जाता।

मैं जीवन में कम-से-कम एक बार पचास हजार हाथ में लेकर अपने आराम और देश प्रयोग के निमित्त दो दिन में उड़ा देना चाहता हूँ। मैं वास्तव में धनी हूँ, जरा चाहता हूँ कि दरिद्रता के इस भेष को दो दिन के लिये उतारकर एक बार आइने के सामने खड़ा होऊँ।

पर विमला को पचास हजार मिलेंगे कहाँ से? जान पड़ता है अन्त में वही दो-चार हजार हाथ लगेंगे। वही सही। *"अर्द्धं त्यजति पंडितः" कहा है, पर जब त्याग अपनी इच्छा से न हो तो वह हतभाग्य पंडित आधा क्या रुपये में पन्द्रह आने भी त्याग देता है।

अभी यहीं तक लिखा है—ये सब बातें खास मेरे अपने विषय में है। इस सम्बन्ध में अवकाश मिलने पर फिर विस्तार के साथ विचार किया जायगा। इस समय अवकाश नहीं है। मुझे अभी नायब ने बुलाया था, तुरन्त जाना चाहिए; सुना है बड़ी गड़बड़ी मची है।

नायब ने कहा,—"जिस आदमी से नाव डुबवायी थी उस-पर पुलिस सन्देह कर रही है और वह है भी पुराना दागी, इसी से बड़ी चिन्ता हो रही है। उससे किसी बात का पता लगाना तो कठिन है, बड़ा चलता हुआ है। पर क्या कहा जा सकता है। मुश्किल यह है कि महाराज (निखिल) भी हमारे

* सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धंत्यजति पण्डितः।

विरुद्ध हैं, इसलिए मैं खुल्लमखुल्ला कुछ नहीं कर सकता ! पर देखिये यदि मुझपर कुछ बात आई तो मैं आपको भी नहीं छोड़ूँगा ।"

मैंने पूछा,—"मुझे फाँसने का क्या उपाय सोचा है ?"

नायब ने कहा,—"मेरे पास एक आपकी और तीन अमूल्य बाबू की लिखी चिट्ठियाँ मौजूद हैं ।"

मैं अब समझा जो चिट्ठी नायब ने मुझे लिखकर उत्तर माँगा था, उसका यही प्रयोजन था। ये तो नई-नई चालें देखने में आ रही हैं।

अब आवश्यकता इस बात की है कि पुलिस की कुछ पेट-पूजा की जाय और यदि मामला बढ़ गया तो जिस आदमी की नाव डुबवाई गई है, उसका घाटा भी आपस में पूरा करना पड़ेगा। यह मैं खूब जानता हूँ कि इस खिचड़ी का बड़ा-सा हिस्सा नायब के पेट में भी जायगा। पर यह बात दोनों ओर मन-ही-मन में है। मुँह से मैं भी कहता हूँ 'बन्देमातरम्' और वह भी कहता है 'बन्देमातरम्'

देश-कार्य में जिन पात्रों से हमें काम लेना पड़ता है, उनमें से अनेक की तली टूटी हुई रहती है; जितना पदार्थ उनमें टिकता है, उससे कहीं अधिक निकल पड़ता है। लोग अपनी धर्म बुद्धि को मानो एकदम ही हड़प कर जाते हैं। इसीलिए मुझे पहली बार नायब पर बड़ा क्रोध आया था, जरा-सी कसर रह गयी नहीं तो उसी वृत्तान्त के साथ-साथ देश-सेवकों के छल कपट के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख डालता। पर यदि भगवान का वास्तव में अस्तित्व

है तो मुझे इस बातमें उनका अवश्य कृतज्ञ होना पड़ेगा कि उन्होंने मुझे बड़ी साफ और तेज बुद्धि दी है। अपने विषयमें भीतर-बाहर की कोई बात ऐसी नहीं जो स्पष्ट न हो। और चाहे जिस विषयमें भूल हो जाय, पर अपने विषयमें मुझे कभी भूल नहीं होती इसीलिए मेरा क्रोध अधिक न रह सका। जो सत्य है वह न भला है न बुरा है केवल सत्य ही है—इसीका नाम विज्ञान है। मिट्टीमें जितना जल सूख जाता है, उसे छोड़कर जितना बचता है उसीका नाम जलाशय है। बन्देमातरम्‌की मिट्टीमें कुछ जल अवश्य सूखेगा, इसमेंसे कुछ मैं सोखूँगा कुछ वह नायब सोखेगा—इसके पश्चात् जो कुछ बचेगा वही बन्दे-मातरम् है। इसे कपट बताकर भला बुरा कह सकते हैं, पर है यह सत्य, इसे मानना अवश्य पड़ेगा। संसार के सब बड़े कामों की तहमें गाद जम जाती है, यह केवल कीचड़ ही होती है। समुद्रके नीचे यह कीचड़ मौजूद है।

इसीलिए किसी बड़े कामको आरम्भ करते समय इस कीचड़ का हक अलग उठा रखना चाहिए। अतएव कुछ तो नायब लेगा और कुछ मेरा प्रयोजन है; पर यह प्रयोजन एक और बड़े प्रयोजनका अंश है; क्योंकि केवल घोड़ा ही तो दाना नहीं खाता, पहियोंमें भी तो तेल देना पड़ता ही है।

जो कुछ भी हो, अब तो रुपया चाहिए। पचास हजार पर अड़नेसे काम नहीं चलेगा! इस समय जो कुछ मिल सके वही लेना पड़ेगा। मैं जानता हूँ जब इस प्रकार जरूरत आ पड़ी है, तो नफे नुकसानका ध्यान छोड़ देना पड़ता है। आज पाँच

हजार परसोंके पचास हजारको ले बैठेंगे। मैं तो यही निखिलसे कहा करता हूँ, जो त्यागके मार्गपर चलते हैं केवल उन्हींको लोभका दमन नहीं करना पड़ता, जो लोभके मार्गपर चलते हैं उन्हें भी पग-पग पर अपना लोभ छोड़ना पड़ता है। मैंने पचास हजार त्याग दिये, पर निखिलके मास्टर महाशय चन्द्रबाबूको ऐसा नहीं करना पड़ता।

षट्रिपुओंमें पहले दो और अन्तके दो, पुरुषोंके हैं और बीच के दो कापुरुषोंके। कामना करो पर लोभ और मोहका नाम मत लो, यह दोनों आये और कामना मिट्टी हुई। मोह अतीत और भविष्य को मिलाकर एक कर देता है, और इन दोनोंके बीचमें वर्त्तमानका ध्यान नहीं रहता। इस समय जो आवश्यक है उसपर जो लोग ध्यान नहीं दे सकते, जो अन्य कालकी वंशी पर कान लगाये हैं, वे विरहणी शकुन्तलाके समान हैं; निकटसे अतिथिकी आवाजको वे सुन नहीं पाते, उसीके शापसे दूरके जिस अतिथिकी मुग्ध होकर कामना करते हैं, उसे भी खो बैठे हैं। मोह उद्गार उन्हींके लिए है जो कामना तस्वीरकी हैं। "का तव कान्ता कस्ते पुत्रः*।"

उस दिन मैंने विमलाका हाथ पकड़ लिया था, इसकी गूँज उसके मनसे अबतक नहीं गई है। मेरे मनमें भी अभी तक झंकार का ताजा बना रहना उचित है। बार-बार अभ्यास करके यदि इसका सुर मोटा कर दिया तो जो अब संगीतका

* कौन तेरी स्त्री है और कौन तेरा पुत्र।

विषय है वह तर्क का विषय बन जायगा। अबतक मेरी किसी बातमें विमलाको "क्या" और "क्यों" का प्रश्न उठानेका अवसर नहीं मिला है। जिन मनुष्योंको मोहकी आवश्यकता है, उनके लिए मोहका प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए। आजकल कामका बड़ा जोर है—इस समय जो रसका प्याला सामने है, उसके झागों ही तक रहना ठीक है और बढ़नेमें गड़बड़ मचेगा। जब इसका समय आयेगा तो देखा जायगा। अरे कामी; लोभको छोड़ दे, मोहके वीणायन्त्रपर हाथ चल गया है तो क्या, अभी अनेक महीने और सूक्ष्म सुरोंके अभ्यासकी आवश्यकता है।

इधर हमारे आन्दोलनने खूब जोर पकड़ लिया है। हमारे दलबलने धीरे-धीरे चारों ओर धाक जमा ली है। पर एक बात अब अच्छी तरह समझमें आ गई, इन मुसलमानोंकी लल्लोपत्तो करके बसमें लाना असम्भव है। उनका बलपूर्वक दमन करना पड़ेगा कि जोर हमारे हाथमें है। आज वे हमारा कहना नहीं सुनते, दाँत निकालकर हमारी ओर दौड़ते हैं, एक दिन उन्हें अवश्य रीछका नाच नाचना पड़ेगा।

निखिल कहता है,—"भारतवर्ष यदि कोई वास्तविक वस्तु है, तो उसमें मुसलमान भी मौजूद हैं।"

मैं कहता हूँ,—"यह हो सकता है, पर यह मालूम होना चाहिए कि मुसलमान जहाँ हैं, बस वहीं उन्हें दबा देना चाहिए—नहीं तो वे विरोध किये बिना न रहेंगे।"

"विरोधको बढ़ाकर ही मानों तुम विरोध मिटाना चाहते हो?"

"फिर तुम्हारा क्या उपाय है ?"

"विरोध मिटानेका केवल एक ही उपाय है।"

मैंने अनेक बार देखा है कि साधुओंकी लिखी कहानियोंवे समान निखिलकी हर बातमें एक उपदेश घुसा रहता है आश्चर्य यह है कि इन कहानियों और उपदेशोंसे इतन परिचित होनेपर भी वह इनमें विश्वास रखता है। सच बात यह है कि निखिल एकदम जन्म-स्कूल-बाय (जन्मका विद्यार्थी) है। उसकी गणना गुणी मनुष्योंमें अवश्य होगी। पर चाँद सौदागर* के समान उसने अवास्तवका शिव मन्त्र सीख लिया है, वास्तवके सर्पदर्शनको वह कदापि मानना नहीं चाहता कठिनाई यह है कि यह लोग मृत्युहीको अन्तिम घटना नहीं समझते वे आँख मूँदकर समझ बैठे हैं कि इसके पीछे और भी कुछ है।

बहुत दिनसे मैंने एक उपाय सोच रक्खा है। यदि वह किसी प्रकार पूरा हो जाय तो देखते-देखते समस्त देशमें आग लग उठे जबतक देशको अपनी आँखोंसे न देखेंगे हमारे देशके लोग कभी न जागेंगे ! देशकी एक देवी प्रतिमा होनी चाहिए। मेरे और मित्रोंके मनमें भी यह बात आई थी और वे चाहते थे कि एक मूर्ति गढ़ ली जाय। पर मैंने कहा कि हमारे गढ़नेसे काम नहीं चलेगा। जो प्रतिमा परम्परासे चली आती है, उसीको स्वदेशकी प्रतिमा बनाना होगा। पूजाका पथ हमारे देशमें खूब गहरा खुद

---

* चाँद सौदागर शिवका बड़ा भक्त था पर चंडी देवीको नहीं मानता था। देवीने कुपित होकर उसके पुत्रको साँप बनकर डस लिया, किन्तु फिर भी चाँद सौदागरकी शिवपर भक्ति वैसी ही बनी रही।

हुआ है, उसी पथसे भक्तिकी धारा देशकी ओर खींचकर लानी पड़ेगी।

इसी बातपर निखिलके साथ कुछ दिन पहले मेरा खूब तर्क-वितर्क हुआ था। निखिलका कथन था,—"जिस कामको सत्य मानकर उसपर श्रद्धा करते हैं, उनके साधनके लिए मोहजालका प्रयोग करनेसे काम नहीं चलेगा।"

मैंने कहा,—"मिष्ठानमितरेजनाः, मोह न हो तो साधारण जनताका काम ही न चले; और पृथ्वीपर रुपयेमें बाहर आने लोग साधारण हैं। इस मोहको बनाये रखनेके निमित्त ही देशमें देवताओंकी सृष्टि हुई है—मनुष्य अपना स्वभाव खूब जानता है।"

निखिलने कहा,—"देवता तो मोहको नष्ट करते हैं, उसे उत्पन्न करना तो अपदेवताओंका काम है।"

मैंने कहा,—"अच्छा तो अपदेवता ही सही; उन्हींसे हमारा काम बनेगा। दुःखका विषय है कि हमारे देशमें मोह बेकार खड़ा रहता है, उसे नित्य दाना चारा दिये जाते हैं, फिर भी उससे कुछ काम नहीं लेते। देखो वे ब्राह्मणोंको भूदेव कहते हैं, उनकी चरणोंकी धूल लेते हैं, उन्हें दान-दक्षिणा भी देते हैं, पर यह सबकी सब शक्ति योंही नष्ट हो रही है, किसी काम नहीं आती। उनकी क्षमता यदि पूर्णरूपसे उनके हाथमें दी जाय तो हम अपने असाध्य कामोंका भी साधन कर सकें। संसारमें ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत है, जिन्हें नियमित चरणोंकी धूल न मिले तो उनसे कोई काम नहीं होता। ऐसे लोगोंसे काम लेनेके लिए

मोह बड़ी भारी शक्ति है। इसी शक्तिके तीरोंको हमने इतने दिन अस्त्रालयमें रखकर पैनाया है, आज उन्हें छोड़नेका समय आया तो क्या निकालकर कूड़ेपर फेंक दें?"

पर निखिलको यह सब बताना बड़ा कठिन है। वह सत्यका ऐसा भारी पक्षपात करता है मानों सत्य भी कोई एक विशेष पदार्थ है। मैं उसे बार-बार समझा चुका हूँ कि जहाँ मिथ्या सत्य माना जाता है, वहाँ मिथ्या ही सत्य है। इसी बात को समझकर हमारे पुरुषाओंने कहा है कि अज्ञानियोंके लिए मिथ्या ही सत्य होता है। यहाँ मिथ्या उनका धर्म है। यदि वे इससे हट जाँय तो मानो सत्यसे हट गये। जो लोग देशकी प्रतिमाको सत्य समझ कर पूजा करते हैं, उनके लिए वह प्रतिमा सत्यका ही काम देगी। हमारा जैसा स्वभाव और संस्कार है उससे हम साधारण देशको नहीं समझ सकते, पर देशकी अनायास पूजा कर सकते हैं। जब यह बात मान ली गई तो जो लोग देशकी सेवा करना चाहते हैं, वे इसे ध्यानमें रखकर अपना काम आरम्भ करेंगे।

निखिलने अकस्मात् उत्तेजित होकर कहा,—"तुम सत्यके साधनकी शक्ति स्वयं खो बैठे हो, इसलिए मोहजाल रचकर अपना मतलब पूरा करना चाहते हो। उपयुक्त कार्यके सरल मार्गको छोड़कर देशको देवता बनाकर वरदानके लिए हाथ फैलाये बैठे हो।"

मैंने कहा,—"असाध्यको साध्य करना चाहते हैं, इसीलिए देशको देवता बनानेकी जरूरत है।"

निखिलने कहा,—"अर्थात् साध्यके साधनमें तुम्हारा मन नहीं लगता। और सब कुछ यों ही पड़ा रहे, केवल फल जो मिले वह आश्चर्यजनक हो।"

मैंने कहा,—"निखिल, तुम जो कुछ कह रहे हो इसका नाम उपदेश है। किसी विशेष अवस्थामें इसकी जरूरत पड़ सकती है, पर मनुष्य के जब दाँत निकलते हैं, तो उससे काम नहीं चलता। मैं अपनी आँखोंसे स्पष्ट देख रहा हूँ कि जो फसल हमने कभी स्वप्नमें भी नहीं बोई, वही आज हर खेतमें लहलहा रही है—यह किसका प्रताप है? आज जिस देशको हम देवता कहते हैं, जिसे अपने मनमें प्रत्यक्ष देख रहे हैं, उसीकी मूर्तिको चिरन्तन बना देना इस समयकी प्रतिभाका काम है। प्रतिभा तर्क नहीं करती, प्रतिभा सृष्टि करती है। आज देशके मनमें जो विचार है, मैं उसीको प्रकट करूँगा, उसीका आकार गढ़ूँगा। मैं घर-घर कहता फिरूँगा देवीने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिये हैं, देवी पूजा चाहती है। मैं ब्राह्मणोंसे जाकर कहूँगा, देवीके पुजारी तुम्हीं हो—वह पूजा बन्द हो गई है, इसीलिए तुम्हारा पतन हुआ है। तुम कहोगे तू झूठ बोल रहा है! पर, नहीं यह सत्य है—मेरे मुँहसे यह बात सुननेके लिए हमारे देशके लाखों आदमी आस लगाये बैठे हैं इसी कारण मैं कहता हूँ यह बात सत्य है; यदि मैं अपनी वाणी-प्रचार कर सका तो तुम भी उसका आश्चर्यजनक फल देख लोगे।"

निखिलने कहा,—"मुझे जीना ही कितने दिन है! तुम जो फल देशके हाथमें दोगे उसका भी एक और फल है, उसका इस

समय देखना बहुत कठिन है।"

मैंने कहा,—"मुझे तो आजहीके दिनका फल चाहिए, उसी फलसे मुझे मतलब है।"

निखिलने कहा,—"मुझे कलका फल चाहिए, उस फलसे सभीको मतलब है।"

बात यह है कि भारतवासियोंका जो एक बड़ा ऐश्वर्य कल्पना-वृत्ति है, उसका एक बड़ा-सा अंश निखिलके भागमें भी आया था, पर बाहरकी ओरसे धर्मवृत्तिका इतना अधिक संचार हो गया कि वह कल्पना-वृत्ति बिलकुल दबकर रह गई। भारतवर्षमें यह जो दुर्गा जगद्धात्रीकी पूजाकी रचना बंगालियोंने की है, उससे इन्होंने अपना आश्चर्यजनक परिचय दिया है। मैं निश्चित होकर यह कह सकता हूँ कि यह देवी पोलिटिकल (राजनीतिक) देवी है। मुसलमानोंके शासन-कालमें बंगालियोंने जिन देश-शक्तिसे शत्रु जयका वरदान माँगा था, ये दोनों देवी उसीकी दो विभिन्न मूर्ति हैं। साधनाका ऐसा अद्भुत वाह्यरूप भारत-वर्षमें और किसी जातिने नहीं गढ़ा।

निखिलकी कल्पनादृष्टि बिलकुल ही अन्धी हो गई है, जभी तो वह मुझसे अनायास कहा करता है कि मुसलमानोंके शासन-कालमें मराठोंने और सिक्खोंने तो अपने हाथमें अस्त्र लेकर सफलताकी कामना की थी, पर बंगालियोंने अपनी देवीके हाथ में अस्त्र देकर मन्त्र पढ़कर वरदान माँगा, पर देश तो देवी नहीं है, इसीलिये फलके स्थानमें केवल भैंसे और बकरोंका मुण्डपात ही हुआ किया! जिस दिन कल्याणके मार्गमें हम देशका

कार्य करने लगेंगे, उसी दिन हमें अपने सत्य-देवतासे सत्य-फल मिलेगा।

मुश्किल यह है कि निखिलकी बातें कागज पर लिखी हुई अच्छी मालूम होती हैं—पर मेरी बातें कागज पर लिखनेके लिए नहीं है, लोहेके खन्तीसे देशका हृदय चीर-चीर कर लिखनेके लिए है। क़लम और रोशनाईसे पण्डित जिस प्रकार कृषितत्त्व लिखता है, उसी प्रकार नहीं बल्कि हलकी फालीसे किसान जिस प्रकार धरती की छाती चीरकर अपनी कामना अंकित करता है, उसी प्रकार।

उस दिन जब विमलासे मिला मैं कहने लगा,—"यदि मैं तुम्हें न देखता तो अपने समस्त देशको भी एक करके न देख पाता। यह बात मैंने तुमसे कई बार कही है, पर न जाने तुम इसका ठीक अर्थ समझ सकती हो या नहीं। यह बात समझना बहुत कठिन है कि देवता देवलोक में तो अदृश्य रहते हैं, पर मर्त्यलोकमें साक्षात् दर्शन देते हैं।"

विमलाने मेरी ओर दबी हुई दृष्टिसे देखकर कहा,—"तुमने जो कहा है वह मैं अच्छी तरह समझ गई हूँ।" यह पहली बार विमलाने मुझे "आप" न कहकर तुम कहा है।

मैंने कहा,—"अर्जुन जिन कृष्णको अपना साधारण सारथी समझता था, उनका एक विराटरूप भी था, वह भी एक दिन अर्जुनने देखा था—उसी समय मानो पूर्ण सत्य देख लिया था। मैंने अपने समस्त देशमें तुम्हारा वही विराट रूप देखा है। तुम्हारे गलेमें मुझे गंगा, ब्रह्मपुत्रका सतलड़ा हाड़ दिखाई पड़ता

है, तुम्हारी श्यामवर्ण आँखोंकी काजल लगी पलकें नदीके उस पारकी वनरेखामें दिखाई पड़ती है, अधपकी धानकी खेतीमें तुम्हारी धूपछाँहके रंगकी साड़ी उड़ती हुई मालूम होती हैं और तुम्हारा निष्ठुर तेज मानों जेठकी धूपसे तपता हुआ आकाश है, जो मरुभूमिके सिंहके समान जीभ निकाले हा-हा करके हाँप रहा है! देवीने जब इस प्रकार विराट रूपमें अपने भक्तको दर्शन दिया है, तभी मैं भी उसकी पूजाका सारे देशमें प्रचार करूँगा, तभी हमारे देशके लोगों को नवीन जीवन प्राप्त होगा। 'हरेक मन्दिरमें हो मूरत तुम्हारी!' पर इस बातको सब अच्छी तरह नहीं समझते, इसीलिए मेरा संकल्प है कि समस्त देशको निमन्त्रण देकर अपनी देवी की मूर्ति अपने हाथ तैयार करूँ और उसे इस प्रकार प्रतिष्ठित करूँ कि फिर लेश-मात्र भी अविश्वास बाकी न रहे। तुम मुझे यही वर दो, ऐसा ही तेज प्रदान करो!"

विमलाकी आँखें बन्द हो गई। वह जिस आसन पर बैठी थी उसीके साथ एक होकर मानो पत्थरकी मूर्तिके समान स्तब्ध होकर रह गई। मैं जरा भी और कुछ कहता तो वह बेसुध होकर गिर पड़ती। कुछ देर बाद उसने आँख मलते हुए जो कुछ बेजोड़ शब्दोंमें कहा उसका सारांश यह था,—"हे प्रलयके पथिक, तुम अपने पथ पर दृढ़तासे जा रहे हो, किसकी मजाल है कि तुम्हारे मार्गमें बाधा डाले? मैं देख रही हूँ कि तुम्हारी इच्छा का वेग आज कोई रोक न सकेगा। राजा आकर तुम्हारे चरणोंमें अपना राजदण्ड डाल देंगे, धनी आकर

तुम्हारे सामने अपना भण्डार खाली कर देंगे, और जिनके पास और कुछ नहीं है वे केवल प्राण देनेके लये तुम्हारी ओर खींचे चले आयेंगे। विधि-विधानका, अच्छे-बुरेका, सब विचार धरा रहेगा! मेरे राजा, मेरे देवता, मैं नहीं जानती कि तुमने मुझमें क्या देखा है, पर मैं अपने इस हृत्पद्मके ऊपर तुम्हारा विश्वरूप अवश्य देख रही हूँ। उसके आगे मेरी क्या बिसात है! बस अब सर्वनाश हुआ ही रक्खा है, उसकी शक्ति कैसी प्रचण्ड है! यह मेरा संहार करके रहेगी इससे बचाव नहीं, कोई बचाव नहीं, मेरी छाती फटी जाती है।

यह कहते-कहते वह कुर्सीसे धरती पर गिर पड़ी और मेरे दोनों पाँव जोरसे पकड़कर विलख विलखकर रोने लगी। सिस-कियों और आँसुओं का तार बँध गया।

यही हिप्नाटिज्म*है! यही पृथ्वीको वशीभूत करने की शक्ति है। उपाय उपकरण कुछ नहीं, जो कुछ है यही सम्मोहन है! कौन कहता है, 'सत्यमेव जयते!' जय सदा मोह की होती है। बंगाली इस बातको समझ गये थे, तभी तो बङ्गालियों ने दश भुजाकी पूजा आरम्भ की। तभी तो उन्होंने सिंह-वाहिनी की मूर्ति तैयार करली, वही लोग आज फिर मूर्ति तैयार करेंगे, और केवल सम्मोहनसे विश्वको जीतकर दिखा देंगे—बन्देमातरम्!

---

*Hypnotism उस मानसिक दशाको कहते हैं, जिसमें मनुष्य आप कुछ नहीं कर सकते और बिल्कुल दूसरे के बस हो जाता है।

धीरे-धीरे हाथके सहारेसे विमलाको उठाकर ऊपर बिठा दिया। इस उत्तेजनाका नशा उतरनेसे पहले ही मैंने कहा,—"देशमें अपनी पूजा प्रतिष्ठित करनेका भार माताने मेरे ऊपर डाला है, पर मुझसा निर्धन दरिद्र मनुष्य यह काम कैसे कर सकेगा?"

विमलाका मुँह अभीतक तमतमा रहा था, उसके नेत्र अभी तक सजल थे। अपने गद्गद् स्वरसे कहा,—तुम निर्धन कैसे हो? जिसके पास जो कुछ है वह सब तुम्हारा है। मेरा गहनेसे भरा बक्स और किसके लिये हैं? ये हीरे-मोती सब तुम्हारे चरणोंमें अर्पण है, मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

इससे पहले और एक बार विमला ने गहना देना चाहा था! मुझे किसी बातमें संकोच नहीं होता, पर इस बातमें हुआ। सोचने पर इसका कारण समझमें आ गया। सदा पुरुष ही स्त्रियोंको गहना देकर संवारते हैं, उनके हाथसे गहना लेना पौरुषके विरुद्ध जान पड़ता है।

परन्तु इस समय अपना विचार छोड़ देना चाहिये। मैं थोड़े ले रहा हूँ। यह माता की पूजा है, सब इसी पूजामें लगेगा। यह पूजा ऐसे धूम-धड़क्केसे होगी कि पहले कभी किसीने न देखी हो! यह पूजा सदाके लिए देशके इतिहासमें प्रतिष्ठित हो जायगी। इसी पूजाको मैं अपने जीवनका श्रेष्ठ दान समझकर देशको दे जाऊँगा। मूर्ख देवताकी साधना करते हैं; पर सन्दीप देवताकी सृष्टि करेगा।

ये तो रहीं बड़ी बातें, पर अब छोटी बातें भी छेड़नी

पड़ेंगी। इस समय कमसे कम तीन हजार न होनेसे तो काम ही न चलेगा, पाँच हजार हो तो जरा सुभीता रहे। पर बड़ी उत्तेजनाके मुंहमें यह रुपये-पैसेकी बात क्या शोभा देगी? पर क्या किया जाय और समय भी तो नहीं है।

यही सोचकर मैं संकोचकी छाती पर पैर रखकर खड़ा हो गया और कह उठा,—"रानी इस ओर तो भण्डार खाली होने आया, अब काम बन्द हुआ ही चाहता है।"

यह सुनते ही विमलाके मुख पर वेदनाकी झलक दिखाई पड़ी मैं समझ गया विमला सोच रही है, कि अब भी वही पचास हजारकी आवश्यकता है। इसी चिन्तासे उसकी छाती पर पत्थर-सा रक्खा है,—जान पड़ता है रात भर सोचती रही है, पर कोई उपाय नहीं सूझा। प्रेमकी पूजाका और कोई उपचार उसके हाथमें नहीं, अपने हृदयको चीर कर तो मेरे सामने रख नहीं सकती, इसलिये उसकी इच्छा है कि यह सब रुपया अपने अवरुद्ध आदर-प्रेमका प्रतिरूप बना कर मुझे अर्पण कर दे। किन्तु कोई उपाय न पाकर उसके आत्माको बड़ा दुःख हो रहा है। उसका यह कष्ट देखकर मेरे हृदय पर चोट-सी लगती है। अब वह पूर्णरूपसे मेरी है, अब उसे क्यों व्यर्थ कष्ट दिया जाय, अब तो उसके बचावका उपाय सोचना चाहिये।

मैंने कहा,—"रानी इस समय पूरे पचास हजारकी जरूरत नहीं है, मैंने हिसाब लगा कर देखा है कि पाँच हजार ही काफी होंगे। बल्कि तीन हजार भी हो, तो इस समय काम चल ही जायगा।"

विमलाका चेहरा तुरन्त खिला, उसने मानों एक संगीत—स्वरमें कहा,—"पाँच हजार मैं तुम्हें अभी लाये देती हूँ।"

राधिकाने ऐसे ही स्वरमें यह गीत गाया था—

बंधुर लागि केशे आमि परव एमन फूल,
स्वर्गे मर्त्ये टिन भुवने नाइक जाहार मूल।
बांशिर ध्वनि हाओयाय भासे
सवार काने बाजवे ना से;
देख लो चेये यमुना ऐ छापिये गेल कूल।

[प्रियतमके लिये मैं अपने बालोंमें ऐसे फूल पहनूँगी कि जिनका स्वर्ग, मर्त्य इत्यादि तीनों लोकोंमें कहीं मूल्य नहीं है। वंशीकी ध्वनि हवामें बह रही है, पर सबके कान उसे न सुन सकेंगे। वह देखो, यमुनाका जल किनारोंके बाहर उमड़ आया।]

विमलाका भी बिल्कुल यही सुर था और यही गीत और बात भी एक ही थी,—"पाँच हजार तुम्हें लाये देती हूँ।" "बंधुर लागि केशे आमि परव एमन फूल!" वंशीके भीतरका छेद बारीक होने और चारों ओरसे हवाकी रोके रहने ही से वंशीका ऐसा सुर है—अधिक लोभके दबावसे यदि वंशीको तोड़-ताड़ कर चपटा कर डालता तो आज सुनाई पड़ता,—"क्यों, इतने रुपयोंको तुम क्या करोगे? मैं स्त्री ठहरी, इतने रुपयेका प्रबन्ध करूँगी कैसे?" इत्यादि। राधिकाके गीतके साथ उसका एक अक्षर भी न मिलता। जभी तो कहता हूँ, मोहमें ही सत्य है, इसीमें वंशीका सुर है और मोहको छोड़कर जो कुछ है, वह टूटी हुई वंशीके भीतरका छेद है—निखिलने केवल इसी

छेदकी शून्यता का मजा कुछ-कुछ चखा है, जैसा कि उसके चेहरेसे ही मालूम होता है, मुझे भी दुःख अवश्य होता है, पर निखिलका गौरव इसमें है कि वह सत्य चाहता है और मेरा गौरव इसमें है कि मैं यथाशक्ति मोहको हाथसे न खसकने दूँगा।—यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी—अतएव इस बात पर दुःख करनेसे क्या होगा?

विमलाके मनको उसी ऊपरकी हवामें उड़ाये रखनेके लिए रुपयेकी बात छोड़ फिर महिषमर्दिनीकी पूजाका उपाय सोचने लगा। पूजा कब और किस प्रकार होनी चाहिए? निखिलके इलाकेमें रुईमारी गाँव है, वहाँ अगहनमें जो हुसेनग़ाज़ीका मेला होता है, उसमें हजारों, लाखों आदमी दूर-दूरसे आते हैं। यदि वहीं पूजाका प्रबन्ध हो सके, तो खूब जमाव रहेगा। विमला भी इस बातको पसन्द करके खूब उत्साहित हो उठी। उसने सोचा कि वहाँ तो न कपड़े जलेंगे, न किसीके घरमें आग दी जायगी, अतएव ऐसे अच्छे प्रस्तावमें निखिलको भी कुछ आपत्ति न होगी। मैं मन ही मन हँसा—नौ बरस दिन-रात एक साथ काटने पर भी ये दोनों एक दूसरेको बस इतना ही पहचानते हैं! जान पड़ता है घर-गृहस्थीकी बातोंसे ही वास्ता हैं, इसलिए एक बाहरी घटनाका सामना होते ही दोनोंके पाँव डगमगा गये। नौ बरससे दोनों समझते आये थे कि घर और बाहर दोनों मानों एक ही वस्तु हैं, पर अब समझमें आने लगा है कि जो चीजें इतने दिन अलग रही हैं, वे अकस्मात् कैसे एक हो सकती हैं?

जो हो जो लोग भूलमें पड़े हैं, वे धीरे-धीरे अपनी भूल पहचान लें, इस विषयमें मुझे अधिक चिन्ताकी जरूरत नहीं है। विमलाको उद्दीपनाके वेगसे बेलूनके समान अधिक समय तक उड़ाये रखना असम्भव है, अतएव जो काम करना है, शीघ्र कर लेना चाहिए। विमला कुरसीसे उठ कर द्वार तक पहुँची थी कि मैं बोल उठा—रानी, तो फिर रुपया कब............?"

विमला फिर खड़ी हो गई और बोली,—"अगले महीनेके आरम्भमें............।"

मैंने कहा,—"नहीं, देर होनेसे काम नहीं चलेगा।"

"तुम्हें कब चाहिए?"

"कल ही।"

"अच्छा कल ही दूँगी।"

निखिलेश की आत्म-कथा

—:०:—

मेरे विषयमें समाचार-पत्रोंमें लेख और पत्र निकलने लगे हैं—सुना है, अब कार्टून भी निकाले जायेंगे। रसिकताका स्रोत खुल पड़ा है, साथ-साथ मिथ्या और झूठ की धारा भी बह रही है और देश अत्यन्त पुलकित हो रहा है, जो लोग होली खेलनेमें मस्त हैं, वे जानते हैं कि गंदे जलकी पिचकारी तो हमारे हाथमें है—मैं साधारण मनुष्य रास्ते में एक ओर बच कर चल रहा हूँ,

पर मेरे सफेद कपड़ोंके बचने का अब कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता।

समाचारपत्र पढ़ने से विदित होता है कि मेरे इलाके में छोटे बड़े सब स्वदेशी के लिये उत्सुक हो रहे हैं, केवल मेरे ही डर के मारे कुछ नहीं कर सकते, दो एक साहसी व्यक्तियोंने स्वदेशी माल चलानेका प्रयत्न किया भी, पर मैंने जमींदारी वालों से उन्हें वहींका वहीं दबा दिया। पुलिससे मेरा साज-बाज है, मजिस्ट्रेट से चुपके ही चुपके पत्र संवाद जारी है और सम्पादक महाशयको विश्वस्त-सूत्रसे खबर मिली है कि पैतृक खिताबमें एक स्वोपार्जित खिताब जोड़नेका जो प्रयत्न मैंने किया है, वह व्यर्थ न जायगा। लिखा है, "स्वनामा पुरुषो धन्यः" पर हम जानते हैं कि हमारे देश के कुछ लोग विनाम पानेकी चेष्टा ही में लगे रहते हैं।" मेरा नाम खोलकर नहीं दिया पर अस्पष्टताके भीतर से वह और भी स्पष्ट होकर दिखाई पड़ रहा है।

दूसरी ओर देशभक्त हरिशकुण्डुके गुणोंका बखान हो रहा है—समाचार पत्रों में चिट्ठी निकल रही हैं। लिखा है कि माता के ऐसे सेवक यदि और दो चार होते तो अब तक मैनचेस्टरके पुतली-घर अपनी आगमें आप ही भस्म होकर रह गये होते!

हाल ही में मेरे नाम लाल रोसनाईसे लिखी हुई एक चिट्ठी आई है। उसमें बताया है कि कहाँ-कहाँ, कौन-कौन से, लिबर-पूल के उपासक ज़मीदारों की हवेलियाँ फूँक दी गई हैं। इसके अतिरिक्त लिखा है कि पावक भगवानने अब यह पावन कार्य आरम्भ कर दिया है, अब यह व्यवस्था हो रही है कि जो लोग

भाताकी सन्तान नहीं हैं, वे उसकी गोदमें लदकर उसे व्यर्थ कष्ट न दें। अन्त में एक बनावटी नाम दे दिया है।

मैं जानता हूँ यह सब यहाँके नवयुवक विद्यार्थियोंकी रचना है। मैंने उनमें से दो एकको बुलाकर यह चिट्ठी दिखाई। बी० ए० के विद्यार्थीने गम्भीर भाव से कहा,—"यह तो हमने भी सुना है कि एक दल उसी उद्देश्यसे संगठित हुआ है कि स्वदेशीके मार्गमें जितनी बाधाएँ हैं सबको हटा कर दूर कर दे, और ये लोग अपने उद्देश्य को पूरा करके रहेंगे।"

मैंने कहा,—"यदि देश का एक आदमी भी इन लोगोंकी धौंस में आ गया तो मैं यही समझूँगा कि सारे देश ने हार मान ली।"

उनमेंसे एक महाशय जो इतिहास के एम० ए० थे, बोले,—"आपका अभिप्राय मैं नहीं समझा।"

मैंने कहा,—"हमारा देश देवतासे लेकर सिपाही तकसे डरते-डरते अधमरा हो चुका है, आज तुम स्वतन्त्रता का नाम लेकर यदि फिर उसी हौवेके भयसे काम निकालना चाहो, यदि अत्याचार द्वारा देशकी जयध्वजा कापुरुषताके ऊपर लगाना चाहो, तो देशके सच्चे प्रेमी कदापि इस भय-शासनके सामने सिर नहीं नवा सकते।"

इतिहासके एम० ए० ने कहा,—"ऐसा कौनसा देश है, जहाँ राज्यशासन भयका शासन नहीं है?"

मैंने,—"इस भय-शासन की सीमा कहाँ तक है यही मालूम करके हम किसी देश की स्वाधीनता को नाप सकते हैं,

यदि भयका शासन केवल चोरी, डाकों और अन्य इसी प्रकार के अन्यायोंके प्रति काममें लाया जाता है, तो हम कह सकते हैं कि इस शासनका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक मनुष्यको अन्य मनुष्योंके अत्याचार से स्वाधीन रक्खा जाय। पर लोग क्या खाएँगे, क्या पहिनेंगे, कौनसी दूकानसे सौदा लेंगे, ये सब बातें भी यदि भयशासन द्वारा निश्चित की जायें तो मानों मनुष्यकी अपनी इच्छाको बिल्कुल जड़-मूलसे उखाड़ कर फेंक दिया। यह तो मनुष्यत्वसे वंचित रखना हुआ।"

इतिहासके एम० ए० ने कहा,—"क्या और देशोंमें ऐसी व्यवस्था नहीं है, जिससे व्यक्तिगत इच्छाका दमन होता हो ?"

मैंने कहा,—"कौन कहता है नहीं है, पर गुलामीकी प्रथा जितनी जहाँ प्रचलित रही है, उतना ही मनुष्यत्वका सत्यानाश हुआ है।"

एम० ए० ने कहा,—"यदि गुलामी हर जगह प्रचलित है तो वही मनुष्यका धर्म है, इसीमें मनुष्यत्व है।"

बी० ए० के विद्यार्थीने कहा,—"उस दिन सन्दीप बाबूने इस सम्बन्धमें जो दृष्टान्त दिया था वह बहुत ही ठीक था, यही जो आपके पड़ोसी हरिशकुण्डु जमींदार हैं, सन्दीपबाबू कहते थे, यदि उनकी सारी रियासत खकोड़ डाली जाय तो एक छटाँक भी विदेशी नमक न निकलेगा। इसका कारण क्या है ? यही कि उन्होंने अपनी धाक जमा रक्खी है;—जो स्वभावसे गुलाम हैं उनके लिये योग्य प्रभुका अभाव ही सबसे बड़ी विपत्ति है।"

इसके बाद एक लड़का जो एफ० ए० में फेल हो चुका था;

बोला,—"क्या आपने चक्रवर्ती जमींदारके एक रैयतका हाल नहीं सुना ? वह कायस्थ था और स्वदेशीके विषयमें किसी तरह अपने जमींदारका कहना नहीं मानता था। चक्रवर्ती ने मुकदमें-बाजी शुरू कर दी, अन्तमें मामला चलते-चलते उसका यह हाल हो गया कि भूखा मरने लगा। जब दो दिन तक घर में चूल्हा नहीं जला, तो अपनी स्त्रीका चाँदीका गहना बेचने निकला। यही एक उपाय बाकी था जमींदारके डरके मारे गाँवमें किसी आदमीने उसका गहना नहीं लिया। अन्त में जमींदारके नायबने कहा, मैं ले सकता हूँ, पर पाँच रुपये से अधिक न दूँगा। गहना तीस रुपये से कम का न होगा। पर उसकी तो जानकी बनी थी, जब पाँच ही रुपयेमें राज़ी हो गया तो नायबने उसके हाथसे गहने की पोटली लेकर कहा,—"अच्छा जाओ ये पाँच रुपये तुम्हारे लगानमें जमा हो जायँगे।" यह बात सुनकर हमने सन्दीप बाबूसे कहा कि चक्रवर्ती का बहिष्कार कर देना चाहिए। वह बोले,—'यदि ऐसे सजीव और सबल लोगोंको त्याग दोगे तो क्या मरघटसे मुर्दे लाकर देशका काम कराओगे ? यह लोग अपनी ज़िद्के पक्के हैं, यही प्रभुत्वके योग्य हैं। दुर्बल लोगोंको इन्हींकी इच्छाके अनुसार चलना पड़ता है। इन लोगोंकी आपके साथ तुलना करते हुए सन्दीप बाबूने कहा था;—"आज चक्रवर्तियोंके इलाकेमें एक व्यक्ति ऐसा नहीं है जो स्वदेशीके विरुद्ध चूँ भी कर सके—और दिनेश हजार बार भी चाहें तो स्वदेशी नहीं चला सकते।"

मैंने कहा,—"मैं स्वदेशीसे भी एक बड़ी वस्तु चलाना चाहता हूँ; इसी कारण मेरे लिये स्वदेशी चलाना कठिन है। मैं भी तो सूखी लकड़ी नहीं चाहता, सजीव वृक्ष चाहता हूँ, पर मेरे काम को बहुत समय चाहिये।

इतिहासके विद्यार्थीने हँसकर कहा, आपको न सूखी लकड़ी मिलेगी न सजीव वृक्ष। सन्दीप बाबू ठीक कहते हैं कि जो कुछ मिलता है सदा छीनकर लेनेसे मिलता है। यह बात ज़रा देरमें समझमें आती है, क्योंकि यह स्कूलकी शिक्षाके बिल्कुल विपरीत है। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि कुण्डु जमींदार का गुमाश्ता किस प्रकार रुपया उगाहता है। एक बार एक मुसलमान रैयतके पास देनेको कुछ नहीं था, ऐसी भी कोई चीज नहीं थी जिसे बेचकर चुका दे। केवल उसकी युवती स्त्री थी। गुमाश्ते ने कहा, तुझे अपनी बहूका किसी औरसे निकाह करके लगान देना पड़ेगा। निकाह करनेवाले बहुत मिल गये और रुपया अदा हो गया। पति के सजल नेत्र देखकर मुझे ऐसा दुःख हुआ कि रात भर नींद नहीं आई; पर कितना ही कष्ट हो जब रुपया वसूल करना ही ठहरा तो जो आदमी ऋणीकी स्त्रीको बेचकर वसूल कर सकता है, वह मेरे निकट मनुष्यत्व में मुझसे बड़ा है—हमसे यह नहीं होता, हमारी आँखोंमें आँसू भर आते हैं, इसीसे किया कराया सब मिट्टी हो जाता है। देशका कोई उद्धार कर सकता है तो ऐसे ही लोग कर सकते हैं जैसा यह गुमाश्ता है, जैसे कुण्डु और चक्रवर्ती जमींदार हैं!"

यह सुनकर मैं स्तम्भित हो गया और बोला,—"यदि ऐसा

है तो इन गुमाश्तों और कुण्डु चक्रवर्ती सरीखे जमींदारों के हाथसे देशको बचाना ही मेरा परम उद्देश्य है। गुलामी का जो ज़हर हमारी हड्डियोंमें घुसा हुआ है, वह जब फूटकर बाहर निकलेगा तो अवश्य साँघातिक क्रूरताका रूप धारण करेगा। बहू होकर जो मार खाती है वह सास होकर मारती भी बहुत है। भय शासनका मजा चखते-चखते तुम उसीको धर्म समझने लगे हो। इसीलिये दूसरों पर अत्याचार करना तुम अपना कर्त्तव्य समझ रहे हो। इसी कायरताके साथ, इसी भयानक क्रूरताके साथ मेरी लड़ाई है!"

मेरी ये बातें अत्यन्त सरल थीं—किसी सरल बुद्धिके आदमीसे कहता तो क्षण भरमें समझ लेता, पर हमारे देशके एम० ए०, बी० ए० जो अपनी ऐतिहासिक बुद्धि पर इतने इतराते हैं, सत्य को तोड़ने मरोरनेके सिवा और कुछ नहीं जानते!

इधर कुछ ही दिनसे पंचूकी जाली मामीके विषयमें भी सोचता रहता हूँ। उसके दावे को अप्रमाणित करना, कठिन है। सच्ची बात के गवाह कम होते हैं और संभव है कि एक भी न हो, पर जो बात कभी नहीं हुई उसके लिये प्रयत्न करने पर गवाहों की कमी नहीं रहती। मैंने जो पंचूका मौरूसी हक खरीद लिया है, उसको रद्द करनेके लिए यह चाल चली गई है।

और कोई उपाय न देखकर मैं सोच रहा था कि पंचूको ही अपने इलाकेमें जमीन देकर उसके घरबारका ठिकाना कर दूँ, पर मास्टर साहबने कहा कि हम अन्यायसे इस प्रकार हार न मानेंगे, मैं इसमें स्वयं कुछ प्रयत्न करूँगा।

"आप स्वयं प्रयत्न करेंगे ?"

"हाँ, मैं स्वयं करूँगा ?"

यह सब अदालतका मामला है, मास्टर साहब इसमें क्या करेंगे मेरी समझमें कुछ नहीं आया। सन्ध्या समय वह रोज मुझसे मिला करते थे, पर उस दिन सन्ध्याको नहीं मिले। खबर मँगाई तो मालूम हुआ कि वह अपना कपड़ोंका बक्स और बिस्तर लेकर कहीं बाहर गये हैं, नौकरोंसे केवल यही कह गये हैं कि दो-चार दिनमें लौटकर आयेंगे। मैंने सोचा कि वे शायद गवाह इकट्ठे करने पंचूके मामाके घर गये होंगे, पर मैंने समझ लिया कि यदि ऐसा है तो उनकी चेष्टा बिल्कुल व्यर्थ रहेगी। जगद्धात्रीकी पूजा, मोहर्रम और रविवार मिलाकर उनके स्कूलकी कई दिनकी छुट्टी थी, इसलिए उनका स्कूलमें भी कुछ पता न लगा।

हेमन्त ऋतुमें तीसरे पहर जैसे दिनका प्रकाश धीमा पड़ने लगता है, वैसे ही मनका रंग भी ढलना शुरू हो जाता है। जिस समय प्रेयसीके श्यामवर्ण नेत्रोंका स्मरण कराने वाली गोधूलि जगत्के ऊपर आकर छा जाती है, उस समय मेरा मन आप-से-आप कहने लगता है कि मनुष्यके काम-काजका आदि-अन्त नहीं है, मनुष्य निरा मजदूर नहीं है, चाहे मजदूरी सत्य और धर्मकी ही हो—वह चिन्तारहित तारोंके धीमे प्रकाश से छुट्टी पाने वाला मन, वह अन्धकारके अमृतसे डूब मरने वाला मन, अरे निखिल, क्या तू उसे सदाके लिए खोबैठा ? समस्त संसारकी असंख्यता भी मनुष्यका दिल न बहला सके,

जो यहाँ भी संगके लिये भटकता हो उसकी संगहीनता कैसी भयानक है !

उस दिन सन्ध्या समय मुझे कुछ काम नहीं था, काममें मन भी नहीं लगता था, मास्टर साहब भी नहीं थे। शून्य हृदय जब सहारे के लिये बहुत व्याकुल होने लगा तो मैं घरके अन्दर वाले बागमें चला गया। मुझे चन्द्रमल्लिकाके फूलोंका बड़ा शौक है। मैंने विभिन्न रंगोंके बहुतसे पौधे बागमें लगवाये थे, जब सब पौधों पर एक साथ फूल आते थे तो जान पड़ता था मानो हरियालीके समुद्र की लहरों पर रंग-विरंग के झाग उठे हैं। मैं बहुत दिनसे बागमें नहीं गया था, आज सोचा कि चलो चलकर अपनी बिरहनी चन्द्रमल्लिकाका जरा बिरह मिटा दूँ !

जब बागमें पहुँचा तो देखा कि पूर्णिमाका चाँद जरा-जरा बाहरके दीवारके ऊपर उठा है। दीवारके नीचे बिल्कुल अन्धेरा था, उसीके ऊपरसे चाँदकी किरण तिरछी होकर पश्चिमकी ओर पड़ रही थीं। मुझे जान पड़ा मानो चाँदने अकस्मात् पीछेसे आकर अन्धकारकी आँख बन्द कर ली है और फिर चुपके-चुपके खड़ा हँस रहा है।

जब चन्द्रमल्लिकाके कतारके पास पहुँचा तो देखा कि कोई घास पर चुपचाप लेटा हुआ है। देखते ही दिल धड़कने लगा। मेरे निकट पहुँचते ही वह भी चौंककर झटपट उठ बैठी।

अब 'क्या किया जाय ? मैंने सोचा कि यहींसे लौटकर चला जाऊँ, विमला भी यही सोच रही थी कि उठकर चली

जाऊँ या यहीं खड़ी रहूँ। पर वहाँ ठहरना जैसा मुश्किल था वैसा ही चला जाना भी था। मेरे कुछ निश्चय करनेसे पहिले ही विमला उठ खड़ी हुई और सिर पर धोती खींचकर घरकी ओर चल दी।

उसी क्षणभरमें विमलाके मनका दुख मानो मेरे सामने मूर्तिमान होकर खड़ा हो गया। उसी क्षणभरमें मेरे अपने मनका दुःख न जाने कहाँ चला गया। मैंने पुकारा,—"विमला!"

वह चौंककर खड़ी हो गई, पर अब भी उसने मेरी ओर फिर कर न देखा! मैं उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। उसके ऊपर छाया थी; मेरे मुँहके ऊपर चाँदनी पड़ रही थी। उसके हाथोंकी मुट्ठी बँधी हुई थी और आँखें नीचेकी ओर झुकी थीं। मैंने कहा,—"विमला, मैं अपने इस पिंजरेमें तुम्हें अब क्यों व्यर्थ बन्द रक्खूँ? मैं जानता हूँ तुम्हें कितना कष्ट हो रहा है?"

विमला उसी प्रकार नीचेकी ओर देखती रही और कुछ न बोली।

मैंने कहा,—"यदि मैं तुम्हें इस प्रकार ज़बरदस्ती बाँधकर रक्खूँगा तो मेरा सारा जीवन एक लोहेकी जंजीर बन जायगा। मुझे क्या इसमें कुछ सुख मिल रहा है?"

विमला फिर चुप रही।

मैंने कहा,—"मैं तुमसे सच कह रहा हूँ, मैंने तुम्हें बिल्कुल आजाद कर दिया है। मैं तुम्हारा और कुछ नहीं हो सकता तो कम-से-कम तुम्हारे हाथकी हथकड़ी नहीं बनना चाहता?"

यह कहकर मैं बाहरकी ओर चला आया। यह मेरी उदारता नहीं थी न उदासीनता ही थी। मैं जब तक मुक्ति दूँगा नहीं स्वयं भी मुक्ति नहीं पाऊँगा। जिसे गलेका हार बनाना चाहता हूँ, उसे गलेका बोझ बनाकर नहीं रख सकता। अन्तर्यामीके सामने मैं हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सुख न मिले, न सही, मुझे दुःख ही स्वीकार है पर मुझे इस प्रकार बाँधकर मत रक्खो। मिथ्याको सत्य मानकर रखना मानो अपना ही गला घोंटना है। मेरी इस आत्महत्या से रक्षा करो।

बैठकमें आकर देखा कि मास्टर साहब बैठे हैं। मैं भीतर के आवेगसे विह्वल हो रहा था। मास्टर साहबको देखकर बिना कुछ और बात पूछे मैं एकदम कह उठा,—मास्टर साहब, मनुष्य के लिये स्वतन्त्रता ही सबकुछ से बड़ी चीज है। उसके सामने और सब तुच्छ है, बिल्कुल तुच्छ है।"

मास्टर साहब मुझे इतना उत्तेजित देखकर अचम्भे में पड़ गये। वे कुछ न बोले, केवल मेरी ओर देखते रह गये।

मैंने कहा,—"पुस्तक पढ़नेसे कुछ ज्ञान नहीं होता। शास्त्रों में पढ़ा था, इच्छा ही बन्धन है, वही अपनेको भी बाँधती है और दूसरोंको भी। किन्तु निरे शब्दोंसे कुछ समझमें नहीं आता। वास्तवमें जिस समय चिड़ियोंको पिंजरेसे छोड़ देते हैं, उसी समय समझमें आता है कि चिड़िया ही ने हमें मुक्त कर दिया। मैं जब औरोंको पिंजड़ेमें बन्द करूँगा तो मेरे लिए मेरी इच्छा ही बन्धन हो जायगी और यह इच्छाका बन्धन

लोहेके जंजीरके बन्धनसे भी कड़ा है। इसी बातको संसारमें कोई नहीं समझता। सब समझते हैं कि संस्कार कहीं और करना पड़ेगा। पर सुधार और संस्कारकी आवश्यकता अपनी इच्छाको छोड़कर और कहीं नहीं है, कहीं भी नहीं है।

अकस्मात् मुझे ध्यान आया कि मास्टर साहब कई दिन बाद आये हैं और मुझे मालूम भी नहीं है कि कहाँ गये थे। मैंने लज्जित होकर उनसे पूछा,—"आप कई दिनसे थे कहाँ?"

मास्टर साहब बोले,—"पंचूके घर।"

"पंचूके घर? चार दिनसे वहीं थे।"

"हाँ मैंने सोचा था जो औरत पंचूकी मामी बनकर आई है उससे जरा बातचीत करके देखूं! मुझे देखकर पहले-पहल उसे बड़ा अचम्भा हुआ। अच्छे ऊँचे घरानेका होकर भी कोई ऐसा अद्भुत हो सकता है; यह बात उसकी किसी तरह समझमें नहीं आती थी। उसने देखा कि मैं तो रह ही पड़ा। इसके बाद उसे लज्जा होने लगी। मैंने उससे कहा,—"माँजी मुझे तुम कितना ही बुरा-भला कहो यहाँसे न जाऊँगा। और यदि मैं रहूँगा तो पंचूको भी अवश्य रक्खूंगा; उसके बेमाँके बच्चे सड़कपर मारे-मारे फिरें यह तो मैं कभी न देख सकूँगा।" दो दिन तक तो मेरी बातें चुपचाप सुनती रही, न हाँ, बोली न ना। पर आज सबेरे मैंने देखा कि अपना असबाब बाँध रही है। मुझसे बोली,—मैं बृन्दावन जाऊँगी; मुझे रास्तेका खर्च दे दो। यह तो मैं जानता हूँ कि बृन्दावन नहीं जायगी, पर कुछ रुपया उसे अवश्य देना पड़ेगा। इसी-

लिये तुम्हारे पास आया हूँ।"

"अच्छा, जितना रुपया चाहिये दे दिया जायगा।"

"बुढ़िया मनकी बुरी नहीं है। पंचू उसे पानीके बासन नहीं छूने देता, उसके भीतर आते ही हैं-हैं करके सिर हो जाता है, इसी बात पर उसके साथ रात-दिन झगड़ा रहता था। पर उसने जब देखा कि मुझे उसके हाथ का खाना खानेमें कुछ आपत्ति नहीं है तो उसने मेरी बड़ी सेवा की। बड़ी अच्छी रसोई बनाती है। मेरे लिए पंचूके मनमें जो कुछ भक्ति-श्रद्धा थी वह इस बार रही सही जाती रही। पहले वह समझता था कि मास्टर साहब कम से कम सीधे-सादे आदमी हैं, पर अब वह समझता है कि उन्होंने जो बुढ़ियाके हाथ का खाया है, यह केवल उसे बसमें करनेकी चाल है। संसारमें चाल भी चलनी पड़ती है पर इस प्रकार कोई अपना धर्म थोड़े ही खो बैठता है। जो हो, अब तो जब बुढ़िया चली जायगी तो भी मुझे कुछ दिन तक पंचूके यहाँ रहना चाहिये, नहीं तो हरिशकुण्डु अबकी कुछ और बेढब चाल चलेगा और उसने अपने यार दोस्तोंसे कहा भी है कि मैंने तो उसके लिये एक मामीका प्रबन्ध कर दिया था, वह बेटा कहींसे एक बाप भी बनाकर ले आया है, देखूँगा उसका बाप उसे कैसे बचाता है।"

मैंने कहा,—"उसे चाहे बचा सकें या नहीं, पर ये लोग जो धर्ममें, समाजमें, व्यवसायमें, हर ओर देशके लिए जाल फैला रहे हैं, इससे देशकी रक्षा करनेमें यदि हमारी हार भी हो जाय तो भी कमसे कम सुखसे तो मरेंगे।"

—❀—❀—❀—

विमला की आत्म-कथा

जो कुछ एक ही जन्ममें भोगना पड़ता है, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। मेरे तो मानों सात जन्म बीत चुके। पिछले कुछ महीने मानों हजार बरसके बराबर थे। समय ऐसी तीव्र गतिसे चल रहा था कि मानों चल ही नहीं रहा। उस दिन अकस्मात् धक्का खाया तो चौंक पड़ी।

मैं जब स्वामीसे विदेशी व्यापार बन्द करानेको कहना चाहती थी तो जानती थी कि इस बात पर कुछ तर्क-वितर्क होगा। पर मुझे पक्का विश्वास था कि तर्क के उत्तरमें तर्क करना मेरे लिए आवश्यक है। मेरे चारों ओर वायुमण्डल है उसमें मानों एक प्रकारका जादू है। सन्दीप जैसा प्रतिभाशाली मनुष्य समुद्रकी लहरके समान मेरे पैरोंके निकट आकर टूट पड़ा। मैंने तो पुकारा भी नहीं—वह तो मेरे इसी जादूकी पुकार थी। और उस दिन वह लड़का अमूल्य—कैसा सरस और कैसा सरल लड़का है—वह जब मेरे सामने आया तो प्रभातकालकी नदीके समान देखते-देखते उसके जीवनकी धारा रंगीन हो उठी। देवी अपने भक्तकी ओर देखकर किस प्रकार मुग्ध हो सकती है, इसका मैंने उस दिन अमूल्यके मुखको देखकर अनुभव कर लिया।

इसीलिये उस दिन अपने ऊपर दृढ़ विश्वास करके बज्र-बाहिनी विद्युतशिखाके समान अपने स्वामीके सामने गई थी। पर नतीजा क्या हुआ? आज नौ बरस हुए एक दिन भी उनका ऐसा उदासीन भाव मैंने नहीं देखा! उनकी दृष्टि मानों

मरुभूमिके आकाशके समान थी, न उसमें रसकी झलक होती है, न किसी चीजके ऊपर उसका आभास पड़ता है। उसीमें रङ्ग दिखलाई पड़ता है। इससे तो उन्हें गुस्सा आ जाता तो ही अच्छा था। पर उनपर तो कुछ भी असर नहीं हुआ। मैं स्वयं अपने आपको मिथ्या समझने लगी। मैं मानों स्वप्न मात्र थी, वह स्वप्न अकस्मात टूट गया, चारों ओर अँधेरा ही रह गया।

बरामदेमें खड़ी दीवानखानेकी ओर ताकते ताकते आधी रात बिता चुकी हूँ। इस लोहेके जंगलेमें से पचास हजार कैसे निकाल लूँ? मेरे मनमें लेशमात्र भी दया नहीं थी—यदि वे पहरे वाले किसी मन्त्रके असरसे वहीं-के-वहीं मर जाते, तो मैं झपट कर उस खजाने में घुस जाती। इस घरके रानीके मनमें डाकुओंका दल खाँडा हाथमें लिये नाच-नाच कर देवीसे वर माँग रहा था, पर बाहर आकाश वैसे ही निःशब्द था, थोड़ी-थोड़ी देर बाद पहरा बदला जा रहा था, घंटा हर घंटे टन-टन बज रहा था, सारा राजमहल निश्चिन्त शान्तिमें सोया पड़ा था।

फिर पीछे एक दिन मैंने अमूल्यको बुला भेजा। मैंने कहा,—"देशके लिये रुपयेकी जरूरत है। खजांञ्चीके पाससे यह रुपया निकालकर नहीं ला सकते?"

उसने गर्वके साथ कहा,—"ला क्यों नहीं सकता?"

हाय, मैंने भी सन्दीपके सामने इसी तरह कहा था, ला क्यों नहीं सकती? अमूल्यका गर्व देखकर मुझे जरा भी

सन्तोष नहीं हुआ।

मैंने कहा,—"जरा बताओ तो कैसे लाओगे?"

अमूल्यने ऐसे उटपटाँग उपाय बताने शुरू किये कि वे मान-पत्रकी छोटी-छोटी कहानियोंके सिवा और कहीं प्रकाशित करने योग्य नहीं।

मैंने कहा,—"नहीं अमूल्य, ये सब बचपनकी बातें रहने दो।"

उसने कहा,—"अच्छा कुछ दे दिलाकर पहरेवालेको बसमें कर लेंगे।"

"देनेके लिये रुपया कहाँ है?"

उसने बिना संकोच कहा,—"बाजार लूट लेंगे।"

मैंने कहा,—"इसकी जरूरत नहीं है। मेरे पास गहना है, उसीसे काम चला लेंगे।"

अमूल्यने कहा,—"पर खजाञ्चीके साथ घूससे काम नहीं चलेगा। उससे एक और सहज तरकीब है।"

"वह क्या?"

"वह आपसे कहनेकी नहीं है। पर बहुत सहज है।"

"तो भी सुनूँ तो सही।"

अमूल्यने कुर्तेकी जेबसे एक छोटी सी गीता निकालकर मेज पर रक्खी, फिर एक छोटा सा पिस्तौल निकालकर मुझे दिखाया—मुँह से कुछ नहीं बोला।

कैसे सर्वनाशका सामना है! बूढ़े खजाञ्चीकी हत्याका संकल्प करनेमें उसे क्षण भर भी नहीं लगा। उसका मुँह देख-

कर जान पड़ता है कि उससे एक कौवा भी न मरेगा, पर उस मुँहकी भाषा तो बिल्कुल ही और ढंग की है। असली बात यह है कि अमूल्य बिल्कुल नहीं समझ सकता कि इस जगत्में उस खजाञ्चीके जीवनका क्या अर्थ है—उसे केवल शून्यता दिखाई पड़ती थी। उस शून्यतामें आत्मा नहीं थी, वेदना नहीं थी, केवल एक श्लोक था—न हन्यते हन्यमाने शरीरे ❀।

मैंने कहा,—"तुम क्या कह रहे हो, अमूल्य! उस बेचारे के स्त्री है, बालबच्चे हैं—वे कहाँ............!"

"जिनके स्त्री नहीं, बाल-बच्चे नहीं, ऐसे लोग इस देशमें कहाँ मिलेंगे? देखिये, हम जिसे दया कहते हैं, वह केवल अपने ही लिये दया है—पीछे अपने दुर्बल हृदयको दुःख होगा, इसीलिए दूसरे पर आघात नहीं करते—यह निरी कायरता है!"

सन्दीपके मुँहकी भाषा इस बालकके मुँहसे सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। वह बिल्कुल बच्चा है, उसकी अवस्था अभी श्रद्धा और विश्वास करनेकी है। उसके तो ये दिन फूलने फलनेके हैं। मेरे मनमें मातृभाव प्रबल हो उठा। स्वयं मेरे लिए अच्छे बुरेका भेद मिट चुका था, मेरे सामने तो केवल मृत्यु थी, पर जब मैंने देखा कि एक अठारह बरसके बालकने बिना संकोच निश्चय कर लिया कि एक बूढ़े आदमी को बिना दोष

❀ शरीरके मारे जाने पर यह (आत्मा) कभी नहीं मारा जाता।
(गीता अध्याय २ श्लोक २०)

मार डालना ही धर्म है, तो मेरा सारा शरीर काँप उठा। जब मैंने देखा कि उसके मनमें पाप नहीं है तो उसके एक विचारका पाप मुझे और भी भयंकर रूप में दिखाई पड़ा। मानों माँ बाप का अपराध इस बालकके सिर आ पड़ा है।

विश्वास और उत्साहसे भरी उन बड़ी सरल आँखों की ओर देखकर मेरी आत्मा व्याकुल हो उठी। यह अजगर साँप के मुँहमें घुसने चला है, उसकी कौन रक्षा करेगा? मातृभूमि क्यों सत्यकी माता होकर उसे छातीसे नहीं लगा लेती? क्यों उससे नहीं कहती, हे वत्स! तू मुझे बचाकर क्या करेगा, जब मैं ही तेरी रक्षा न कर सकी?"

मैं जानती हूँ पृथ्वी पर जिस शक्तिने शैतानके साथ समझौता किया वह कहींसे कहीं पहुँच गई, पर माता जो अकेली खड़ी है, वह केवल इसी शैतानकी समृद्धि तुच्छ करनेके लिए खड़ी है। कार्य सिद्धि कैसी ही बड़ी क्यों न हो, माता कार्यसिद्धि नहीं चाहती, वह तो रक्षा करनी चाहती है। आज मेरा मन इस बालक की रक्षा करनेके लिए कैसा व्याकुल हो रहा है।

कुछ ही देर पहले उससे डाका डालनेको कह रही थी, अब उसके विपरीत कितना ही जोर देकर बात कहूँ; वह उसे स्त्रियों की दुर्बलता समझकर हँसेगा। स्त्रियोंकी दुर्बलता पुरुषोंको तभी अच्छी लगती है जब वह सारी पृथ्वीको अपने जालमें फाँसना चाहती है।

मैंने अमूल्यसे कहा,—"जाओ तुम्हें कुछ भी नहीं करना

पड़ेगा। मैं स्वयं रुपये का प्रबन्ध कर लूँगी।"

वह द्वार तक पहुँचा था कि मैंने उसे फिर बुलाया और उससे कहा,—"अमूल्य मैं तुम्हारी बहिन हूं। आज भैयादुइज नहीं है पर भैयादुइजकी वास्तविकता तिथि बरसके तीन सौ पैंसठ दिन ही रहती है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ,भगवान तुम्हारी रक्षा करें।"

अकस्मात् मेरे मुँह से यह बात सुनकर अमूल्य को अचम्भा-सा हुआ, पर तुरन्त ही उसने मेरे पाँव छूकर मुझे प्रणाम किया। वह जब उठकर खड़ा हुआ तो उसकी आँखोंमें आँसू झलक रहे थे। मैंने सोचा मैं तो मरनेको तैयार ही बैठी हूँ, किसी तरह इसके पाप भी अपने साथ ले जाती! हे ईश्वर, मेरे पापोंसे इसके निर्मल हृदयपर कोई धब्बा न पड़ जाय।

मैंने अमूल्यसे कहा,—"तुम्हें अपनी पिस्तौल मुझे उपहार देनी होगी।"

"क्या करोगी बहन?"

"हत्या का अभ्यास करूँगी।"

"इसी की तो आवश्यकता है। स्त्रियोंको भी अब मरना और मारना पड़ेगा।" यह कहकर उसने पिस्तौल मेरे हाथमें दे दी।

अमूल्यके तरुण मुखकी दीप्तिरेखाने मेरे जीवन में नवीन ऊषा की झलक पैदा कर दी। पिस्तौलको मैंने अपने कपड़ोंमें छिपाकर सोचा, यही मेरे उद्धारका शेष उपाय हैं, यही भैयाके पाससे मिला हुआ उपहार।

स्त्रीके हृदयमें जहाँ माता का आसन होता है, मेरे उसी

स्थानकी खिड़की इसबार अकस्मात् खुल गई थी। इस समय सोचती थी कि यह खिड़की अबसे बराबर खुली रहेगी। पर यह श्रेयका पथ फिर बन्द हो गया, प्रेयसी स्त्रीने आकर माता का स्थान ले लिया और उस द्वारपर ताला डाल दिया।

दूसरे दिन सन्दीपसे फिर मिलना हुआ। एक उमंग उन्माद ने फिर हृदयके ऊपर खड़े होकर नाचना शुरू कर दिया। किन्तु यह है क्या? यही क्या मेरा स्वभाव है? कदापि नहीं।

इस निर्लज्जताको, इस निदारुणताको इससे पहले तो मैंने कभी नहीं देखा! सपेरेने अकस्मात् आकर इस साँपको मेरे आँचलके भीतरसे निकालकर दिखा दिया—पर मेरे आँचलमें यह था ही नहीं, यह तो सपेरेकी चादरहीके भीतर की चीज है। कोई भूत मानों मेरे सिर आ गया है—आज मैं जो कुछ कर रही हूँ यह मेरा किया नहीं है, उसीकी लीला है।

यही भूत एक दिन रंगीन मशाल हाथमें लिए आकर मुझसे कहने लगा,—"मैं ही तुम्हारा देश हूँ, मैं ही तुम्हारा सन्दीप हूँ, मुझसे बड़ा तुम्हारे लिए और कोई नहीं है—बन्देमातरम्!"

मैं हाथ जोड़कर बोली,—"तुम्हीं मेरे धर्म हो, तुम्हीं मेरे स्वर्ग हो, मेरे पास जो कुछ है सब तुम्हारे प्रेममें लूटा दूंगी—बन्देमातरम्।"

पाँच हजार चाहिये? अच्छा पाँच हजार ही लो। कल ही चाहिये? अच्छा कल ही मिल जायगा। कलंकके दुःसाहसमें यह पाँच हजार दान शराबका झाग बन जायगा—इसके बाद फिर उन्मादका उत्सव—अचला पृथ्वी पैरोंके नीचे डगमगाने

लगेगी, आँखोंमें अग्नि भर जायगी, कानोंमें तूफानकी गरज गूँजने लगेगी, सामने क्या है और क्या नहीं, कुछ न देख सकेंगे,—इसके पश्चात् लड़खड़ाते-लड़खड़ाते न जाने कहाँ गिरेंगे—समस्त अग्नि शान्त हो जायगी, सब छाई हवामें उड़ जायगी,—और कुछ भी बाकी न बचेगा।

रुपया वहाँसे मिल सकेगा, यह बात पहले बहुत सोचने पर न सूझती थी। उस दिन तीव्र उत्तेजनाके प्रकाशमें यह रुपया आँखोंके सामने प्रत्यक्ष देख लिया।

हर बरस पूजाके समय वह अपनी बड़ी भाभी और मझली भाभीको तीन-तीन हजार प्रणामी दिया करते हैं। यह रुपया उन दोनोंके नाम बैंकमें जमा होता रहता है। अबकी बार भी नियमानुसार प्रणामी दी गई है, पर रुपया अभी बैंकमें नहीं भेजा गया। कहाँ रखा है, यह भी मैं जानती हूँ। हमारे सोनेके कमरेसे लगी हुई जो छोटी कोठरी है, उसके कोनेमें एक लोहेका सन्दूक है, उसीमें सब रुपया रखा है।

हर साल इस रुपयेको लेकर वह कलकत्तेके बैंकमें जमा करने जाते हैं, इस बार उनका अभी तक जाना नहीं हुआ। इसी कारण तो दैवको मानती हूँ। यह रुपया देशके भाग का है, इसीलिए तो अभी तक यहाँ रखा है—इस रुपयेको कौन बैंकमें ले जा सकता है? और मैं ही यह कब कर सकती हूँ कि इस रुपयेको देशके लिये न लूँ? प्रलयंकारीने खप्पर बढ़ा दिया है, मैं भूखी हूँ, मुझे दो,—मैंने पांच हजार क्या दिये अपने हृदय का रक्त दे दिया? यह रुपया जिसका गया, उसकी तो थोड़ी

ही हानि होगी, पर मैं तो कहींकी भी न रही !

इसके पहले अनेक बार मैंने बड़ी रानी और मँझली रानीको मन ही मन चोर समझा है—मेरी धारणा थी कि मेरे विश्वास परायण स्वामीको वे बहका-फुसला कर रुपया ऐंठा करती हैं। अपने स्वामियोंके मरनेके पीछे उन्होंने अनेक बहुमूल्य चीजें छिपा-छिपा कर रक्खी हैं, यह बात मैंने कई बार अपने स्वामी से कही है। वह इसका कुछ उत्तर न देकर केवल चुप हो जाते थे। उस समय मुझे बड़ा गुस्सा आता था, मैं कहती थी,—"दान करना हो, हाथसे देकर दान करो, पर चोरी क्यों करने देते हो ?" विधाता यह बात सुन कर मन ही मन मुसकुराया होगा—आज मैं अपने स्वामीके सन्दूकसे उन्हीं बड़ी रानी और मँझली रानीका रुपया चुराने चली हूँ !

रातको मेरे स्वामी उसी कमरेमें कपड़े उतारते हैं, चाभी उनकी जेब ही में पड़ी रहती है। वही चाभी निकाल कर मैंने सन्दूक खोला। खोलने में जो जरा सी आवाज हुई मुझे जान पड़ा मानों सारी पृथ्वी जाग उठी। एक दम हाथ पैर बरफके समान हो गए, और छातीमें बड़े जोरसे धड़कन होने लगी। लोहेके सन्दूकके अन्दर एक छोटासा खाना है। उसीको खोल कर देखा तो नोट नहीं कागजमें लिपटी हुई गिनी-गिनाई गिन्नियोंकी गुल्लियाँ थीं। हर गुल्ली में कितनी गिन्नियाँ हैं और मुझे कितनी चाहियें यह सब सोचनेका समय नहीं था। बीस गुल्ली थीं, वे सब की सब लेकर मैंने आँचलमें बाँध लीं।

बोझ कुछ कम नहीं था, चोरीके बोझसे मेरा मन मानों

अचेत होकर धूलमें गिर पड़ा। सम्भवतः यदि नोटोंकी गड्डी होती तो यह चोरी इतनी असह्य न होती। पर वह तो सब सोना था।

उस दिन रातको जब चोर बनकर अपने कमरेमें घुसी उसी समयसे वह कमरा मानों मेरा नहीं रहा। उस कमरे में मुझे जितना अधिकार था—चोरी करके मैंने सब खो दिया।

मैं मन ही मन जपने लगी, बन्देमातरम्, बन्देमातरम्; देश, मेरे देश, मेरे स्वर्णमय देश! सब सोना उसी देशका सोना है, वह और किसीका नहीं है।

पर रातके अँधकारमें मन और भी दुर्बल हो जाता है। वह बराबरके कमरेमें सो रहे थे, आँखें मूँदकर उनके कमरेमेंसे बाहर चली गई—अन्तःपुरकी खुली छत पर जाकर इस आँचल में बँधी चोरीको छातीसे लगाए वहीं धरतीपर पड़ी रही। गिन्नियोंकी हर एक गुल्ली मानों मेरी छाती पर आकर जोर-जोरसे लगने लगी। निस्तब्ध रात्रि मेरी ओर बराबर उँगली उठाये खड़ी रही। घरको तो मैंने देशसे कभी अलग करके नहीं देखा। आज मैंने घरको लूटा है—इसी पापके कारण मेरा देश अब भी मुझसे विमुख हो गया। मैं यदि भीख माँग कर देशकी सेवा करती और उस सेवाको अधूरा ही छोड़ कर मर जाती, तो वह असमाप्त सेवा ही पूजा मानी जाती, उसीको देवता स्वीकार कर लेते, पर चोरी तो पूजा नहीं है—यह वस्तु कैसे देशके हाथमें उठा कर रख दूँ? मैं आप तो मरनेको तैयार बैठी हूँ, पर देशको क्यों व्यर्थ अपने कलंकमें सानूँ?

इस रुपयेको फिर लोहेके सन्दूकमें रखनेका पथ बन्द है। इस रात्रिमें फिर उसी कमरेमें जाकर उसी चाभीसे उसी सन्दूक को खोलनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मैं तो उनके कमरेकी चौखट पर ही अचेत होकर गिर पड़ूँगी। इस समय आगे बढ़नेके मार्गके सिवा और कोई मार्ग नहीं है। वहाँ बैठे-बैठे उन गिन्नियों को गिननेकी सामर्थ्य भी मुझमें नहीं थी। वह जिस प्रकार बँधी हैं, उसी प्रकार बँधी रहें, चोरीका हिसाब मुझसे न होगा।

जाड़ेकी अंधेरी रातके आकाशमें एक भी बादल नहीं था, सब तारे जगमग-जगमग चमक रहे थे। मैंने छतके ऊपर लेटे लेटे सोचा—देशका नाम लेकर यदि मैं इन तारोंको—अन्धकार हृदय में संचित किये हुए इन तारोंको—एक-एक करके अशर्फियों के समान चुरा लेती तो अगले ही दिनसे रात्रि सदाके लिये विधवा हो जाती और आकाश अपनी आँखोंको रोया करता, यह चोरी समस्त जगत्के धनकी चोरी होती। आज जो मैं यह चोरी करके लाई हूँ यह भी साधारण चोरी नहीं है, यह भी आकाशके चिरस्थायी प्रकाशकी चोरीके समान है—यह चोरी समस्त जगत्के धनकी चोरी है, विश्वास और धर्मकी चोरी है।

छतके ऊपर पड़े-पड़े रात कट गई। सबेरे जब मैंने समझ लिया कि वह उठ कर चले गये हैं, तो मैं सिरसे पैर तक शाल लपेट कर कमरेकी ओर चली। मँझली रानी इस समय लोटा लिये तुलसीके पौधेमें जल दे रही थी, मुझे देखते ही बोली—"कुछ सुना तूने?"

मैं चुप खड़ी रही और मेरा दिल धड़कने लगा। मैं सोचने

लगी,—आँचलमें बँधी हुई गिन्नियाँ शालके भीतरसे ऊपरको उठी हुई दिखाई पड़ रही हैं। ऐसा मालूम होता था, साड़ी फट जायगी और सब-की-सब खनसे निकल पड़ेंगी। अपना ऐश्वर्य चुरा कर जी कंगाल हो गया, ऐसा चोर आज इस घरके सब नौकर-चाकरोंके सामने पकड़ा जायगा!

मँझली रानी बोली—"तुम्हारे डाकुओंके दलने गुमनाम चिट्ठी भेज कर निखिलको खजाना लूटनेकी धमकी दी है।"

मैं चोरके ही समान चुपचाप खड़ी रही।

"मैंने निखिलेशसे तुम्हारी शरण माँगनेको कह दिया था! हे देवी, अब प्रसन्न हो जाओ, अपना दल-बल हटा लो, मैं तुम्हारे बन्देमातरम्का प्रसाद मानती हूँ। देखते-देखते कहाँ-से कहाँ तक बात पहुँच चुकी, पर अब तुम्हारी दुहाई है, घरमें सेंध न लगवा देना!"

मैं बिना उत्तर दिये झटपट कमरेमें चली गई। ऐसी दलदल में आकर फँसी हूँ कि निकलनेका कोई उपाय नहीं, जितना हाथ-पैर मारती हूँ और नीचेको धँसती चली जाती हूँ।

यह रुपया किसी तरह अभी साड़ीसे खोल कर सन्दीपके सामने पटक दूँ तो जान-में जान आए। यह बोझ मुझसे और नहीं सहा जाता, मेरी हड्डी-पसली सब चूर-चूर हुई जाती हैं।

थोड़ी देर ही बाद मुझे खबर मिली कि सन्दीप बाबू मेरी बाट देख रहे हैं। आज मुझे बनाव-सिंगारकी कुछ सुध नहीं थी, वैसे ही साल लपेटे झटपट बाहर चली गई।

कमरेमें घुसते ही मैंने देखा कि सन्दीपके पास अमूल्य भी

बैठा है। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मान सम्भ्रम जो बाकी था, सब एकदम धूलमें मिल गया। आज अपना कलंक मुझे इस बालकके सामने उद्‌घाटित करना पड़ा! मेरी चाची की बात पर आज ये लोग अपने दलमें बैठकर आलोचना कर रहे हैं? क्या मुझे मुँह छिपानेको भी जगह न रहेगी?

हम स्त्रियाँ पुरुषोंको कभी न पहचान सकेंगी। वे जब अपने उद्देश्यके रथके लिये मार्ग तैयार करने बैठते हैं, तो उन्हें विश्वका हृदय कूट कर कंकर बनाने में जरा भी संकोच नहीं होता। वह जब अपने हाथसे सृष्टि करनेके नशेमें मस्त हो जाते हैं, तो सृष्टि-कर्त्ताकी सृष्टि नष्ट करने ही में उन्हें आनन्द मिलता है। मेरी यह मर्मान्तक लज्जा उनके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखती—आत्माका उन्हें जरा भी ख्याल नहीं है—उनकी जितनी व्यग्रता है, सब उद्देश्य की ओर है। हाय! मैं उनके निकट क्या हूँ? नदीकी बाढ़ के रास्तेमें एक छोटा-सा फूल!

किन्तु मेरा इस प्रकार सर्वनाश करके सन्दीपको क्या लाभ हुआ? यही पांच हजार रुपये? क्या मुझमें पांच हजारसे अधिक मूल्यका और कुछ नहीं था? अवश्य था, इसमें सन्देह क्या है? यह भी मुझे सन्दीपसे मालूम हुआ था और यही सुन कर तो मैं संसारको तुच्छ समझने लगी थी। मैं प्रकाश, दूंगी, मैं जीवन दूंगी, मैं शक्ति दूंगी, मैं अमृत दूंगी, इसी विश्वास में सब बन्धन तोड़ कर निकल खड़ी हुई थी। मेरे उसी आनन्द को यदि कोई पूरा कर देता तो मृत्युको जीवन समझती; सब कुछ खो बैठने पर भी मेरा कुछ नहीं जाता।

आज क्या मुझसे कहना चाहते हैं कि ये सब बातें झूठ हैं ? मेरे अन्दर जो देवी है, क्या उसमें भक्तको पराभूत करनेकी शक्ति नहीं है ? मैंने जो स्तुतिगान सुना था, जिस गानको सुन कर धूल पर उतर आई थी, वह गान क्या इस धूलको स्वर्ग करनेके निमित्त नहीं था, उसका उद्देश्य क्या स्वर्ग ही को धूलमें मिलाना था ?

सन्दीपने मेरी ओर अपनी तीव्र दृष्टि उठा कर कहा,— "रुपया चाहिये, रानी !"

अमूल्य मेरे मुँहकी ओर देखने लगा,—वही बालक अमूल्य जिसने मेरी माँ के पेट से जन्म भले ही न लिया हो, पर जो फिर भी मेरा भाई है, क्योंकि माता तो समस्त संसारमें वही एक माता है। उसने भोली-भाली स्निग्ध आँखों से मेरी ओर देखा। मैं स्त्री हूँ, उसकी माँके समान हूँ—वह मुझसे कहे कि मेरे हाथमें जहर दो, तो क्या मैं उसके हाथमें जहर दे दूंगी ?

"रुपया चाहिये रानी !" लज्जा और क्रोधके मारे जीमें आया कि वह सोनेकी पोट सन्दीपके सिरपर फेंक मारूँ। मेरी उँगली ऐसी काँप रही थीं कि मैं बड़ी मुश्किल से अपने आँचलकी गाँठ खोल सकी। इसके बाद जैसे ही मैंने वह सब-की-सब गुल्ली मेज़पर डाली, सन्दीपका मुँह एकदम काला पड़ गया। उसने अवश्य सोचा होगा कि इन गुल्लियोंमें अठन्नियाँ हैं। उसकी दृष्टिमें कैसी घृणा थी ! मेरी अक्षमतासे उसे कैसी ग्लानि हो रही थी ! जान पड़ता कि मेरे ऊपर हाथ छोड़ बैठेगा। सन्दीप ने सोचा होगा, यह मेरा सौदा करने आई है, पाँच

हजारकी जगह दो-तीन सौ देकर टालना चाहती है। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह उन गुल्लियोंको उठाकर खिड़कीके बाहर कर देना चाहता है। यह भिक्षुक थोड़े ही है, वह तो राजा है।

अमूल्यने पूछा,—"और नहीं मिला, जीजी ?"

उसके स्वरमें करुणा भरी थी। जरा-सी कसर रह गई, नहीं तो मैं बिलख-बिलखकर बच्चोंकी तरह रो पड़ती। मैंने अपना सारा जोर लगाकर अपने हृदयका वेग वहींका वहीं दबा दिया और उत्तरमें केवल गर्दन हिला दी। सन्दीप बराबर चुप रहा, उसने न गुल्लियोंको छुआ, न मुँह से कुछ कहा।

मेरा अनुमान उस बालक के हृदयपर जाकर लगा। वह एकदम बड़ी प्रसन्नता दिखाकर कहने लगा,—"यह क्या कम है! इसीमें सब हो जायगा। तुमने हमें बचा लिया जीजी।"

यह कहते ही उसने एक गुल्ली खोल डाली—अशर्फियाँ निकल कर मेजपर गिरीं।

उसी क्षण सन्दीपका चेहरा खिला। मनके भीतरकी हवाका यह उलटा झोका उससे न सहा गया और वह कुरसीसे उठकर वेगसे मेरी ओर झपटा। उसका क्या मतलब था यह मैं नहीं जानती। मैंने बिजलीके समान तीव्र दृष्टिसे अमूल्यकी ओर देखा—उसका चेहरा बिल्कुल फीका पड़ गया था। मैंने अपनी सारी शक्ति लगाकर सन्दीपको जोरसे धक्का दिया। उसका सिर पत्थरकी मेज़पर जाकर लगा और वह धरती पर गिर पड़ा—क्षणभरके लिए उसे बिल्कुल होश नहीं रहा! इतनी प्रबल चेष्टाके

बाद मुझे भी चक्कर आ गया और मैं वहीं कुरसी पर बैठ गइ। अमूल्यके मुँहपर आनन्दकी झलक दिखाई पड़ने लगी—उसने सन्दीपकी ओर देखा तक नहीं और मेरे पैरोंकी धूल लेकर वही मेरे पास जमीन पर बैठ गया। मेरे प्यारे भाई! तेरी यही श्रद्धा मेरे शून्य विश्वपात्रकी शेष सुधाबिन्दु है! मैं और न रह सकी, मेरे आँसू निकल पड़े। दोनों हाथोंमें आँचल लेकर मैंने अपना मुँह छिपा लिया और सिसक-सिसक कर रोने लगी। बीच-बीचमें ज्यों-ज्यों मुझे अपने पैरोंपर अमूल्यके करुण हाथोंका स्पर्श मालूम होता था, त्यों-त्यों मेरे आँसू और उबल पड़ते थे।

थोड़ी देर बाद जब मैंने अपनेको सँभाला और आँख खोलकर देखा तो सन्दीप ऐसे निश्चित भावसे मेज़के पास बैठा गिन्नियाँ रूमालमें बाँध रहा था कि मानों बिल्कुल कुछ हुआ ही नहीं है। अमूल्य भी उठकर खड़ा हो गया उसकी आँखें सजल हो रही थीं।

सन्दीपने बिना संकोच मेरी ओर देखकर कहा,—"यह सब छः हजार हैं।"

अमूल्य ने कहा,—"इतने रुपयेकी तो हमें जरूरत भी नहीं है, सन्दीप बाबू। हमने जो हिसाब लगाया था उसके अनुसार तो साढ़े तीन हजार ही में हमारा काम अच्छी तरह चल जायगा।"

सन्दीपने कहा,—"हमारा काम केवल इसी स्थानमें तो नहीं है। हमारे लिए जितना हो उतना ही कम है।"

अमूल्यने कहा,—"यह ठीक है, पर भविष्यमें जितनी जरू-

रत होगी वह सब मेरे जिम्मे रही, आप यह ढाई हजार जीजी-रानीको लौटा दीजिए।"

सन्दीपने मेरी ओर देखा। मैं तुरन्त बोल उठी,—"नहीं, नहीं, उस रुपयेको मैं हाथ न लगाऊँगी, उसे लेकर तुम्हारा जो जी चाहे करो।"

सन्दीपने अमूल्यकी ओर देखकर कहा,—"स्त्रियाँ जिस प्रकार दे सकती हैं पुरुष क्या खाकर देगा?"

अमूल्यने उत्साहित होकर कहा,—"स्त्रियाँ ही तो देवी हैं।"

सन्दीपने कहा,—"हम पुरुष बहुत-से-बहुत अपनी शक्ति दे सकते हैं, पर स्त्रियाँ तो स्वयं अपनेको दे देती हैं। वे अपने प्राणों के भीतरसे सन्तानको जन्म देती हैं और उसका पालन करती हैं। यही दान तो सत्य दान है।"

यह कहकर सन्दीपने मेरी ओर देखकर कहा,—"रानी, आज तुमने जो कुछ किया, वह यदि केवल रुपया होता तो मैं उसे छूता भी नहीं,—तुमने अपने प्राणोंसे भी बड़ी चीज़ दी है।"

जान पड़ता है मनुष्यकी दो बुद्धि होती हैं। मेरी एक बुद्धि समझती है कि सन्दीप मुझे धोखा देता है, पर मेरी दूसरी बुद्धि धोखा खाती है। सन्दीपका चरित्र तुच्छ है, पर शक्ति असीम है। इसी कारण वह जिस समय आत्माको जगा देता है, उसी समय मृत्युबाण भी मारता है। उसके पास देवताओंका अक्षय तूण है, पर उसमें अस्त्र सब दानवोंके भरे हैं।

सन्दीपके रूमालमें सब गिन्नियाँ नहीं आईं, उसने मुझसे कहा,—"रानी, मुझे अपना एक रूमाल दे सकती हो?"

मैंने जैसे ही रूमाल निकालकर दिया सन्दीपने उसे अपने माथेसे लगाया और फिर अकस्मात् मेरे चरणोंके निकट झुककर मुझे प्रणाम किया और कहा,—"देवी, तुम्हें प्रणाम करने मैं तुम्हारी ओर झपटा था, तुमने मुझे धक्का देकर गिरा दिया। तुम्हारा वही धक्का मेरे लिए वरदान है। वह धक्का मैंने अपने माथेपर लिया है।" यह कहकर जहाँ चोट लगी थी वह जगह मुझे दिखा दी।

मैं क्या वास्तवमें कुछ-का-कुछ समझ बैठी थी? क्या सन्दीप प्रणाम ही करनेको मेरी ओर बढ़ा था? उसके मुख और नेत्रोंसे जो उन्मत्तता झलक रही थी, उससे तो जान पड़ता है अमूल्यने भी देखा था, पर स्तुतिगानका सन्दीपको ऐसा मनोहर सुर याद है कि उसके आगे सारा तर्क धरा रहता है, किसी अफीमके नशेमें आँखें ऐसी मुँद जाती हैं कि फिर सत्यको देख ही नहीं सकतीं। सन्दीप पर जो आघात मैंने किया था, उसका अच्छी तरह उसने बदला ले लिया—उसके माथेकी चोट देखकर मेरे हृदयमें असह्य पीड़ा होने लगी। सन्दीपने मुझे प्रणाम क्या किया मानों मेरी चोरीको पवित्र बना दिया। मेज़ पर पड़ी हुई गिन्नियाँ लोक-निन्दा और मिथ्या संकोचकी उपेक्षा कर खिलखिला कर हँसने लगीं।

अमूल्यके मनने इसी तरह पलटा खाया। उसकी श्रद्धा जो थोड़ी देरके लिए धीमी पड़ गई थी फिर भड़क उठी, उसके हृदयका पुष्पपात्र भी भर गया; सरल विश्वासका स्निग्ध सुख उसके नेत्रोंसे प्रभात समयके तारेके प्रकाशके समान विकीर्ण

होने लगा। मैंने पूजा की और पूजा पाई भी, उसीसे मेरा पाप ज्योतिर्मय हो उठा। अमूल्यने मेरी ओर देखा और हाथ जोड़-कर पुकार उठा,—"बन्देमातरम् !"

पर स्तुति तो हर समय न सुन सकूँगी, तो भी आत्म-गौरव और आत्म-सम्मान बनाये रखनेका और कोई उपाय नहीं है। मैं अपने शयनघरमें घुस ही नहीं सकती। वह लोहेका सन्दूक, मानों मेरी ओर तिरछी नज़र करके देखता है, मेरा पलङ्ग मेरी ओर निषेधका हाथ बढ़ाने लगता है। अपने हाथों अपना ही अपमान होता देख दूर भागनेकी इच्छा होती है, केवल यही जीमें आता है कि सन्दीपके पास जाकर अपनी स्तुति सुनूँ। ग्लानिकी अथाह गहराईमें केवल वही पूजाकी देवी जागृत दिखाई पड़ती है, वहाँसे जिधर भी पाँव उठाती हूँ, शून्यका अनुभव होता है। इसी कारण इस देवीको छोड़ना नहीं चाहती। स्तुति सुननेकी धुन है, रात-दिन स्तुति चाहिए, उस शराबका प्याला जरा भी खाली हो जाता है तो मुझसे नहीं रहा जाता। इसीलिए सारे दिन सन्दीपके पास बैठकर उसकी बातें सुननेको मेरी आत्मा व्याकुल रहती है, उससे दूर रहकर मेरा जीवन मानों एक सस्ती और व्यर्थ चीज़ बन जाता है।

मेरे स्वामी जब दोपहरको भोजन करने आते हैं तो मुझसे उनके सामने नहीं बैठा जाता—और न बैठनेमें भी इतनी लज्जा मालूम होती है कि यह भी नहीं होता, इसलिए मैं उनके पीछेकी ओर इस प्रकार बैठती हूँ कि उनसे नजर न मिले। उस दिन मैं इसी प्रकार बैठी थी और वह भोजन कर रहे थे, उसी समय

मँझली रानी आकर बैठीं और कहने लगीं—"भैया निखिलेश, तुम तो इन डाकुओंकी चिट्ठियोंको यों ही हँसीमें उड़ा देते हो, पर मुझे तो डर लगता है। इस बार प्रणामीका रुपया भी तुमने अभी बैंकमें नहीं भेजा।"

मेरे स्वामीने कहा,—"समय ही नहीं मिला।"

मँझली रानी बोलीं,—"देखो भैया, तुम बहुत बेपरवाह हो, वह रुपया............।"

वह हँसकर बोले,—"वह तो मेरे सोनेके कमरेके बराबरवाली कोठरीमें लोहेके सन्दूकमें रक्खा है।"

"और जो वहाँसे भी ले जाँय ?"

"यदि ऐसा होने लगा तो फिर तुम्हें भी एक दिन उठा ले जायेंगे !"

"इसका तुम भय न करो, मुझे कोई न ले जायगा। लेने योग्य चीज तुम्हारे ही कमरेमें है। नहीं भैया, हँसीकी बात नहीं है, अब घरमें रुपया रखना ठीक नहीं है।"

"चार-पाँच दिनमें मालगुजारी भेजी जायगी, उसके साथ ही वह रुपया भी कलकत्ते भेज दूँगा।"

"पर देखो भूल न जाना, तुम्हें कोई बात याद ही नहीं रहती।"

"किन्तु उस कमरेमेंसे रुपया चोरी होगा तो मेरा ही रुपया चोरी होगा; तुमसे क्या मतलब ?"

"तुम्हारी यही बातें तो सुनकर मुझे गुस्सा आ जाता है। मैं क्या अपना तुम्हारा अलग करके देखती हूँ ? यदि तुम्हारा

ही रुपया चोरी जाय, तो क्या मेरे दिलको नहीं लगेगी? विधाताने सब कुछ लेकर मेरे लिए लक्ष्मणके समान एक देवर छोड़ा है, उसका मूल्य क्या मैं समझती नहीं? मुझे बड़ी रानीकी तरह देवताओंसे मन बहलाना नहीं आता, मुझे देवताने जो कुछ दिया है वह मेरे लिए देवतासे भी बढ़कर है। क्यों छोटी रानी तू तो एकदम मानों काठकी पुतली बन गई! तुम जानते हो भैया छोटी रानी समझती हैं, मैं तुम्हारी खुशामद किया करती हूँ। यदि जरूरत पड़ती तो खुशामद भी की जाती, पर हमारे देवर ही ऐसे नहीं, जो खुशामदकी अपेक्षा रक्खें। यदि उस माधव चक्रवर्त्तीके समान होते, तो आज हमारी बड़ी रानीको भी देवपूजा छोड़ पैसे-पैसेके वास्ते तुम्हारे ही पैर पकड़नेमें समय काटना पड़ता। पर मैं तो कहती हूँ कि यह भी कुछ उपकार ही होता, क्योंकि फिर तुम्हारी निन्दा करनेको इतना समय नहीं मिलता।"

मँझली रानी इसी प्रकार बहुत देरतक बकती रहीं, बीच-बीच में स्वादिष्ट चीजोंकी ओर अपने देवरका ध्यान आकर्षित करती जाती थीं। उस समय मेरा सिर घूम रहा था। और तो समय नहीं रहा; कुछ न कुछ उपाय तुरन्त करना चाहिये, क्या किया जा सकता है, यही प्रश्न जब मैं बार-बार अपने मन से पूछने लगी उस समय मँझली रानीकी बकबक बड़ी बुरी लगने लगी। विशेषतः मैं जानती हूँ कि मँझली रानीकी आँखों से कोई बात छिपी नहीं रहती, वह बार-बार मेरे मुँहकी ओर देख रही थीं। उन्होंने क्या देखा यह मैं नहीं जानती; पर मुझे

ऐसा मालूम हो रहा था कि मेरे मुँहपर सब बातें मानों साफ-साफ लिखीं हैं।

उस समय मैंने एक बड़े दुःसाहसकी बात की। जरा हँसते हुए मैं एकदम कह उठी,—"बात यह है कि मँझली रानीका सन्देह सब मुझी पर है, चोर डाकुओंकी सब बात ही बात है।

मँझली रानी मुस्कुराकर बोलीं—"यह तूने ठीक कहा,—"स्त्रियोंकी चोरी बड़ी बेढब होती है। पर मेरी आँखोंमें धूल झोंकना आसान नहीं है, मैं पुरुष थोड़े ही हूँ।"

मैंने कहा,—"यदि तुम्हारे मनमें इतना भय है तो मेरे पास जो कुछ है सब तुम रख लो, कुछ नुकसान हो जायगा तो उसमें से काट लेना।"

मँझली रानीने हँसकर कहा,—"जरा सुनो छोटी रानीकी बातें! ऐसे भी नुकसान होते हैं जो लोक-परलोकमें किसी की जमानतसे पूरे ही नहीं हो सकते।"

हमारी बातोंमें वह बिल्कुल नहीं बोले। भोजन करते ही तुरन्त बाहर चले गये। आजकल वह दोपहरके समय भीतर विश्राम नहीं करते।

मेरा अधिकाँश गहना खजांचीके पास जमा था तो भी जो कुछ मेरे पास था वह तीस पैंतीस हजारसे कम न होगा। मैंने वही गहनेका बक्स खोलकर मँझली रानीको दिया और उनसे कह दिया,—"मेरा यह बक्स तुम्हारे ही पास रहेगा, अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है।"

मँझली रानीने गालपर हाथ रखकर कहा,—तूने तो हद

कर दी, छोटी रानी ! मानों तू मेरे रुपये चुरा ले जायगी, इस भयके मारे मुझे रातों नींद नहीं आती !'

मैंने कहा,—"भय करनेमें दोष ही क्या है ? संसारमें कौन किसके मनको जानता है ?"

मँझली रानीने कहा,—"जान पड़ता है अभी स्वयं मुझपर विश्वास करके मुझे शिक्षा देने आई है ? मुझे अपना ही गहना रखना भारी हो रहा है; तेरे गहने की पहरेदारी करके तो बिल्कुल ही मर मिटूँगी। नौकर-चाकर सब जगह आते जाते हैं, तुम अपना गहना यहाँसे ले जाओ, बहिन।"

मँझली रानीके पाससे मैं सीधी बैठकमें चली गई और वहाँ अमूल्यको बुला भेजा। अमूल्यके साथ-साथ देखती हूँ सन्दीप भी आ रहा है। उस समय देर करने का अवसर नहीं था, इसलिए मैंने सन्दीपसे कहा,—"अमूल्यसे मुझे कुछ विशेष बात करनी हैं, आपको थोड़ी देरके लिए·······।"

सन्दीपने रूखे भावसे हँसकर कहा,—"मुझे और अमूल्यको क्या दो-दो समझती हो ? तुम मेरे पाससे उसे तोड़ लेना चाहती हो तो मैं वास्तवमें उसे न रोक सकूँगा।"

मैं इस बातका कुछ उत्तर न देकर चुप खड़ी रही। सन्दीप ने कहा,—"अच्छा तुम अमूल्यसे अपनी विशेष बातें समाप्त कर लो, किन्तु फिर मैं भी विशेष बातोंके लिये तुमसे कुछ समय लूँगा, नहीं तो मैं हारमें रहूँगा। मैं सब बात मान सकता हूँ पर हार नहीं मान सकता। मेरा भाग सबके भाग से अधिक होता है। इसी बात पर मेरी सदा विधातासे लड़ाई रहती है।

पर मैं विधाता को हराऊँगा, आप नहीं हारूँगा।"

अमूल्य पर एक तीव्र दृष्टि डालकर सन्दीप कमरेसे बाहर चला गया। मैंने अमूल्यसे कहा,—"मेरे प्यारे भाई, तुम्हें मेरे लिए एक काम करना पड़ेगा।"

उसने कहा,—"तुम जो कहोगी मैं अपनी जान देकर करने को तैयार हूँ, बहिन।"

मैंने शालमेंसे गहनेका बक्स निकाला और उसके सामने रखकर कहा,—"मेरा यह गहना ले जाओ, चाहे गिरो करो, चाहे बेच डालो, पर जितनी जल्दी हो सके मुझे छः हजार रुपये ला दो।"

अमूल्यने कुछ दुखित होकर कहा,—"नहीं बहन, गहना रहने दो, मैं तुम्हें छः हजार रुपये ला दूँगा।"

मैंने कुछ रुष्ट होकर कहा,—"ये बातें रहने दो, समय नहीं है। यह गहनेका बक्स ले जाओ और आज ही रातकी गाड़ी से कलकत्ते चले जाओ, परसों तक मुझे रुपया मिल जाना चाहिये।"

अमूल्यने एक हीरेका हार निकाल कर उजालेमें देखा और उदास होकर फिर उसे बक्समें रख दिया। मैंने कहा,—"यह सब हीरेका गहना आसानीसे ठीक दामोंमें नहीं बिक सकता, इसलिए मैंने जो तुम्हें गहना दिया है यह तीस हजारसे भी कुछ ज्यादाका होगा। यह सब भी चला जाय तो कुछ हर्ज नहीं पर छः हजार रुपये मुझे अवश्य चाहिये।"

अमल्यने कहा,—"देखो जीजी सन्दीप बाबूने जो ये छः

हजार तुमसे लिये हैं, इसपर मेरा उनसे झगड़ा हो गया है। मैं कह नहीं सकता मुझे कैसी लज्जा मालूम हुई। सन्दीप बाबूने कहा कि देश के लिए लज्जा का दमन करना पड़ेगा। इसे मैं मान सकता हूँ, पर यह तो बात ही दूसरी है। देशके लिए मरनेसे नहीं डरता, मारने में भी दया नहीं करता, इतनी शक्ति तो मुझे मिल गई है। पर तुम्हारे हाथसे यह रुपया लेकर मन में जो ग्लानि हुई वह किसी तरह नहीं जाती। इस बातमें सन्दीप बाबूका मन मुझसे कहीं कड़ा है, उन्हें रत्ती भर भी क्षोभ नहीं हुआ। वह कहते हैं, इस भूलको बिल्कुल नष्ट कर देना चाहिये कि रुपया वास्तव में उसीका होता है, जिसके बक्समें रक्खा हो। इतना भी न हो तो 'बन्देमातरम्' मन्त्र किस कामका है!"

यही कहते-कहते अमूल्य उत्साहित हो उठा। जब मैं सुनने के लिए पास होती हूँ तो ऐसी बातोंमें उसका उत्साह और भी बढ़ जाता है। वह कहने लगा,—"गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि आत्माको कोई नहीं मार सकता। किसीकी हत्या करना केवल बात ही बात है। रुपया ले लेना भी ऐसी ही बात है। रुपया किसका है? उसे किसीने बनाया नहीं है। उसे कोई साथ नहीं ले जाता, वह किसीकी आत्मा से जुड़ा हुआ नहीं है। वह आज मेरा है, कल मेरे लड़केका है, और किसी दिन मेरे महाजनका है। यह चंचल रुपया जब किसीका नहीं है तो तम्हारी निकम्मे कपूतोंके लिए छोड़कर यदि हम उसे देश-सेवकोंकी सेवामें लगा दे, तो इसमें बुराई ही क्या है?"

सन्दीपके मुँहकी बात इस बालकके मुँहसे सुनकर मैं डरके मारे काँप उठती हूँ। जो सपेरे हैं वे बीन बजाकर साँपके साथ खेला करें, यदि मरेंगे तो जान बूझकर मरेंगे। पर ये बालक तो ऐसे कोमल हैं, ऐसे भोले-भाले हैं कि समस्त संसार आशीर्वाद देकर इनकी रक्षा करना चाहता है; ये साँपको साँप न समझ कर हँसते हुए उनके साथ खेलने को ही हाथ बढ़ाते हैं, तभी मेरी समझ में आता है कि यह साँप कैसा भयंकर-अभिशाप है! सन्दीपका अनुमान बहुत ठीक है कि उसके हाथों मैं अपना सर्वनाश करा सकती हूँ पर इस बालकको मैं उसके हाथ से अवश्य बचाऊँगी और उसकी रक्षा करूँगी।

मैंने जरा हँसकर अमूल्यसे कहा,—"जान पड़ता है तुम्हारे देश-सेवकोंकी सेवाके लिए भी रुपयेकी जरूरत है?"

अमूल्यने गर्वके साथ सिर उठाकर कहा,—"है ही, इसमें सन्देह क्या? वे ही तो हमारे राजा हैं" दारिद्र्य उन्हें शोभा देता। आप जानती होंगी कि हम सन्दीप बाबूको फर्स्ट क्लासके सिवा किसी गाड़ी में नहीं बैठने देते। वे राजकीय ठाटसे जरा भी संकुचित नहीं होते, उन्हें जो मानमर्यादा रखनी पड़ती है वह अपने लिये नहीं, बल्कि हम सबके लिए है। सन्दीप बाबू कहते हैं कि संसारमें जो ऐश्वर्य हैं, ऐश्वर्यका सम्मोहन ही उनका सबसे बड़ा अस्त्र है। दारिद्र्यव्रत ग्रहण करना उनके लिये दुःख ग्रहण करना नहीं है, आत्मघात करना है।"

इसी समय सन्दीप भी चुपकेसे अकस्मात् कमरेमें आ गया। मैंने जल्दीसे अपने गहनेके बक्सके ऊपर शाल ढक दी। सन्दीप

ने व्यङ्गपूर्ण स्वरसे पूछा,—"जान पड़ता है, अभी अमूल्यके साथ तुम्हारी विशेष बातें पूरी नहीं हुई ?

अमूल्यने कुछ लज्जित होकर कहा,—"नहीं, हमारी बातें हो चुकीं, विशेष कुछ नहीं था।"

मैंने कहा—"नहीं अमूल्य, अभी नहीं हो चुकी।"

सन्दीपने कहा,—"तो क्या दूसरी बार सन्दीपका प्रस्थान होगा ?"

मैंने कहा,—"हाँ।"

"तो फिर सन्दीप कुमारका पुनः प्रवेश···?"

आज नहीं,—"मुझे समय नहीं मिलेगा।"

सन्दीपकी दोनों आँखें जल उठीं। केवल विशेष कामके लिये समय है, नष्ट करनेको समय नहीं है ?

ईर्ष्या ! प्रबल जहाँ दुर्बल हो जाता है वहाँ क्या अबला बिना अपना जयडंका बजाये रह सकती हैं, मैंने भी दृढ़ स्वरसे कहा,— "नहीं मुझे समय नहीं है।"

सन्दीप कुछ बुरा मानकर बाहर चला गया। अमूल्य घबड़ाकर बोला,—"जीजी, सन्दीप बाबू नाराज हो गए।"

मैंने गर्वसे कहा,—"उन्हें नाराज होनेके लिए न कोई कारण है न अधिकार हैं। एक बात तुमसे कहे देती हूँ, अमूल्य गहनेकी बिक्रीका जिक्र सन्दीप बाबूसे मरते-मरते भी न करना।

अमूल्यने कहा,—"नहीं करूँगा।"

"तो फिर और देर मत करो, आज ही रातकी गाड़ीसे चले जाओ।

यह कहकर मैं अमूल्यके साथ-साथ कमरेसे बाहर निकल आई। देखा सन्दीप बरामदेमें खड़ा है। मैं समझ गई वह अमूल्यको रोकना चाहता है। उसीको बचानेके लिए मुझे कहना पड़ा,—"सन्दीप बाबू, आप मुझसे क्या कह रहे थे ?"

मेरी बात तो विशेष बात नहीं है, केवल साधारण बात है, जब समय नहीं है तो····।

मैंने कहा,—"है समय।"

अमूल्य चला गया। कमरेमें घुसते ही सन्दीपने कहा,— "अमूल्यको आपने जो बक्स दिया था उसमें क्या है ?"

बक्स सन्दीपकी आँखोंसे न छिप सका। मैंने कुछ कड़े स्वर से उत्तर दिया,—"आपको बतानेकी बात होती तो आपके सामने ही दे देती।

"तुम समझती हो अमूल्य मुझसे नहीं कहेगा ?

"नहीं, वह नहीं कहेगा।"

सन्दीपका क्रोध और न रुक सका, उसने एकदम आग बबूला होकर कहा,—"तुम समझती हो तुम मेरे ऊपर प्रभुत्व करोगी, यह कभी नहीं हो सकता। वही अमूल्य उसे यदि मैं अपने पैरोंमें कुचलकर मार डालूँ तो वह सुखसे मरेगा। तुम उसे अपने वशमें करना चाहती हो; मेरे रहते यह कभी नहीं हो सकता।"

दुर्बल,-दुर्बल ! इतने दिनमें सन्दीपको मालूम हुआ है कि वह मेरे सामने दुर्बल है। इसीलिये यह क्रोध अकस्मात् भड़क उठा है। अब उसकी समझमें आया है कि मेरी शक्तिके सामने

जबर्दस्ती नहीं चलेगी,—मैं अपने कटाक्षके आघातसे उसके दुर्गकी दीवारें चूर-चूर कर सकती हूँ। इसी कारण डींग और धमकीसे काम लिया जा रहा है। मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और मुझे हँसी आने लगी। आज इतने दिन बाद उससे ऊँचे स्थलपर खड़ी हुई हूँ—अब मेरा यह स्थान जाने न पायेगा, अब मैं नीचे उतरूँगी। मेरी दुर्गतिमें भी मानों मेरा मान कुछ बना रहेगा!

सन्दीपने कहा—"मैं जानता हूँ वह गहनेका बक्स है।"

मैंने कहा,—"आप जो चाहें समझिए, मैं कुछ न बताऊँगी।"

"तुम अमूल्यको मुझसे अधिक विश्वसनीय समझती हो? समझ लो वह मेरी छायाकी छाया है, प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि है, मेरे पाससे हटते ही वह कुछ भी नहीं है!"

"जहाँ वह तुम्हारी प्रतिध्वनि नहीं है वहीं वह अमूल्य है, वहीं मैं उस पर तुम्हारी प्रतिध्वनिकी अपेक्षा अधिक विश्वास रखती हूँ।"

"माताकी पूजा-प्रतिष्ठाके लिये तुम अपना सब गहना अर्पण कर चुकी हो, अब यह बात भूल जानेसे काम नहीं चलेगा; नहीं, बल्कि तुम पहिले ही दे चुकी हो।"

"जो गहना देवता मेरे पास बाकी रक्खेंगे वह मैं सहर्ष देवता को दूँगी। पर मेरा जो गहना चोरी हो गया, वह मैं कैसे दे सकती हूँ?"

"देखो इस प्रकार बात बनाने से काम नहीं चलेगा। इस समय मुझे काम करना है, यह काम समाप्त हो जाय इसके

बाद तुम्हें अपना यह त्रियाचरित्र दिखानेका समय मिल जायगा। फिर उस लीलामें मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा।"

जबसे मैंने अपने स्वामी का रुपया चुराकर सन्दीप के हाथ में दिया है, ठीक उसी समयसे हमारे सम्बन्धके भीतरका संगीत न जाने कहाँ चला गया। केवल यही नहीं है कि मैं अपना गौरव सम्मान खोकर नीचे गिर पड़ी हूँ—सन्दीपकी शक्तिको भी अब मेरे ऊपर भरपूर आघात करनेका अवसर नहीं मिलता। जो चीज मुट्ठीमें आ गई उस पर तीर नहीं लगता। इसलिये आज सन्दीप पहलेके समान वीरमूर्ति नहीं है। उसकी बातोंमें भूँझल और छिछोड़पनका स्वर सुनाई पड़ता है।

सन्दीपने अपनी दोनों उज्ज्वल आँखें मेरे मुख पर जमा लीं, देखते-देखते उसकी आँखें मानों दोपहरके आकाशके समान जलने लगीं। उसके पाँव बार-बार चञ्चल हो उठते थे, मानों उठनेकी चेष्टा कर रहा है और झपट कर मुझे पकड़ लेना चाहता है। मेरी छातीमें धड़कन होने लगी। मेरे शरीरकी नस-नस फड़क रही थी और कानमें रक्त झाँ-झाँ कर रहा था, मैं समझ गई कि जरा भी और बैठी रही तो फिर न उठ सकूँगी। अपना सारा जोर लगाकर मैं कुरसीसे उठ खड़ी हुई और द्वारकी ओर झपटी। सन्दीपने अवरुद्ध कण्ठसे कहा—"कहाँ भागती हो, रानी?"

यह कहकर सन्दीप जल्दीसे उठकर मुझे पकड़नेके लिए बढ़ा। पर ठीक इसी समय बाहर जूते का शब्द सुनाई पड़ा

और सन्दीप झटपट लौटकर कुर्सी पर बैठ गया। मैं किताबोंकी आलमारीकी ओर मुँह किए किताबों का नाम पढ़ने लगी।

कमरेमें मेरे स्वामीके आते ही सन्दीपने कहा,—"क्यों निखिल तुम्हारी किताबोंमें ब्राउनिंग* नहीं है? मैं मक्खी रानी से अपने उसी कालेज-क्लबका जिक्र कर रहा था—याद है, ब्राउनिंग की उस कविताके अनुवाद पर हम चार जनोंमें कैसी लड़ाई हुई थी भूल गए?

She should never have looked at me,
If she meant I should not love her!
There are plenty......men you call such,
I Suppose.......she may discover
All her soul to, if she pleases
And yet leave much as she found them:
But I am not so, and she knew it
When she fixed me, glancing round them.

मैंने जैसे तैसे इसकी भाषा भी कर ली थी, पर वह कुछ सन्तोषजनक न हो सकी। एक बार मैंने सोचा था कि मैं भी कवि हुआ रक्खा हूँ, जरा-सी कसर है, विधाताने दया करके मेरा यह संकट काट दिया—पर हमारा दक्षिणाचरण तो नमक का इन्सपेक्टर न हो गया होता तो वास्तवमें कवि हो सकता था, उसने खासा अनुवाद कर लिया था—पढ़कर जान पड़ता

---

* अँग्रेजी का प्रसिद्ध कवि Browning।

था कि वास्तवमें हमारे देशकी भाषा है, किसी कल्पित देशकी भाषा नहीं है—

न हो कुछ प्रेम आपसमें यही यदि उसके मनमें था
तो क्या फिर भी उचित था यों मेरे मनको लुभा लेना ?
मनुष्य ऐसे बहुत मिल जायेंगे ढूँढ़नेसे दुनिया में,
(अगर उनकी भी गिनती हम—मनुष्य ही में कर बैठें ।)
कि रख देती अगर वह दिल भी अपना सामने उनके
तो वह मिट्टीके माधो फिर भी वैसे ही धरे रहते ।
यह वह खुद जानती थी मैं नहीं हूँ आदमी ऐसा,
जब उसने छोड़कर सबको मेरे ही दिलको छेदा था ।

नहीं मक्खीरानी तुम व्यर्थ ढूँढ़ रही हो—निखिलने विवाह के समयसे कविता पढ़ना बिलकुल छोड़ दिया है, जान पड़ता है उसे अब आवश्यकता भी नहीं है। मुझे कामके जोरके कारण छोड़ना पड़ा, पर जान पड़ता है 'काव्यज्वरोमनुष्याणाम' मुझे फिर पकड़े लेना चाहता है !"

मेरे स्वामीने कहा,—"मैं तुम्हें सचेत करने आया हूँ, सन्दीप ।"

सन्दीपने कहा,—"काव्यज्वरके सम्बन्ध में ?"

स्वामीने इस मजाककी ओर कुछ ध्यान न देकर कहा,—"कुछ समयसे ढाकेके मौलवियोंने आना जाना शुरू किया है—इस ओर के मुसलमानोंको चुपके-चुपके उभारनेका उद्योग हो रहा है। तुमसे वे लोग बहुत नाराज हैं, संभव है कुछ उत्पात कर बैठे ।"

"फिर क्या भाग जानेकी राय देते हो ?"

"मैं खबर देने आया हूँ, राय देना नहीं चाहता।"

"मैं यदि यहाँका जमींदार होता तो चिंताका विषय मुसलमानोंके लिए ही होता, मेरे लिए न होता। तुम मुझे न डरा कर उन्हींको जरा दबाये रक्खो तो तुम्हारे और मेरे दोनोंके योग्य बात हो। जानते हो कि तुम्हारी दुर्बलताने आसपासके जमींदारोंको भी बेबस कर दिया है।"

सन्दीप मैं तुम्हें उपदेश नहीं देता, तुम भी मुझे न दो तो अच्छा है। मुझे एक बात और कहनी है। तुम कुछ दिनसे अपना दलबल लिए मेरी रैयतको तङ्ग कर रहे हो। अब मैं ऐसा न होने दूँगा, अब तुम्हें मेरे इलाकेसे चला जाना चाहिए।"

"मुसलमानोंके ही कारण या और भी कुछ भयकी बात है?"

"कुछ बातें ऐसी भी होती हैं जिनका भय न करना ही कायरता है। मैं ऐसे ही भयके कारण तुमसे कह रहा हूँ, कि तुमको यहाँसे जाना पड़ेगा,। चार-पाँच दिन बाद मैं कलकत्ते जा रहा हूँ, उसी समय तुम भी मेरे साथ चले चलना। कलकत्ते में तुम मेरे मकानमें रह सकते हो, इसमें कुछ हर्ज नहीं है।"

"अच्छा, तो अभी पाँच दिन बाकी हैं। इतने समयमें आओ मक्खीरानी तुम्हारे छत्तेसे बिदा होनेका गीत गा लें। हे आधुनिक बंगालके कवि, आओ तुम्हारी वाणीको लूट लें, अपना द्वार खोल दो,—चोरी तुम्हींने की है। तुमने मेरे ही गीतको अपना कर लिया है—नाम तुम्हारा हुआ करे पर गीत तो मेरा ही है।"

यह कहकर सन्दीपने अपने मोटे बेसुरे गलेसे भैरवीमें यह

गीत गाना शुरू कर दिया—

मधुऋतु नित्य होये रइलो तोमार मधुर देशे।
जाओया-आसार कान्नाहासिहाओयाय सेथा बेड़ाय भेसे।
जाय जे जना सेई सुधु जाय, फूले फोटा तो फुरोय ना हाय,
झरबे जे फूल सेई केवलि झरे, पड़े बेलाशेषे।
यखन आमि छिलेम काछे तखन कतो दियेछि गान,
एखन आमार दूरे जाओया एरो किगो नाई कोनो दान?
पुष्पवनेर छायाय ढेके एई आशा ताई गेलेम रेखे
आगुनभरा फागुनके तोर कांदाय जेनो आषाढ़ एसे॥*

उत्तेजनाका अन्त नहीं था, मानों एकदम अग्नि भड़क उठी है। उसे रोकना वज्रको रोकना था।

मैं कमरेसे बाहर निकल आई। जैसी ही भीतर जाने लगी अमूल्य अकस्मात् आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। कहने

---

* तुम्हारे सुन्दर देशमें वसन्त ऋतु स्थायी होकर रहने लगी। तुम्हारे देशकी हवा वियोगके विलाप और संयोगकी हँसीसे सदा गूँजा करती रही। जिस मनुष्यको जाना है वह अकेला ही जाता है। फूलोंका खिलना बन्द नहीं होता। जिस फूलको झड़ना है, वही समय आनेपर झड़ पड़ता है। जब तक मैं तुम्हारे निकट रहा, मैंने तुम्हें अनेक गीत सुनाये। अब मेरे विदा होनेका समय आया, क्या अब मुझे कुछ दान नहीं मिलेगा? मैं इसी कारण पुष्पवनकी छायामें ढककर यह आशा रक्खे जाता हूँ कि तुम्हारे अग्नि भरे (फूलोंसे सुशोभित) फागुनको आषाढ़ (वर्षा ऋतु) आकर खूब रुलाये।

लगा,—"बहिन तुम कुछ सोच मत करना। मैं जा रहा हूँ, निष्फल होकर न लौटूँगा!"

मैंने उसके निष्ठापूर्ण तरुण मुखकी ओर देखकर कहा,—"अमूल्य अपने लिए सोच नहीं करूँगी, पर तुम्हारे लिए तो सोच किये बिना नहीं रह सकती।"

अमूल्य जाने लगा, पर मैंने उसे फिर बुलाकर पूछा,—"अमूल्य, तुम्हारी माँ हैं?"

"हैं।"

"बहिन?"

"नहीं, और बहिन भाई कोई नहीं है। पिता मुझे छोटा-सा ही छोड़कर मर गये थे।"

"जाओ, तुम अपनी माँ के पास लौट जाओ, अमूल्य।"

"जीजी, मैं तो यहाँ अपनी माँको भी देख रहा हूँ, बहिनको भी देख रहा हूँ।

मैंने कहा,—अमूल्य, आज रातको जानेसे पहले तुम यहाँ भोजन करके जाना।

उसने कहा,—"समय नहीं मिलेगा, तुम मुझे अपना कुछ प्रसाद दे देना मैं साथ लेता जाऊँगा।"

"तुम्हें क्या चीज सबसे ज्यादा पसन्द है अमूल्य?"

"इन दिनों जब मैं माँके पास रहता हूँ तो खूब पेटभर कर गूँझे खाता हूँ। जब लौटकर आऊँगा तब तुम्हारे हाथके तैयार किए हुए गूँझे खाऊँगा।"

—०❀०—

निखिलेश की आत्म-कथा

मुझे मास्टर साहबसे खबर मिली कि सन्दीप, हरीश कुण्डूके साथ मिलकर बड़ी धूमधामसे महिषमर्दिनीकी पूजाका प्रबन्ध कर रहा है। इस पूजाका खर्च हरीश कुण्डूने अपनी रैयतसे उगाहना शुरू कर दिया है। कविरत्न और विद्यावागीश महाशयोंसे स्तुति लिखनेकी प्रार्थना की गई है।

मास्टर साहबके साथ इसी बातपर सन्दीपकी बहस भी हो चुकी है। सन्दीप कहता है,—"देवताओंका भी रीवोल्यूशन होता है; पितामहने जिस देवताकी सृष्टि की थी, यदि पौत्र उसी देवताको अपने मतके अनुसार न बना सके तो वह अवश्य नास्तिक हो जायगा। पुराने देवताओंको आधुनिक बनाना ही मेरा जीवन-कार्य है, देवताओंको अतीतके बन्धनसे मुक्ति देनेके लिए ही मेरा जन्म हुआ है। मैं देवताओंका उद्धार करता हूँ।"

मैं सन्दीपका जादू बचपनसे देखता आया हूँ—सत्यको आविष्कार करनेकी उसे ज़रा भी चिन्ता नहीं है, सत्यको गोरख-धन्धा बना डालने ही में उसे आनन्द मिलता है। यदि उसका जन्म मध्य अफ्रिकामें हुआ होता, तो वह बड़े आनन्दके साथ नई-नई युक्तियोंसे प्रमाणित करता कि नर-बलि देकर नर-मांस भोजन करना ही मनुष्यको मनुष्यका अन्तरङ्ग बनानेकी श्रेष्ठ साधना है। जिसका काम भुलाना ही है वह स्वयं आपको भी विना भूले नहीं रह सकता। मेरा विश्वास है कि जब कभी भी सन्दीप एक नई भूलभुलैया गढ़ लेता है, वह तुरंत समझ बैठता

है कि मैंने सत्यको ढूँढ़ निकाला—चाहे उसके एक विचारके साथ दूसरे विचारका कितना ही विरोध क्यों न हो।

मैंने विमलाके सामने ही सन्दीपसे कह दिया कि तुम्हें मेरे यहाँसे चला जाना चाहिए। इससे सम्भवतः विमला और सन्दीप दोनोंने मेरा मतलब कुछ और समझा होगा, पर मुझे इस भयसे भी मुक्त हो जाना चाहिए। विमला भी यदि समझती है कि मेरे मनमें कुछ और बात है तो समझा करे।

ढाकेसे मौलवी प्रचारकोंका आना-जाना लगा है। मेरे इलाकेके मुसलमान गोहत्यासे प्रायः हिन्दुओंके समान घृणा करते थे, पर अब दो-एक जगह गाय ज़िबह हुई हैं। मुझे अपने मुसलमान प्रजासे ही इसकी पहले-पहल ख़बर मिली और उन्हीं लोगोंसे इसका प्रतिवाद भी सुना। मैंने समझ लिया कि इस बार मुश्किलका सामना होगा। एक प्रकारकी झूठमूठकी ज़िद ही इस मामलेकी जड़-मूल है, पर जबर्दस्ती करते ही जो बात निर्मूल है, वह वास्तविक हो उठेगी। यही तो हमारे विरुद्ध-पक्षकी चाल है।

मैंने अपनी हिन्दू रिआयाके कुछ प्रधान-प्रधान आदमियोंको बुलाकर बहुत समझाया बुझाया। मैंने उनसे कहा,—"अपने धर्म्मका हम पालन कर सकते हैं; पर दूसरेके धर्म्मपर हमें कुछ अधिकार नहीं है। मैं वैष्णव हूँ, इस ख्यालसे शाक्त मतके लोग रक्तपात थोड़े ही छोड़ देंगे। फिर उपाय है? मुसलमानोंको भी अपने धर्म्मपर चलने देना चाहिए। गड़बड़ मचाना ठीक नहीं है।"

वे बोले,—"महाराज, इतने दिनसे तो यह सब उत्पात बंद था।"

मैंने कहा,—"बन्द था, पर यह उनकी इच्छा थी। अब फिर वही पथ लेना चाहिए, जिससे वे अपनी इच्छासे बन्द रखें। वह लड़ाई-झगड़ेका पथ नहीं है।"

वे बोले,—"नहीं महाराज, वे दिन गये! अब उनका दमन किये बिना काम नहीं चलेगा।"

मैंने कहा,—"दमनसे गो-हिंसा तो रुकनेसे रही, ऊपरसे मनुष्य-हिंसा हो जानी संभव है।"

इन लोगोंमें एक आदमी अङ्गरेजी पढ़ा भी था; वह आज कल की बोलीमें बातें करना जानता था। उसने कहा,—"देखिए यह तो केवल धर्म और संस्कारकी बात नहीं हैं, हमारा देश कृषि-प्रधान है, इस देशमें गायोंसे ही…………।"

मैंने कहा,—"इस देशमें भैंस भी दूध देती है और भैंसे हल चलाते हैं, पर उनका कटा मुण्ड अपने सिर पर रख शरीरमें खूब सान जिस समय सारेमें नाचते फिरते हैं; उस समय धर्म की दुहाई देकर यदि हम मुसलमानोंसे झगड़ा करेंगे, तो धर्म्म भी मन-ही-मन हँसेगा और केवल आपसका झगड़ा ही प्रबल हो उठेगा। केवल गायको ही यदि अवध्य मानें और भैंसको अवध्य न मानें तो यह धर्म्म नहीं है—कोरा कट्टरपन है।"

अङ्गरेजी-पढ़े महाशय बोले,—"इस सबका कारण क्या है, यह क्या आप नहीं जानते? मुसलमान जान गये हैं कि हमसे कोई रोक-टोक नहीं करेगा। पाँचुड़ेमें उन्होंने कैसा उत्पात किया है, वह तो आपने सुना होगा?"

मैंने कहा,—"यह जो मुसलमानोंको अस्त्र बनाकर हमारे ऊपर छोड़ा जा रहा है—यह अस्त्र हमने अपने ही हाथोंसे तैयार किया—धर्म्मका इसी प्रकार न्याय होता है। हमने जो कुछ इतने दिनसे जमा किया है वह हमारे ही ऊपर खर्च होगा।"

अङ्गरेजी-पढ़े महाशयने कहा,—"बहुत अच्छा, खर्च होगा तो होने दीजिए, पर इसमें हमारे लिए भी एक प्रकारका सुख है—इस बार हमारी ही जीत है—जिस कानूनको वे सबसे बड़ा मानते हैं, उसी कानूनको आज हमने चूर कर दिया। इतने दिन उन्होंने राज किया है, आज हम उन्हें डाकू बनाकर छोड़ेंगे यह बात इतिहासमें न लिखी जायगी, पर हमारे मनमें सदा अङ्कित रहेगी।"

इस ओर समाचार-पत्रोंने मुझे नक्कू बना रखा है। मैंने सुना है कि चक्रवर्ती जमींदारके इलाकेमें नदीके किनारे श्मशान घाट पर देश-सेवकोंने मेरी मूर्ति बनाकर बड़ी धूम-धामके साथ जलाई है और उसके साथ और भी अनेक प्रकारसे मेरा अपमान किया है। इन लोगोंने एक कपड़ेकी मिल खोलनेका प्रबन्ध किया था और मेरे हाथ बहुत से हिस्से बेचने आये थे। मैंने उनसे कह दिया था कि केवल रुपये ही का नुकसान होता तो मुझे परवाह न होती, लेकिन तुम जो कारखाना खोल रहे हो इसमें बहुतसे गरीबोंका रुपया मारा जायगा। इसलिये मैं हिस्से नहीं खरीदूँगा।

"क्यों महाराज, क्या देशके हितका आपको बिल्कुल ख्याल

नहीं है ?"

"कारोबार करनेसे देशका लाभ हो सकता है, पर केवल देश-हितके ख्यालसे ही तो कारोबार सफल नहीं होता। जब हम सावधान थे उसी समय जब हमारा कारोबार नहीं चला तो अब उत्तेजित और उन्मत्त होकर हम क्या कर सकते हैं ?"

"आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मुझे हिस्से नहीं खरीदने हैं।"

"खरीदूंगा, पर जब तुम कारोबारको कारोबारकी तरह चलाओगे। तुम्हारी आग जल रही है इसी कारण तुम्हारी हाँडी भी चढ़ जायगी, इसका तो मैं कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देखता।"

यह कैसी खबर सुन रहा हूँ। मेरे चकवावाले खजाने में डाका पड़ गया। कल रात साढ़े सात हजार रुपये वहाँ जमा किये गये थे और आज सबेरे हमारे सदर खजानेको भेजे जानेवाले थे। रुपया भेजनेमें सुभीता होगा इस विचारसे खजाँचीने सरकारी खजानेसे रुपयेके बदले नोट ले लिये थे और उनकी गड्डियाँ बनाकर रख छोड़ी थीं। आधी रातके करीब डाकुओंका दल बन्दूक, पिस्तौल लिये मालखाने पर आ धमका। कासिम सिपाही गोली खाकर जख़्मी हो गया। आश्चर्यका विषय यह है कि डाकुओं ने केवल छः हजार लेकर बाकी डेढ़ हजार के नोट वहीं पड़े छोड़ दिये। वे आसानीसे सब रुपया ले जा सकते थे। जो हो, डाकुओंका धावा तो खतम हुआ अब पुलिसका धावा आरम्भ होगा। रुपया तो गया ही अब

शांति भी न रहेगी।

घरके भीतर गया तो देखा वहाँ पहले ही खबर पहुँच चुकी थी। मँझली रानी ने आकर कहा,—"भैया यह क्या सर्वनाश हो गया ?" मैंने बात टालनेके लिए कहा,—"सर्वनाश तो अभी नहीं हुआ। खाने-पीनेको तो अब भी काफी है।"

"नहीं भैया, हँसीकी बात नहीं है। तुम्हारे पीछे ये लोग क्यों पड़ गये हैं और किसी तरह काम न चले तो तुम ही जरा उनकी बात रख लिया करो। सबसे बिगाड़ने में क्या धरा है।"

"मैं किसी को सन्तुष्ट करके देश का सत्यानाश नहीं कर सकता।"

"उस दिन उन लोगोंने नदीके घाट पर क्या-क्या उत्पात किया था। छी ! छी !! मेरे तो डरके मारे प्राण निकले जाते हैं। छोटी रानी तो मेमसे पढ़ी है, उसका तो डर बिलकुल निकल गया है। पर मैंने तो केनाराम पुरोहितको बुलाकर शान्ति स्वस्त्ययन कराया तब जरा जानमें जान आई। मेरी बात मानो भैया तुम तुरन्त कलकत्ते चले जाओ—यहाँ रहोगे तो वे लोग न जाने किस दिन क्या कर बैठें !"

मँझली रानी की सहानुभूतिने मेरी आत्मा पर मानों सुधा-वर्षण कर दिया। हे अन्नपूर्णा, मैं तुम्हारे हृदयके द्वार पर सदा भिखारी रहूँगा।

"भैया, तुम्हारे सोनेके कमरेवाली कोठरीमें जो रुपया रक्खा है वह क्या अब भी वहीं रक्खा रहेगा ? कहीं से उन्हें खबर मिल गई तो न जाने क्या कर बैठें—मुझे रुपये का कुछ ख्याल

नहीं है पर....!"

मैंने मँझली रानी को शान्त करनेके लिये कहा,—"अच्छा, वह रुपया निकालकर मैं अभी खजांचीके पास भेजे देता हूँ। परसों ही कलकत्ते जाकर उसे बैंक में जमा कर आऊँगा।"

यह कहकर अपने सोनेके कमरेमें घुसा तो देखा कि अन्दरकी कोठरी बन्द है। द्वार पर धक्का दिया तो भीतरसे विमलाने कहा,—"मैं कपड़े पहन रही हूँ।"

मँझली रानीने कहा,—"इतने सबेरे से ही छोटी रानीका सिंगार होने लगा जान पड़ता है आज बन्देमातरम् की सभा जुटने वाली है। अरी ओ देवी चौधरानी, वहाँ बैठी-बैठी क्या लूट का माल मंगवा रही है?"

और थोड़ी देर पीछे देखा जायगा यह सोचकर मैं बाहर चला आया। वहाँ देखा कि पुलिस इन्सपेक्टर मौजूद हैं। मैंने उनसे पूछा,—"क्यों कुछ पता लगा?"

"कुछ सन्देह तो हुआ है।"

"किस पर?"

"उसी कासिम सिपाही पर।"

"यह क्या कहते हो? वह तो बड़े भरोसेका आदमी है।"

"भरोसेका आदमी हो सकता है, पर इससे यह तो साबित नहीं होता कि वह चोरी नहीं कर सकता। मैं देख चुका हूँ कि पचीस बरस जो आदमी बराबर विश्वसनीय रहा हो वह भी एक दिन आकर अकस्मात्...।"

"ऐसा हो भी तो भी मैं जेल नहीं भेज सकता। कासिम

ने छः हजार लेकर बाकी रुपया छोड़ क्यों दिया ?"

"केवल हमें धोखा देनेके लिये। आप जो चाहें सो कहें वह आदमी है बड़ा चलता हुआ। वह आपके यहाँ पहरा अवश्य देता है पर यहाँ आसपासमें जितने डाके पड़े हैं उन सबकी जड़-मूल वही है।"

यह कहकर इन्सपेक्टरने बहुतसे दृष्टान्त देकर मुझे बताया कि एक आदमी २५।३० मीलकी दूरीपर डाका डाल सकता है और फिर ठीक समयपर आकर अपनी हाजिरी भी लिखा सकता है।

मैंने पूछा,—"आप कासिमको लाये हैं ?"

उसने उत्तर दिया,—"नहीं, वह थानेमें है। बड़े साहब तहकीकातके लिए जानेवाले हैं।"

मैंने कहा,—"मैं भी उसे देखना चाहता हूँ।"

कासिमने जैसे ही मुझे देखा, मेरे पैरोंपर गिर पड़ा और रोकर कहने लगा,—"खुदाकी कसम, महाराज मैंने यह काम नहीं किया।"

मैंने कहा,—"कासिम, मैं तुमपर सन्देह नहीं करता। तुम्हें कुछ डर नहीं है। मैं बिना अपराध तुम्हें सजा न होने दूंगा।"

कासिम डकैतीका ठीक-ठीक हाल न बता सका, केवल बढ़ा-बढ़ाकर बातें बताने लगा—चार सौ पाँच सौ आदमी ऐसी बड़ी-बड़ी बन्दूकें, चमकती हुई तलवारें इत्यादि-इत्यादि। मैं समझ गया यह सब झूठ बातें हैं, या तो डरके मारे उसे सब चीजें बड़ी-बड़ी दिखाई पड़ीं या हारकी लज्जा दबानेके लिये

जानकर अत्युक्ति कर रहा है। उसका विचार था कि हरीश कुण्डूसे मेरी शत्रुता है और यह काम उसीका है। केवल यही नहीं, उसे तो विश्वास था कि उसने उनके सिपाही इकरामकी आवाज़ साफ़-साफ़ सुनी थी।

मैंने कहा,—"देखो क़ासिम, अनुमानके ऊपर भरोसा करके किसीका नाम कदापि न ले देना। हरीश कुण्डू इस मामलेमें शामिल है या नहीं, यह साबित करनेका भार तुम्हारे ऊपर नहीं है।

घर आकर मैंने मास्टर साहबको बुला भेजा। वह गम्भीर होकर बोले,—"अब कल्याण नहीं है। हमने धर्मको हटाकर देश को उसकी जगह रख दिया है। अब देशका सब पाप उद्धत होकर फूट निकलेगा। उसे अब कोई रुकावट न रहेगी।

"आपका क्या विचार है? इस मामलेमें····।

"मैं नहीं जानता, पर अत्याचारकी हवा चल पड़ी है। तुम इन लोग को अपने इलाकेसे इसी दम विदा कर दो, जरा भी न ठहरने दो।

"मैंने एक दिनका और समय दे दिया, परसों ये सब चले जायँगे।"

"देखो मैं एक बात कहता हूँ। विमलाको कलकत्ते ले जाओ। यहाँ उसने संसारको बहुत संकीर्ण रूपमें देखा है, सब मनुष्यों और सब वस्तुओंका ठीक परिमाण नहीं समझ सकती। उसे तुम दुनियाँकी जरा सैर करा दो—मनुष्यको और मनुष्यके कर्म-क्षेत्रको उसे अच्छी तरह देख लेने दो।"

"मैंने भी यही बात सोची थी।"

"पर देर करना ठीक नहीं है। देखो निखिल, मनुष्य का इतिहास पृथ्वीके समस्त देशों और समस्त जातियों के आचरणसे तैयार हो रहा है, इसीलिये राजनीति में भी धर्म को बेचकर देश को देवता बनाने से काम नहीं चलेगा। मैं जानता हूँ कि यूरोप वाले इस बात पर विश्वास नहीं रखते, पर यह मैं नहीं मानता कि उसी कारण वे हमारे गुरु हो सकते हैं। सत्य के लिये मनुष्य प्राण देकर अमर हो जाते हैं, यदि कोई जाति सत्य के लिये प्राण देगी, तो वह भी इतिहास में अजर-अमर बनी रहेगी। और कहीं न सही, कम-से-कम भारतवर्ष में तो हमें सत्य के इस आदर्श को वास्तविक कर दिखाना चाहिये। यद्यपि आजकल यहाँ शैताननें अपने अभ्र-भेदी, परिहासपूर्ण गर्जन से धूम मचा रखी है। न जाने यह पाप की महारानी हमारे देश में कहाँ से आ घुसी है?"

सारा दिन इसी मामले की छान-बीन में कट गया। जब मैं रात को सोने के लिये गया, तो बिलकुल थक गया था। वह रुपया उस दिन न निकालकर अगले दिन सबेरे निकालना निश्चय किया। रात में सोते-सोते मेरी एकदम आँख खुल गई। चारो ओर अन्धकार था। किसी चीज की आवाज मेरे कान में पड़ी, जान पड़ा कोई रो रहा है।

वर्षा की रात में हवा के झोंके के समान अश्रु-जल से भरी हुई लम्बी-लम्बी साँसों की आवाज रह-रहकर मेरे कानों में आने लगी। मुझे ऐसा विदित हुआ कि यह आवाज मेरे कमरे के

हृदय से ही निकल रही है।

मेरे कमरे में और कोई नहीं था। विमला कुछ दिन से किसी और कमरे में सोती है। मैं उठ खड़ा हुआ। बाहर बरामदे में जाकर देखा कि विमला धरती पर मुँह के बल पड़ी है। उस समय की दशा का वर्णन करना बहुत कठिन है। यह केवल वही जानता है जो विश्व-धर्म के मध्य में बैठा हुआ जगत की समस्त वेदना को ग्रहण करता है। आकाश पर सन्नाटा छाया हुआ था। तारे चुपचाप एकटक देख रहे थे। रात्रि निस्तब्ध थी और इसी सबके बीच में वही एक निद्रा-हीन रोने की आवाज थी।

हम इस सब दुःख-सुख को संसार और शास्त्र के साथ मिला कर अच्छा या बुरा कहने लगते हैं, किन्तु अन्धकार के हृदय को तोड़ कर यह जो दुःख का स्रोत खुल पड़ा है, इसे किस नाम से पुकारेंगे। उस निशीथ-रात्रि में उन लाखों-करोड़ों तारों की निस्तब्धता के मध्य में खड़े होकर जिस समय मैंने उसकी ओर देखा तो मेरा मन भयभीत होकर कहने लगा,—"मैं उसके गुण-दोषों पर विचार करनेवाला कौन हूँ। हे प्राण! हे मृत्यु! हे असीम विश्व! हे असीम विश्व के ईश्वर! तुममें जो रहस्य भरा है, मैं उसे हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

मैंने एक बार सोचा कि लौट चलूँ, किन्तु यह न कर सका। धीरे-धीरे विमला के पास जा बैठा और उसके सिर पर हाथ रख दिया। पहले पहल उसका सारा शरीर काठ के समान कड़ा हो गया। पर तुरन्त ही कठिनता को तोड़कर अश्रु-स्रोत और भी वेग के साथ बह निकला। मनुष्य के हृदयमें इतना दुःख कैसे समा

जाता है, यह क्या कोई सोचकर बता सकता है ?

मैं धीरे-धीरे विमलाके सिरपर हाथ फेरने लगा। इसके बाद उसने टटोलते-टटोलते एकदम मेरे पैर पकड़ लिये और उन्हें अपनी छातीपर रखकर ऐसे जोरसे दबाया कि मानों उसी आघातसे उसकी छाती फट जायगी।

विमला की आत्म-कथा

—:o:—

आज अमूल्य कलकत्तेसे लौटकर आनेवाला है। बैरासे मैंने कह दिया कि उसके आते ही मुझे खबर कर दे। पर मुझसे फिर भी नहीं रहा गया। बाहर बैठकमें जाकर उसकी बाट देखने लगी।

अमूल्यको जब मैंने गहना बेचनेके लिये कलकत्ते भेजा था, उस समय मुझे केवल अपने ही कामका ध्यान था। इस बातका मुझे जरा भी ध्यान नहीं रहा कि वह बच्चा है, इतने रुपयेका गहना कहीं बेचने जायगा, तो सब उसपर सन्देह करेंगे। हम स्त्रियाँ इतनी असहाय होती हैं कि अपनी विपत्ति दूसरोंके ऊपर डालनेके सिवाय हमें कोई उपाय नहीं सूझता। हम मरनेके समय औरोंको भी अपने साथ ले डूबती हैं।

मुझे बड़ा घमण्ड था कि मैं अमूल्यको बचा लूँगी। जो आदमी डूब रहा हो वह भी किसीको बचा सकता है ? हाय मैंने उसे कहींका न रक्खा। जब मैंने भैयादुइजके दिन उसके

माथेपर टीका लगाया था, तो यमराज अवश्य मन-ही-मन हँसे होंगे। उसे आशीर्वाद किसने दिया था? उसीने जो आप पापोंके बोझसे दबी जा रही है!

जान पड़ता है मनुष्यको कभी-कभी अमङ्गलका प्लेग आ लगता है, अकस्मात् न जाने कहाँसे उसका बीज आ पड़ता है और एक ही रातमें रोगी चल बसता है। क्या इस प्लेग-पीड़ित रोगीको संसारसे कहीं बहुत दूर हटाकर नहीं रख सकते? मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि यह रोग कैसा भयानक है और कितना शीघ्र फैलनेवाला है। वह मानों विपत्तिकी मशालके समान है। जो आप जल-जलकर सारे संसारको जला डालती है।

नौ बज गये। मुझे रह-रहकर ध्यान आता है कि अमूल्य पर कुछ विपत्ति आ पड़ी है, उसे पुलिसने पकड़ लिया है; मेरे गहनेके बक्सपर थानेमें गड़बड़ मची हुई है; किसका बक्स है—उसे कहाँसे मिला, इसका उत्तर तो अन्तमें सारी दुनियाँके सामने मुझे ही देना पड़ेगा! क्या उत्तर दूँगी? मँझली रानी, मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया। आज तुम्हारी बारी है। आज तुम समस्त संसारका रूप धरकर बदला लोगी। हे ईश्वर, इस बार मुझे बचा लो—मैं अपना सारा घमण्ड छोड़कर सदा मँझली रानीके चरणोंमें पड़ी रहूँगी।

मैं और न रह सकी। उसी दम भीतर जाकर मँझली रानी के सामने उपस्थित हो गई। वे उस समय धूपमें बैठी पान लगा रही थीं, पास ही थाको बैठी थी। थाकोको देखकर मुझे क्षणभर के लिये कुछ संकोच हुआ, पर तुरन्त मनको कड़ा करके मँझली

रानी के पैरों पर गिर पड़ी।

वह कहने लगीं,—"अरी छोटी रानी, यह क्या करती है ? अकस्मात् यह भक्ति-भाव कैसा ?"

मैंने कहा,—"बहन, आज मेरी जन्म-तिथि है। मैंने बहुत अपराध किये हैं। बहन मुझे आशीर्वाद दो कि तुम्हें फिर कभी कष्ट न पहुँचाऊँ। मैं बड़े छोटे मनकी हूं !"

यह कहकर उन्हें फिर प्रणाम करके झटपट वहाँ से चली आई। वह पीछे से कहने लगीं,—"छोटी रानी सुन तो सही, तूने पहले से क्यों नहीं बताया कि तेरी आज जन्म-तिथि है ? आज दोपहर को मेरे पास तेरा निमन्त्रण रहा। देख, भूल न जाना।"

भगवान्, कुछ ऐसा करो कि आज वास्तव में मेरी जन्म-तिथि हो जाय। क्या एकदम मेरी काया-पलट नहीं हो सकती ? हे प्रभू, मेरा सब कलङ्क धोकर एक बार फिर मेरी परीक्षा करो !

बाहर बैठक में आते ही देखा कि सन्दीप उपस्थित है। मेरा मन ग्लानि और घृणा से भर गया। आज प्रातःकाल के उजाले में उसका जो मुख मैंने देखा उसमें प्रतिभा का जादू जरा भी नहीं था। मैं एकदम बोल उठी,—"आप यहाँ से चले जाइये।"

सन्दीप ने हँसकर कहा,—"इस बार अमूल्य भी नहीं है। अब तो विशेष बातों की मेरी ही बारी है।"

मेरे कैसे खोटे भाग्य हैं। जो अधिकार मैंने आप दिय उसे आज कैसे रद्द कर सकती हूँ ? मैंने कहा,—"मैं इस समय अकेली रहना चाहती हूँ।"

"रानी, दूसरे आदमी के रहने से एकान्त में विघ्न नहीं पड़ता। मुझे तुम साधारण भीड़-भाड़ का आदमी न समझो—मैं सन्दीप हूँ, लाख आदमियों के बीच में भी मैं अकेला रह सकता हूं।"

"आप फिर किसी समय आइयेगा। आज मैं........।"

"अमूल्य की बाट देख रही हो ?"

"मैं विरक्त होकर जैसे ही कमरे से बाहर जाने लगी सन्दीप ने अपनी शाल में से गहने का बक्स निकाल कर पत्थर की मेज पर रख दिया।

मैं चौंक पड़ी और उससे पूछने लगी,—"तो क्या अमूल्य गया नही ?"

"कहाँ नहीं गया ?"

,,कलकत्ते।"

"सन्दीप ने जरा हँसकर कहा,--"नहीं।"

मैं बच गई ! मेरा आशीर्वाद पूरा हो गया। मैंने चोरी की है। विधाता मुझ को ही दण्ड दे। अमूल्यको आँच न आने पाये।

सन्दीप ने मेरे मुख का भाव देखकर घृणा के साथ कहा,—"ऐसा आनन्द हुआ, रानी ? गहने का बक्स ऐसा बहुमूल्य है ? फिर तुमने क्यों इस गहने को देवी की पूजा में देना चाहा था ? नहीं, तुम तो दे चुकी हो, अब दी हुई चीज देवता के हाथ से छीन लेना चाहती हो ?"

अहंकार मरते-मरते पीछा नहीं छोड़ता। जी में आया दिखा दूँ कि मेरी दृष्टि में इस गहने का मूल्य एक कौड़ी के बराबर भी नहीं है। मैंने कहा,—"यदि आपको इस गहने का लोभ है तो ले

जाइये।"

सन्दीपने कहा,—"आज देशभरमें जहाँ जितना धन है, मुझे उन सबका लोभ है। लोभसे बड़ी वृत्ति और कौन-सी है? संसारमें जो इन्द्र है उनका ऐरावत ही लोभ है। अच्छा, तो यह गहना मेरा है?"

यह कहकर सन्दीपने बक्स उठाकर फिर शालमें छिपा लिया। इसी समय अमूल्य भी आ गया। उसकी आँखें चौंधिया रही थीं, मुँह सूख रहा था। बाल बिखरे हुए थे—एक ही दिनमें उसकी तरुण अवस्थाका लावण्य झुलस गया था। उसे देखते ही मेरे हृदय पर चोट-सी लगी।

अमूल्यने मेरी ओर न देखकर एकदम सन्दीपसे पूछा,—"आपने मेरे ट्रङ्कसे गहनेका बक्स लिया है?"

"तुम्हारा है गहनेका बक्स?"

"नहीं, किन्तु ट्रङ्क तो मेरा है।"

सन्दीप खिलखिला कर हँस पड़ा और अमूल्यसे कहने लगा,—"ट्रङ्कके विषयमें मेरे-तुम्हारेका भेद-विचार करना खूब जानते हो। जान पड़ता है, तुम अवश्य धर्म्म-प्रचारक होकर मरोगे।"

अमूल्य कुर्सी पर बैठ गया। दुःख और चिन्ताके मारे उसका बुरा हाल था। मैंने उसके पास जाकर उसके सिर पर हाथ रखकर पूछा,—"अमूल्य, क्या बात है?"

वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और कहने लगा,—"जीजी, यह गहनेका बक्स मैं अपने हाथसे लेकर तुम्हें देना चाहता था।

सन्दीपबाबूको भी। यह बात मालूम थी। इसीलिए उन्होंने झटपट............।"

मैंने कहा,—"मैं उस गहनेको लेकर क्या करूँगी? उसे जाने दो उससे कुछ हर्ज नहीं है।"

अमूल्य विस्मित होकर बोला,—"जाने कहाँ दूँ?"

सन्दीपने कहा,—"यह गहना मेरा है। यह रानीने मुझे उपहार दिया है।"

अमूल्य उत्तेजित होकर बोला,—"नहीं-नहीं, कभी नहीं। जीजी, यह मैंने लाकर तुम्हें दे दिया है। यह तुम किसीको नहीं दे सकतीं।"

मैंने कहा,—"भैया, तुम्हारा दान मुझे सदा स्मरण रहेगा; किन्तु गहनेका जिसे लोभ है उसे लेने दो।"

अमूल्य हिंस्र पशुके समान सन्दीपकी ओर देख कर कहने लगा,—"देखिये सन्दीपबाबू, आप जानते हैं कि मैं फाँसीसे भी नहीं डरता। यह गहनेका बक्स यदि आपने लिया............।"

सन्दीपने विद्रूत भावसे हँसकर कहा,—"अमूल्य, तुम्हें भी अब तक मालूम हो गया होगा कि मैं तम्हारी धमकीसे नहीं डरता। मक्खी रानी, आज मैं यह गहना लेनेके लिये नहीं आया—तुम्हें देनेके लिये ही आया था, पर मेरी चीज यदि तुम अमूल्यके हाथ से लेतीं तो बड़ा अन्याय होता। इसी अन्यायको रोकने के लिये मैंने बक्स पर पहिले अपना दावा स्थिर कर लिया। अब मैं यह अपनी ओरसे तुम्हें दान देता हूँ—यह लो। अब तुम इस लड़के के साथ अपना समझौता कर लो। मैं जाता हूँ।

कुछ दिन से तुम दोनों में विशेष बातें चल रही हैं, मेरा उनमें कोई भाग नहीं है, यदि ऐसी-वैसी कोई बात हो गई तो मुझे दोष न देना। अमूल्य, तुम्हारा ट्रङ्क, किताबें इत्यादि जो चीजें मेरे कमरेमें थीं मैंने सब तुम्हारे यहाँ भिजवा दी हैं। अब मेरे कमरेमें अपनी कोई चीज न रखना।"

यह कहकर सन्दीप झटपट बाहर चला गया।

मैंने कहा,—"अमूल्य जबसे मैंने तुम्हें गहना बेचने भेजा था, मुझे जरा भी शान्ति नहीं मिली।"

क्यों जीजी ?

"मुझे डर था कि कहीं तुम यह गहनेका बक्स लेकर विपत्ति में न पड़ जाओ। तुम्हें कोई चोर समझकर तुम पर सन्देह न कर बैठे। मुझे अब वह छः हजार नहीं चाहिये। अब तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी—तुम अभी घर चले जाओ—अपनी माताके पास चले जाओ।"

अमूल्यने अपनी चादरमें से एक पोटली निकालकर कहा,—"जीजी, यह छः हजार रुपये हैं।"

मैंने पूछा;—"यह तुम कहाँसे ले आये ?"

इसका कुछ उत्तर न देकर उसने कहा,—"गिन्नियोंके लिये मैंने बहुत चेष्टा की, पर कहीं न मिलीं, इसीलिये नोट लाया हूँ।

"अमूल्य तुम्हें प्राणोंकी सौगन्ध, बताओ यह रुपया कहाँसे लाये ?"

"यह मैं आपको नहीं बताऊँगा।"

"मेरी आँखोंके सामने अँधेरा-छा गया।" अमूल्यसे कहा,—

"यह तुमने क्या किया, अमूल्य ? यह रुपया कहाँ............?"

अमूल्य बोल उठा,—"मैं जानता हूँ तुम कहोगी यह रुपया तू अन्याय करके लाया है। अच्छा यही सही, पर जितना बड़ा अन्याय होता है उसका उतना ही मूल्य भी होता है। वह मूल्य मैं दे चुका हूँ अब यह रुपये मेरे हैं।"

इस रुपयेके विषयमें मुझे कुछ और अधिक सुननेकी इच्छा नहीं हुई। नस-नस संकुचित होकर मेरे शरीरको जकड़ने लगी। मैंने कहा,—"ले जाओ अमूल्य यह रुपया, जहाँसे लाये हो इसी-दम वहीं दे आओ।"

"यह तो बड़ा कठिन काम है।"

"नहीं, कठिन नहीं है। तुम कैसे खोटे मुहूर्तमें मेरे पास आये थे। सन्दीप भी तुम्हारा इतना अनिष्ट नहीं कर सकता जितना मैंने किया !"

सन्दीप का नाम सुनते ही उसे कोड़ा-सा लगा। वह बोला,—"सन्दीप—तुम्हारे पास आकर ही तो मैंने उसे पहचाना है। तुम्हें खबर है जीजी, तुम्हारे पाससे जो उसने उस दिन छः हजारकी गिन्नियाँ ली थीं उनमेंसे उसने एक पैसा भी खर्च नहीं किया। यहाँसे जानेके बाद कमरे का द्वार बन्द करके सारी गिन्नियोंका मेज़ पर ढेर लगाकर उनकी ओर मुग्ध होकर देख रहा था। मुझसे कहा, यह रुपया नहीं है, यह ऐश्वर्य्य-पारिजात का फल है, यह अलकापुरीकी बंशी का सुर है, वहाँसे नीचे आते-आते कड़ा हो गया है, इसके नोट बाँधनेसे बड़ा अनर्थ होगा, क्योंकि इसे सुन्दरीके कण्ठका हार बननेकी

कामना है। अरे अमूल्य ! तू इसकी ओर स्थूल दृष्टि से मत देख, यह लक्ष्मी की हँसी है, इन्द्राणी का लावण्य है—नहीं-नहीं, उस नीरस नायब के हाथ में पड़ने के लिए उसकी सृष्टि नहीं हुई। देखो अमूल्य नायब बिल्कुल झूठ बोलता है, पुलिस को इस नायब की चोरी का कुछ पता नहीं है, वह इस बहाने से अपना पेट भरना चाहता है। नायब के पास से वे तीनों चिट्ठियाँ वसूल करनी चाहिए। मैंने पूछा किस तरह ? सन्दीप ने कहा, उसे डर दिखाकर। मैंने कहा, अच्छी बात है, पर ये गिन्नियाँ फेर देनीं पड़ेंगी ! सन्दीप ने कहा, अच्छा यों ही सही। मैंने किस प्रकार नायब को डरा धमका कर वे चिट्ठियाँ वसूल कीं और जला डालीं, यह बहुत बड़ी कहानी है। उसी रात को मैंने सन्दीप के पास आकर कहा, अब कुछ डर नहीं है, गिन्नियाँ मुझे दे दीजिये, कल सबेरे ही मैं छोटी रानी को दे दूंगा। सन्दीप ने कहा, वह कैसा मोह तुमने अपने पीछे लगा लिया है, अब तो जान पड़ता है बहिन का आँचल देश को ढक लेगा। बोलो बन्देमातरम्—सब मोह जाता रहेगा। तुम तो जानती हो जीजी, सन्दीप कैसा मन्त्र जानता है ! रुपया उसी के पास रहा। मैंने रात भर अँधेरे में तालाब के घाट पर बैठ कर बन्देमातरम् जपा। कल तुमसे गहना लेने के बाद फिर सन्दीप के पास गया। मैं समझ गया उसे मेरे ऊपर बड़ा क्रोध आ रहा था। उसने अपना क्रोध प्रकट न होने दिया, और मुझसे कहा, देखो तुम्हें यहाँ किसी बक्स में वह रुपया मिले तो ले जाओ। यह कहकर उसने चाभियों का गुच्छा मेरे ऊपर

फेंक दिया। रुपया कहीं न मिला। मैंने पूछा, बताइये आपने कहाँ रख दिया है! सन्दीप ने कहा,—पहले अपना मोह छूट जाने दो तब बतलाऊँगा, अभी नहीं। जब मैंने देख लिया कि वह किसी तरह नहीं मानता तो मुझे और उपाय करना पड़ा। इसके बाद फिर छः हजार के नोट उसे दिखाकर गिन्नियाँ लेने की बहुत चेष्टा की, पर वह गिन्नियाँ लाने के बहाने से मुझे वहीं बैठा छोड़ दूसरे कमरे में चला गया और वहाँ मेरे ट्रङ्क का ताला तोड़ कर गहना निकाल कर तुम्हारे पास आ गया—वह बक्स तुम्हारे पास मुझे नहीं लाने दिया और फिर कहता है कि यह गहना मैंने दान दिया है! मैं क्या बताऊँ उसने मुझसे क्या छीन लिया? मैं उसे कभी क्षमा न कर सकूँगा। जीजी, उसका जादू अब बिल्कुल उतर गया। तुम्हीं ने उतार दिया।

मैंने कहा,—"प्यारे भाई, मेरा जीवन सार्थक हो गया। पर अमूल्य, अभी बहुत कुछ करना है। केवल माया-जाल कट जाने से कुछ नहीं होता, जो कालिमा लग गई है उसे अभी धोना है। देर मत करो अमूल्य, अभी जाओ, यह रुपया जहाँ से लाये हो वहीं रख आओ। क्या नहीं कर सकोगे?

"तुम्हारे आशीर्वाद से सब कुछ कर सकूँगा।"

"इससे तुम्हारा ही प्रायश्चित नहीं होगा, मेरा भी होगा। मैं स्त्री हूँ, बाहर का रास्ता मेरे लिए बन्द है, नहीं तो मैं तुम्हें न भेजती, आप ही जाती। मेरे लिए यही सबसे बड़ा दण्ड है कि मेरा पाप तुम्हें सँभालना पड़ रहा है!"

"ऐसी बात मत कहो जीजी! मैंने जो रास्ता लिया था वह

तुम्हारा रास्ता नहीं है। वह रास्ता दुर्गम होने के कारण ही मुझे अपनी ओर खींच रहा था। इस बार तुमने मुझे अपने रास्ते पर चलाया—यह रास्ता चाहे हजार गुना दुर्गम हो, पर तुम्हारे चरणों के प्रताप से मैं इसे जीत लूँगा। मुझे कुछ भी शंका नहीं है। अच्छा तो यह रुपया जहाँ से लाया हूँ वहीं दे आऊँ यही तुम्हारी आज्ञा है?"

"मेरी आज्ञा नहीं है, ईश्वर की आज्ञा है।"

"यह मैं नहीं जानता! ईश्वर की आज्ञा तुम्हारे मुख से निकली है, मेरे लिए यही काफी है। पर दीदी, तुमने मुझे निमन्त्रण दिया था। वह जब पूरा हो जायगा तब जाऊँगा। तुम्हें प्रसाद देना पड़ेगा। इसके बाद यदि हो सका तो सन्ध्या से पहले ही यह काम कर आऊँगा।"

हँसना चाहती थी; पर आँखों से आँसू निकल पड़े। मैंने कह दिया,—"अच्छा।

अमूल्य के जाते ही मेरी छाती फटने लगी। कैसे माँ के लाड़ले को मैंने मँझधार में डुबो दिया। भगवान्, मेरे पापों का प्रायश्चित ऐसा विकट रूप क्यों धारण कर रहा है? मैं अकेली क्या कम हू? और कितनों को यह भार उठाना पड़ेगा? हाय इस बेचारे बालक को क्यों मारते हो?"

मैंने उसे फिर बुलाया,—"अमूल्य!" मेरी आवाज ऐसी धीमी पड़ गई थी कि उसने सुना ही नहीं, द्वार के पास जाकर फिर बुलाया,—"अमूल्य!" पर वह दूर निकल गया था।

"बैरा, बैरा!"

"क्यों रानी माँ?"

"जरा जल्दी से अमूल्य बाबू को बुला ला।"

जान पड़ता है बैरा अमूल्य का नाम नहीं जानता, इसीलिए थोड़ी देर बाद सन्दीप को बुला लाया। आते ही सन्दीप ने कहा,—"जब मुझे विदा किया था तभी मैं जानता था फिर बुलाओगी। ज्वार और भाटा दोनों एक ही चन्द्रमा से होते हैं। मुझे तुम्हारे फिर बुलाने का ऐसा विश्वास था कि मैं द्वार के पास बैठा बाट देख रहा था। जैसे ही बैरा को देखा उसके कुछ कहने से पहले ही मैं बोल उठा, अच्छा, अच्छा, आता हूँ, अभी आता हूँ! वह विस्मित होकर मेरा मुँह ताकने लगा। सोचता होगा बड़ा मन्त्र-सिद्ध आदमी है। मक्खी रानी, संसार में सब से बड़ी लड़ाई इसी मन्त्र की लड़ाई है। सम्मोहन की सम्मोहनके साथ टक्कर होती है। इसका बाण शब्द-भेदी भी होता है और निःशब्द भेदी भी। इस लड़ाई में इतने दिन बाद आकर मेरी जोड़ मिली है। तुम्हारे तूण में अनेक बाण हैं। सारी पृथ्वी पर केवल तुम ही सन्दीप को अपनी इच्छा के अनुसार चला सकीं और अपनी इच्छा के बल से ही खींचकर यहाँ ले आईं। शिकार तो आ ही फँसा। अब बताओ इसका क्या करोगी? एकदम गर्दन मारोगी या अपने पिंजड़े में बन्द करके रखोगी? किन्तु रखने का निश्चय जरा सोच कर करना, क्योंकि इस जीव का बध करना जैसा कठिन है, वैसा ही बन्द करना भी। अतएव जो दिव्य अस्त्र तुम्हारें हाथ में है उसकी परीक्षा करने में देर मत करो।"

सन्दीपके मनमें पराजयका खटका पैदा हो गया था, इसीलिए वह एक साँसमें इतनी सारी अंटसंट बातें बक गया। मैं समझती हूँ वह जानता था कि मैंने अमूल्यको बुलाया है—बैराने उसीका नाम पुकारा होगा, पर सन्दीप उसे मूर्ख बना कर आप आ उपस्थित हुआ। मुझे यह बतानेका भी समय नहीं दिया कि मैंने आपको नहीं, अमूल्यको बुलाया था, पर अब डींग मारनेसे क्या होता है, दुर्बलता तो खुल ही गई, अब मैं अपनी जीती हुई जमीनमेंसे इञ्चभर जगह भी न छोड़ूँगी।

मैंने कहा,—"सन्दीप बाबू आप एकदम बे सोचे-विचारे इतनी सारी बातें कैसे कह जाते हैं? जान पड़ता है पहलेसे तैयारी करके आते हैं।"

सन्दीपका मुँह लाल हो गया। मैं बोली,—मैंने सुना है कथा बाँचनेवालोंकी पोथियोंमें नाना प्रकारके बड़े-बड़े वृत्तान्त लिखे रहते हैं, जब जिस जगह जैसा आवश्यक समझा, पढ़ दिया। क्या आपके पास ऐसी ही कोई पोथी है?"

सन्दीपने अपने होंठ चबाते हुए उत्तर दिया,—"विधाता की कृपासे तुम्हारे तो हाव-भाव और छल-कपटका अन्त नहीं है। उसपर भी दरजी और सुनारकी दूकानोंसे सहायता ली जाती है। क्या विधाताने हम पुरुषों को ही ऐसा निःशस्त्र बनाया है कि........।"

मैंने कहा,—"सन्दीप बाबू, पोथी देख आइये—यह बात कुछ बेजोड़-सी हो गई। मैं देखती हूँ कभी-कभी आप कुछका कुछ कह बैठते हैं—पोथी को कंठस्थ करनेमें यही बड़ा दोष है।"

सन्दीपसे और न सहा गया एकदम गरजकर बोला,—“तुम ! तुम मेरा अपमान करोगी ! तुम्हारी कौन-सी चीज ऐसी है जो आज मेरे बसमें नहीं है ? तुम्हारा तो........।”

उसके मुँहसे और कुछ बात न निकल सकी। सन्दीपका सारा आधार मन्त्र पर है । जब मन्त्र नहीं चलता तो उसे और कोई उपाय नहीं सूझता,—राजासे एकदम रङ्क बन जाता है। दुर्बल ! दुर्बल वह जितना ही क्रुद्ध होकर कड़ी-कड़ी बातें कहता है उतना ही मेरा मन आनन्दसे भर जाता है । मुझे बाँधनेके लिये जो फन्दा उसके पास था जल चुका—अब मैं स्वतन्त्र हूँ। अब जितना मन चाहे मेरा अपमान करो, यही तुम्हारे लिए सत्य है, मेरी स्तुति मत करो; वही तुम्हारे लिए मिथ्या होगी।

इसी समय मेरे स्वामी अकस्मात कमरेमें चले आये। उस दिन सन्दीपने जिस प्रकार अपने आपको एकदम सम्हाला था, आज न सम्हाल सका।

हम दोनोंको स्तब्ध बैठे देख मेरे स्वामी कुछ हिचकिचा कर एक कुर्सी पर बैठ गये। वह सन्दीपसे बोले,—“सन्दीप, मैं तुम्हींको ढूँढ़ रहा था, मुझे खबर मिली कि तुम यहाँ हो।”

सन्दीपने कहा,—“हाँ, मक्खीरानीने मुझे सबेरे ही बुला भेजा था। मैं तो छत्तेकी दास मक्खी हूँ, आज्ञा मिलते ही सब काम छोड़कर आना पड़ा।”

स्वामीने कहा,—“मैं कलकत्ते जाऊँगा। तुम्हें भी साथ चलना पड़ेगा।”

सन्दीपने कहा,—"मुझे क्यों चलना पड़ेगा ? मैं क्या तुम्हारा नौकर हूँ ?"

"अच्छा, तुम ही कलकत्ते चलो, नौकर मैं ही रहा।"

"मुझे कलकत्तेमें कुछ काम नहीं है।"

"इसीलिए तो तुम्हें कलकत्ते जाना चाहिये यहाँ तुम्हारे लिए बहुत ही ज्यादा काम है।"

"मैं तो जाऊँगा नहीं।"

"तो फिर तुम्हें ले जाना पड़ेगा।"

"जबरदस्ती ?"

"हाँ जबरदस्ती।"

"बहुत अच्छा,—जाऊँगा। पर जगतमें कलकत्ता और तुम्हारा इलाका केवल यही दो स्थान तो नहीं है। पृथ्वीपर तो और भी बहुतसी जगह हैं।"

"पर तुम्हारा ढङ्ग देखकर तो जान पड़ता है कि मेरे इलाके को छोड़कर दुनियाँमें और कोई जगह नहीं है।"

यह सुनते ही सन्दीप उठ खड़ा हुआ और कहने लगा'--"मनुष्यकी ऐसी भी एक अवस्था होती है, जिसमें समस्त जगत् इतनी सी जगहमें आकर इकट्ठा हो जाता है। तुम्हारी इसी बैठकमें सारे विश्वको प्रत्यक्षरूपसे देखा है—इसीलिए यहाँसे हटना नहीं चाहता। मक्खीरानी, मेरी यह बात लोग न समझ सकेंगे—सम्भव है तुम भी न समझ सको। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम्हारी वन्दना ही हृदयमें लेकर यहाँसे जा रहा हूँ। जबसे मैंने तुम्हें देखा है मेरा मन्त्र बिल्कुल बदल गया। अब

वन्देमातरम् नहीं रहा—अब वन्देप्रियम्, वन्देमोहिनीम् है। माता हमारी रक्षा करती है—प्रिया हमारा विनाश करती है—यही विनाश कैसा मधुर है ! उसी मृत्यु-नृत्यके घुंघुरुओंकी झंकारसे तुमने मेरा हृदय भर दिया है। इस कोमला, सुजला, सुफला, मलयजशीतला भारतभूमिका रूप तुमने अपने भक्तकी दृष्टिमें एकदम बदल दिया। तुम दया-मायासे रहित हो, तुम विषपात्र लेकर मेरे सामने आई हो—मैं या तो उसी विषको पीकर मरूँगा या मृत्युञ्जय हो जाऊँगा ! माताका आज दिन नहीं है—प्रिया, प्रिया, प्रिया, देवता, स्वर्ग, धर्म, सत्य तुमने सब चीजें तुच्छ कर दीं, पृथ्वीके समस्त बन्धन आज छाया-मात्र हो गये, नियम-संयमका समस्त बन्धन आज छिन्न हो गया। प्रिया, प्रिया, प्रिया, जिस देशमें तुम अपने दोनों पाँव जमाये खड़ी हो, मैं उसे छोड़कर सारी पृथ्वीमें आग लगाकर उसकी छाईके ऊपर ताण्डव-नृत्य नाच सकता हूँ ! यह सब भले-मानस हैं, यह अत्यन्त सुशील है—यह सबका भला करना चाहते हैं—मानों सभीमें सत्य है। कभी नहीं, ऐसा सत्य जगत में और कहीं नहीं है, यही मेरा एकमात्र सत्य है। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ—तुम्हारे प्रति जो निष्ठा मेरे मनमें है उसीने मुझे निष्ठुर बना दिया है, तुम्हारे प्रति जो भक्ति मैं रखता हूँ, उसीने मेरे हृदय में प्रलयकी आग भड़का दी है,—मैं सुशील नहीं हूँ, मैं धार्मिक नहीं हूँ, मैं संसार में किसी चीज़को नहीं मानता, मैंने जिसे पूर्ण रूपसे प्रत्यक्ष करके देखा है, मैं केवल उसी को मानता हूँ !

आश्चर्य! आश्चर्य! इससे कुछ ही देर पहिले मैंने सन्दीप की ओर घृणा से देखा था। मैं जिसे राख समझी थी उसमें फिर आग भड़क उठी। यह बिल्कुल अशुद्ध और खरी आग है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है। विधाताने इस विचित्र ढंगसे क्यों मनुष्य की सृष्टि की है? क्या केवल अपने अलौकिक इन्द्रजालका परिचय लेनेके लिये? आध घण्टा पहले ही मैंने मनही मन सोचा था कि जिस मनुष्यको मैं एक दिन राजा समझी थी, वह तो केवल स्वाँगका राजा निकला; परन्तु नहीं ऐसा नहीं है—स्वांगके कपड़ोंमें कभी-कभी वास्तविक राजा छिप बैठता है। उसके मनमें बहुत-सा लोभ, बहुत-सी स्थूलता, बहुत-सी धोखेबाज़ी अवश्य भरी है, पर तो भी अन्तकी किसीको ख़बर नहीं है। यही स्वीकार करना पड़ेगा कि हम अपनेको भी नहीं जानते। मनुष्य बड़ा विचित्र है—उसमें कैसा प्रचंड रहस्य भरा है, यह वही रुद्र देवता जानते हैं—हाय, मेरा हृदय फट जाता है। प्रलय? प्रलयके ही देवता शिव हैं, वही आनन्दमय हैं, वही संकट-मोचन करेंगे।

कुछ दिनोंसे मैं बार बार सोचती हूँ कि मेरे दो बुद्धि हैं। मेरी एक बुद्धि समझ लेती है कि सन्दीपका यह प्रलय रूप बड़ा भयंकर है। पर दूसरी बुद्धि कहती है—नहीं यह बड़ा मधुर हैं। जहाज़ जब डूबता है तो अपने चारों ओर तैरनेवालोंको भी अपने साथ खींच लेता है सन्दीप मानों उसी भयंकर मृत्युका रूप है मनमें भय या शंका पैदा होनेसे पहले ही उसका प्रचंड आकर्षण, समस्त प्रकाश, समस्त कल्याण, समस्त मुक्ति, समस्त

भावना और जीवन में जो कुछ सञ्चित किया है, उन सबसे दूर खींचकर क्षणभरमें एक निविड़ सर्वनाशमें लुप्त कर देना चाहता है। वह मानों किसी महामारीका दूत बनकर आया है। और शिव मन्त्र पढ़ता हुआ अपने रास्ते पर जा रहा है, देशके सब बालक और नवयुवक उसकी ओर खिंचे चले जा रहे हैं। भारतवर्षके हृदयपद्म पर जिस माताका स्थान है, उसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं—यह लोग उसके अमृत भण्डारका द्वार तोड़कर अपनी शराबका घड़ा लिये जा पहुँचे हैं और चौकड़ी जमाये बैठे हैं—ये सारा अमृत धूलमें डालकर अमृत-पात्र को चूर-चूर कर देना चाहते हैं। यह सब मैं जानती हूँ पर मोह से बस नहीं चलता! सत्यकी कठोर तपस्याकी परीक्षा करने के लिये ही सत्यदेवने यह उपाय सोचा है—उन्मत्तता स्वर्गके साज में सजकर तपस्वियोंके सामने आकर नाच-नाच कर उनसे कहती है, तुम मूढ़ हो सिद्धि तपस्यामें नहीं हैं, तपस्याका पथ अदृश्य और समय असीम होता है—इसीलिये वज्रधारीने मुझे भेजा है, मैं तुमसे विवाह करूँगी, मैं सुन्दरी हूँ, मैं मत्तता हूँ, क्षण-भरमें समस्त सिद्धि चाहो तो मेरे आलिंगनमें ही मिल सकती है।

इतनी देर चुप रहकर सन्दीपने फिर मुझसे कहा,—"देवी, अब तुमसे अलग होनेका समय आ गया। अच्छा ही हुआ। तुम्हारे पास रहकर मुझे जो काम करना था वह समाप्त हो चुका। अब भी यदि ठहरा रहूँ तो किया कराया सब नष्ट हो जायगा। पृथ्वी पर जो सबसे उत्तम है उसे लोभमें पड़कर

सस्ता और साधारण बना डालने से सर्वनाश का सामना होता है—जिस अनन्त की सीमता का अनुभव क्षणभर में हो सकता है, उस अनन्त को समय और काल में व्याप्त करना उसकी सीमा निर्दिष्ट करना है,। मैंने उसी अनन्त को नष्ट करने की चेष्टा की थी, पर तुरन्त ही हमारा वज्र उद्यत हो गया, तुमने अपनी पूजा की रक्षा की और अपने पुजारी को भी बचा लिया। आज तुमसे विदा होते हुए मेरी भक्ति और बन्दना और भी प्रबल हो उठी। देवी, मैंने भी आज तुम्हें स्वतन्त्र कर दिया। मेरा मिट्टी का कच्चा मन्दिर तुम्हारे योग्य नहीं था—यह मन्दिर एक न एक दिन अवश्य गिर जाता—आज तुम्हारी मूर्ति को बड़े मन्दिरों में पूजने को जा रहा हूँ। तुमसे दूर ही रहकर तुम्हें वास्तविक रूप में देखूँगा, यहाँ रहकर तुम्हारे हाथों मुझे आदर प्रेम मिला है, वहाँ जाकर तुमसे वरदान लूँगा!"

मेज पर मेरा गहने का बक्स रक्खा था। मैंने उसे उठाकर सन्दीप को देते हुए कहा, मैंने यह गहना तुम्हारे द्वारा जिसे अर्पण किया था, इसे उसी के चरणों में पहुँचा देना।"

मेरे स्वामी कुछ न बोले। सन्दीप बाहर चला गया। अमूल्य के लिए अपने हाथ से जलपान तैयार करने बैठी थी। उसी समय मँझली रानी आकर बोलीं, क्योंरी छोटी रानी अपनी जन्म तिथिपर अपने आप ही खाने की तैयारी हो रही है?

मैं बोली,—"क्या अपने सिवा और किसी को खिलाना नहीं है?"

मँझली रानी ने कहा,—"आज तो तेरा खिलाने का नहीं मेरा खिलाने का दिन है। मैं उसकी तैयारी कर रही थी। इतने ही में ऐसी खबर सुनी कि धक से रह गई—हमारे खजाने से लुटेरे छः हजार रुपया लूटकर ले गये। लोग कहते हैं कि अबकी बार वे हमारा घर लूटने आवेंगे!"

यह खबर सुनकर मेरा मन जरा हलका हुआ। फिर तो यह हमारा ही रुपया था। मैं अभी अमूल्य को बुलाकर वह छः हजार अपने सामने ही अपने स्वामी को दिलवा दूंगी, इसके बाद मुझे जो कहना होगा उनसे कह लूँगी।

मँझली रानी ने मेरे चेहरे का भाव देखकर कहा,—"तूने तो हद कर दी! तेरे मन में तो रत्ती भर डर नहीं मालूम पड़ता।"

मैंने कहा,—'मुझे तो विश्वास नहीं होता कि वे लोग हमारा घर लूटने आवेंगे।"

"विश्वास नहीं होता। यही विश्वास किसे होता था कि वे खजाना लूट ले जायेंगे!"

मैंने कुछ उत्तर न दिया और सिर नीचा कर फिर जलपान बनाने में लग गई। वह कुछ देर मेरे मुख की ओर देखकर बोलीं,—"मैं जाकर अभी निखिलेश को बुलाती हूँ। वह छः हजार रुपया अभी कलकत्ते भेज देना चाहिये; और देर करना ठीक नहीं।"

यह कहकर तो चली गई, इधर मैं सब चीजें फेंक-फाँक झट-पट उस लोहे के सन्दूकवाली कोठरी में जा पहुँची और भीतर से

दरवाजा बन्द करके बैठ गई। मेरे स्वामी बेपरवाह हैं कि उनकी चाभी अब भी वहीं कोठरी में एक कुरते की जेब में पड़ी थी। गुच्छे में से मैंने सन्दूक की चाभी निकाल ली और अपनी जाकेट की जेब में छिपाकर रख ली।

इसी समय बाहर से किसी ने धक्का दिया। मैंने कहा,—"मैं कपड़े बदल रही हूँ।"

यह सुनकर मँझली रानी कहने लगीं,—"अभी तो गूँझे बना रही थी, अभी यहाँ आकर सिंगार करने लगी! जान पड़ता है आज फिर बन्देमातरम् की सभा जुटेगी। अरी देवी चौधरानी, क्या लूट का माल मंगवाया जा रहा है?"

न जाने क्या सोचकर मैं उस लोहे के सन्दूक को फिर खोल बैठी। मैंने यही सोचा होगा, यदि यह सब कुछ स्वप्न हो तो कैसा अच्छा हो—सम्भव है वह अशरफियों की गुल्लियाँ अब भी उसी तरह रक्खी हों! किन्तु हाय, विश्वास-घातक के नष्ट हुए विश्वास के समान सब शून्य पड़ा था!

झूठ-मूठ कपड़े बदलने ही पड़े। कुछ जरुरत नहीं थी, किन्तु फिर भी बाल सँवारने पड़े। मँझली रानी ने मुझे देखते ही कहा,—"यह आज कैसा सिंगार हुआ है?"

मैंने कहा,—"जन्म तिथि का।"

मँझली रानी ने हँसकर कहा,—"जरा सा बहाना मिलते ही ऐसा सिंगार! मैंने बहुत देखी है, पर तुझसी वहमा नहीं देखी।'

अमूल्य को बुलवाने के लिए मैं बैरा को ढूँढ़ रही थी कि इतने ही में उसने पेंसिलसे लिखी हुई एक चिट्ठी लाकर मेरे हाथ में दी।

उसमें अमूल्य ने लिखा था,—"जीजी, तुमने खाने के लिए बुलाया था, किन्तु मुझसे और नहीं ठहरा जाता। मैं पहिले तुम्हारी आज्ञा पूरी कर आऊँ, फिर आकर तुम्हारा प्रसाद लूँगा। हो सका तो सन्ध्या ही तक लौट आऊँगा।"

अमूल्य कहाँ और किसके हाथ में जाकर रुपया देगा? अब की फिर न-जाने किस विपत्ति का सामना हो। मैंने उसी तरीके सामान छोड़ तो दिया, पर निशाना ठीक नहीं लगा और अब उसे किसी तरह उलटा नहीं फेर सकती।

मुझे अब भी स्वीकार कर लेना चाहिये था कि इस गड़बड़ी की जड़मूल मैं ही हूँ, किन्तु स्त्रियों का आधार संसार के विश्वास के ऊपर होता है। वही उनका जगत् है। उस विश्वास के साथ हमने चाल चली है, यह जानते हुए स्त्रियों को संसार में रहना बहुत कठिन है। जो चीज अपने आप तोड़ी है, उस पर खड़ा होना बड़ा कठिन है। अपराध करना कठिन है, पर उस अपराध का संशोधन करना स्त्रियों के लिए जितना कठिन है, उतना और किसी के लिए नहीं।

कुछ दिन से स्वामी के साथ साधारण वार्तालाप की प्रणाली बन्द हो गई है। इसीलिए मैं बहुत सोचने पर भी निश्चय न कर सकी कि इतनी बड़ी बात अकस्मात् उनसे कब और किस प्रकार कहना उचित होगा। आज वह भोजन करने बहुत देर में आये हैं—प्रायः दो बजे होंगे। वह न जाने किस ध्यान में निमग्न थे, उनसे कुछ भी न खाया गया। मैं उनसे अनुरोध करके खाने के लिए कहती, यह अधिकार मैं आप खो बैठी थी। मुँह फेर कर

मैंने आँचलसे अपने आँसू पोंछ लिए।

एक बार मैंने सोचा कि संकोच छोड़कर कहूँ कि जरा कमरेमें जाकर लेट रहो, आज तुम बड़े थके हुए दिखाई पड़ते हो। पर जैसे ही कहनेको हुई कि बैराने आकर खबर दी कि दारोगा साहब क़ासिम सरदारको लेकर आये हैं। मेरे स्वामी जल्दीसे उठकर बाहर चले गये।

उनके बाहर जानेके थोड़ी देर बाद मँझली रानी आकर मुझसे बोली,—"जब निखिलेश भोजन करने आया तो तूने मुझे क्यों न बुला भेजा? आज उसे देर होती देख मैं नहाने चली गई, इतने ही में न-जाने कब........?"

"क्यों बात क्या है?"

"सुना है तुम दोनों कल कलकत्ते जा रहे हो। मुझसे भी यहाँ न ठहरा जायगा। बड़ी रानी तो अपनी ठाकुर-पूजा छोड़ कर कहीं जानेवाली नहीं, पर मुझसे इन चोरी-डकैतीके दिनोंमें तुम्हारे इस खाली घरकी रखवाली न होगी, मेरे तो प्राण ही निकल जायँगे। कल ही जाना तो ठीक हुआ है न?"

मैंने कहा,—"हाँ, कल ही।" मैंने मन-ही-मन सोचा—जाने से पहिले ही न-जाने कितना इतिहास तैयार हो जायगा, कुछ ठिकाना ही नहीं है। पीछे फिर चाहे कलकत्ते जाऊँ, चाहे यहाँ रहूँ सब बराबर है। उसके बाद कौन जानता है कि संसार और जीवनका क्या रूप होगा। सब धुंधले स्वप्नके समान दीख पड़ता है।

अब कुछ ही घण्टोंमें मेरे विषयमें जो अदृष्ट था, वह दृष्ट

बन जायगा—क्या इस समयको कोई खींच-खींचकर बढ़ा नहीं सकता ? अच्छा, न सही, तो कल ही तक मुझे धीरे-धीरे सब ठीक-ठाक कर लेना चाहिये—कम-से-कम इस आघातके लिए अपनेको और संसारको तैयार कर लूँ। प्रलयका बीज जब तक धरतीके नीचे रहता है, तब तक इतना समय लेता है कि हम समझ बैठते हैं मानो भयका कोई कारण ही नहीं है, पर धरतीसे ऊपर ज़रा-सा अंकुर निकलते ही वह देखते-देखते ऐसे वेगसे बढ़ने लगता है कि फिर उसे रोकने या दबा देनेका समय ही नहीं मिलता।

कभी-कभी जीमें आता है कि कुछ भी सोच-विचार न करूँ, बेसुध होकर चुपचाप पड़ी रहूँ, जो कुछ होना है हो रहेगा। परसोंसे पहिले कहन-सुनन, हँसी-रोना, प्रश्नोत्तर सब ही कुछ हो चुकेगा।

पर अमूल्यका आत्मोत्सर्गके प्रकाशसे चमकता हुआ वह तरुण मुख मैं कभी न भूलूँगी। उसने तो चुपचाप बैठकर भाग्य की बाट नहीं देखी, वह तो झपटकर विपत्तिमें जा कूदा। मैं अधम स्त्री हूँ, मैं उसे प्रणाम करती हूँ। वह मेरा बालक देवता है, वह मेरे कलंकका बोझ सम्भालने आया है; वह मेरे सिर पर पड़ा वार अपने सिर पर लेकर मुझे बचायेगा, भगवानकी ऐसी भयानक दया मैं कैसे सहूँगी ? मेरे बच्चे, तुम्हें प्रणाम, मेरे भाई तुम्हें प्रणाम,—तुम निर्मल हो, तुम सुन्दर हो, तुम वीर हो, तुम निर्भीक हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ—दूसरे जन्ममें तुम मेरी गोदमें जन्म लो इसी वरदानकी मुझे कामना है। इधर चारों

और तरह-तरह की अफवाहें उड़ रही हैं, पुलिसकी आवा-जाही लगी है, घरके नौकर-चाकर सब घबड़ाये हुए हैं! खेमा दासीने मुझसे आकर कहा,—"रानी माँ, मेरी यह सोनेकी पौंची और बाजूबन्द उठाकर अपने लोहेके सन्दूकमें रख दो।" मैं किससे जाकर कहूँ कि घर की रानीने ही इस दुर्भावनाका जाल बुना है और फिर आप भी उसमें फँस गई है! खेमाका गहना और थाकोंके जोड़े हुए रुपये मुझे भलेमानसोंकी तरह लेने ही पड़े। हमारी ग्वालिन अपनी बनारसी साड़ी और बहुमूल्य सम्पत्ति एक टीनके बक्समें रखकर मुझे दे गई बोली,—"रानी माँ, यह बनारसी साड़ी मुझे तुम्हारे ही ब्याहमें मिली थी।"

कल जब मेरे ही कमरेमें लोहेका सन्दूक खोला जायगा तो मैं ही खेमा, थाको, ग्वालिन—पर रहने दो इस बातकी कल्पना ही क्यों करूँ। बल्कि मुझे तो सोचना चाहिये कि जब कलके बाद एक वर्ष और बीत चुकेगा और फिर माघ महीनेका तीसरा दिन आवेगा तो क्या उस समय भी मेरे सांसारिक सम्बन्धमें जो घाव लगे हैं, वे ऐसे ही बने रहेंगे?

अमूल्यने लिखा है कि मैं आज सन्ध्या तक आ जाऊँगा। इतनी देर मैं कमरेमें अकेली चुपचाप कैसे बैठी रहती। मैं फिर गूँझे तैयार करने गई। जितने तैयार हो चुके हैं वह काफी हैं, किन्तु फिर भी और बना रही हूँ। यह सब खायगा कौन? घरके सब नौकर-चाकरोंको खिलाऊँगी। आज ही रातको खिलाऊँगी। आज रात ही तक मेरे दिनकी सीमा है, कलका

दिन मेरे हाथमें नहीं है।

बराबर गूँझे बना रही हूँ, जरा विश्राम नहीं है। कभी-कभी ऊपर हमारे कमरोंकी ओर कुछ गड़बड़ी होती सुनाई पड़ती है। शायद मेरे स्वामी लोहेका सन्दूक खोलने आये हैं और उन्हें चाभी नहीं मिलती। इस बातपर मँझली रानीने नौकर-चाकरों को बुलाकर गुल मचा रखा है। नहीं, मैं नहीं सुनूँगी, कुछ नहीं सुनूँगी, दरवाजा बन्द किये बैठी रहूँगी। जैसे ही दरवाजा बन्द करने चली देखा थाको दौड़ी हुई आ रही है। उसने हाँफते हुए मुझे पुकारा,—"रानी माँ।" मैं बोल उठी,—"जा जा, मुझे तंग न कर, मुझे इस समय बहुत काम करना है।" थाको बोली,—"मँझली रानीके भतीजे कलकत्तेसे एक कल लाये हैं जो आदमियों की तरह गाना गाती है, इसीलिए मँझली रानीने तुम्हें बुलाया है।"

हँसू या रोऊँ यही सोचती हूँ! ऐसी अवस्थामें भी ग्रामोफोन! उसमें जितनी बार चाभी दी जाती है, वही थियेटरोंका-सा एक सुरका गाना बजने लगता है—वह भेद-भावसे बिलकुल रहित है। यन्त्र जब जीवनकी नकल करता है, तो सदा यही हास्यकर परिणाम होता है।

सन्ध्या हो गई। मैं जानती हूँ कि अमूल्य आते ही मेरे पास खबर भेजेगा। पर तो भी मुझसे रहा नहीं गया। मैंने बैराको बुलाकर कहा,—जा, अमूल्य बाबूको खबर कर दे।" बैराने थोड़ी देर बाद आकर कहा,—"अमूल्य बाबू नहीं हैं।"

बात कुछ भी नहीं थी, पर तो भी मेरे हृदय पर एकदम

चोट-सी लगी। अमूल्य बाबू नहीं हैं। इस बातमें उस सन्ध्याके समय किसीके रोनेका-सा सुर सुनाई पड़ा। अमूल्य नहीं है! वह सूर्यास्तकी सुवर्णमयी रेखाके समान दिखाई पड़ा—और फिर,—और फिर—"वह नहीं है।" सम्भव-असम्भव अनेक दुर्घटनाएँ मेरे मनमें आने लगीं। मैंने ही मृत्युके मुँहमें भेजा है, उसने जो कुछ भय नहीं किया यह उसकी वीरता थी, किन्तु इसके बाद मैं कैसे जीती रहूँगी?

अमूल्यकी कोई भी निशानी मेरे पास नहीं थी—केवल वही एक पिस्तौल थी, वही भय्या-दुइजका उपहार! मैंने सोचा यह अवश्य दैवकी कृपा है। मेरे जीवनमें जो कलंक लग गया है, उसीको धो डालनेका यह उपाय मेरे बालक-वेषी नारायण मेरे हाथमें देकर अदृश्य हो गये हैं। कैसा प्रेम-भरा दान है? कैसा पावन मन्त्र इसके भीतर छिपा है?

बक्ससे पिस्तौल निकालकर मैंने दोनों हाथोंसे अपने माथे पर रक्खी। ठीक उसी समय हमारे पूजा-घरसे आरतीके घण्टेकी आवाज़ सुनाई पड़ी। मैंने भूमिष्ट होकर प्रणाम किया।

रातके समय सबको गूँझे खिलाये गये। मँझली रानीने आकर कहा,—"जो हो, तूने आप ही आप अपनी जन्म-तिथि खूब मना ली। जान पड़ता है हमें किसी चीज को हाथ भी न लगाने देगी।" यह कहकर अपना वही ग्रामोफोन ले बैठीं और जितने रेकार्ड थे एक-एक करके सब बजा डाले। ऐसा मालूम होता था, मानों गन्धर्व लोकके सुरवाले घोड़ोंके अस्तबलमेंसे हिनहिनाहटकी आवाज आ रही है।

खिलाते-पिलाते बहुत रात चली गई मेरी इच्छा थी कि आज रातको अपने स्वामीके चरणोंकी धूल लूँगी। उनके कमरेमें जाकर देखा तो वह बेसुध सो रहे थे। आज उनका सारा दिन बड़ी हैरानी और चिन्तामें कटा है। मैंने सावधानीके साथ एक ओरसे मसहरी ज़रा-सी उठाई और धीरेसे अपना सिर उनके चरणोंके निकट रख दिया। मेरे बालोंका स्पर्श होते ही उन्होंने सोते-ही-सोते अपने पैरसे मेरा सिर जरा परेको ढकेल दिया।

मैं बरामदेमें जाकर बैठ गई। कुछ दूर पर एक सेहमलका पेड़ अंधेरेमें कङ्कालकी तरह खड़ा था—उसके सब पत्ते झड़ गये थे—उसीके पीछे सप्तमीका चन्द्रमा धीरे-धीरे अस्त हो गया था।

मुझे अकस्मात् मालूम पड़ा मानों आकाशके सब तारे मुझे देखकर भयभीत हो रहे हैं—रात्रिके समय यह सारा प्रकाण्ड जगत् मेरी ओर मानों तिरछी दृष्टिसे देख रहा है। मैं बिल्कुल अकेली हूँ। अकेले मनुष्यके समान अद्‌भुत वस्तु और कोई नहीं है। जिसके सब आत्मीय एक-एक करके मर गये हों; वह भी अकेला नहीं होता, मृत्युकी आड़मेंसे भी उसे संग मिल जाता है, पर जिसके सब आत्मीय निकट होने पर भी दूर चले गये हों, ऐसा मनुष्य परिपूर्ण संसारके साथसे अलग जा पड़ता है और उसकी ओर देखकर तारोंके शरीरमें भी काँटे चुभने लगते हैं। मैं जहाँ बैठी हूँ वास्तवमें वहाँ नहीं हूँ। जो लोग मुझे घेरे हैं मैं उन्हींसे दूर हूँ। मैं एक विश्वव्यापी विच्छेदके ऊपर चल-फिर रही हूँ और जीवित हूँ—मानों पद्मके ऊपरकी शिशिर-विन्दु हूँ।

पर मनुष्य जब बदलता है तो एकदम कायापलट क्यों नहीं हो जाती ? हृदय की ओर देखकर मालूम होता है कि उसमें जो कुछ था सब मौजूद है। केवल उलटपलट हो गया है। जो सजा रक्खा हुआ था, वह आज तितर-वितर पड़ा है। जो कण्ठ के हार में गुँथा हुआ था, वह आज धूल में पड़ा हुआ है। इसीलिये तो छाती फटी जाती है। इच्छा होती है कि मर जाऊँ, पर हृदय में तो सब उसी तरह मौजूद है और मृत्यु-धारा का दूसरा किनारा बिलकुल अदृश्य है। मुझे जान पड़ता है कि मृत्यु में और भी भयानक दुःख भरा है। मुझे जो कुछ चुकाना है, वह जीवित रहकर ही चुका सकती हूँ—और कोई उपाय नहीं है।

हे प्रभो ! मुझे इस बार क्षमा करो ! तुमने जो कुछ मेरे जीवन का धन बनाकर मेरे हाथों में दिया था, मैंने उसे अपने जीवन का बोझ बना लिया। आज मैं इस बोझ को न उठा सकती हूँ न त्याग कर सकती हूँ। मेरे प्रभात समय के रङ्गीन आकाश में खड़े होकर जो बंशी तुमने बजाई थी, आज फिर एक बार वही बंशी बजा दो, सब समस्या सहज हो जायगी—तुम्हारी उस बंशी के सुर के सिवा टूटे को कोई नहीं जोड़ सकता न अपवित्र को पवित्र कर सकता है। उसी बंशी के सुर से तुम जीवन की नये रूप से सृष्टि करो। इसके सिवा मुझे कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता।

मैं धरती के ऊपर मुँह के बल गिरकर रोने लगी। मुझे कहीं से थोड़ी सी दया चाहिए, एक सहारा चाहिए, कोई यह

आशा दिलाने वाला चाहिए कि अब भी सब ठीक हो सकता है। मैंने मन-ही-मन कहा, हे प्रभु, जबतक तुम्हारा आशीर्वाद मुझे न मिलेगा मैं न खाऊँगी न पीऊँगी बराबर इसी ही प्रकार पड़ी रहूँगी।

इसी समय मैंने पैरों की आहट सुनी। मेरा दिल धड़कने लगा। कौन कहता है देवता नहीं दिखाई पड़ते! मैंने मुँह उठाकर नहीं देखा, शायद वह मेरी दृष्टि को न सह सके। आओ, आओ, आओ—अपने पाँव मेरे सिर पर रख दो, मेरे इस हृदय-कम्पन के ऊपर खड़े हो जाओ, हे प्रभु मेरे प्राण निकल रहे हैं!

वह मेरे सिरहाने आकर बैठ गये। कौन मेरे स्वामी। मेरे स्वामी के हृदय में उसी देवता का सिंहासन हिल उठा है, जिसके लिये मेरा मर्मान्तिक कष्ट असह्य हो गया था। जान पड़ता था कि मैं मूर्छित हो जाऊँगी। इसके बाद मेरे नसों के बाँध को तोड़कर मेरे हृदय की वेदना अश्रुधारा के द्वारा उबल पड़ी। मैंने उनके पाँव जोर से अपनी छाती पर दबा लिए—क्या इन चरणों का चिह्न सदा के लिये मेरे हृदय पर अंकित नहीं हो सकता था?

इस बार तो सब बातें साफ-साफ कहनी ही पड़ेंगी, पर इसके बाद क्या और कोई बात भी बाकी है? भाड़ में जायँ सब बातें?

वह धीरे-धीरे सिर पर हाथ फेरने लगे। मुझे आशीर्वाद मिल गया। कल जो मेरा अपमान होने वाला है उस अप-

मानका बोझ सबके सामने सिर पर उठाकर मैं निश्चित भाव से अपने देवताके चरणोंमें प्रणाम कर सकूँगी।

किन्तु यह बात मनमें आते ही मेरी छाती फटी जाती है कि नौ वर्ष पहले जो शहनाई बजी थी, वह इस जन्ममें फिर कभी न बजेगी। इस जगतमें कौनसे देवताके चरणोंमें सिर रगड़नेसे वही नव-वधू चन्दन-चोली पहिन कर फिर उसी वरणकी पीढ़ी पर आकर खड़ी हो सकती है? नौ वर्ष पहलेका वह दिन फिर आते-आते न जाने कितने दिन, कितने युग, कितने युगान्तर बीत चुकेंगे। देवता नई सृष्टि कर सकते हैं, पर टूटी हुई सृष्टिको फिरसे गढ़ना उनके वशमें भी नहीं है।

—:०:—

निखिलेश को आत्म-कथा

आज हम कलकत्ते जायेंगे। बैठे रहना व्यर्थ है। इस प्रकार दुःख-सुखको जितना बढ़ाओ उतना ही बढ़ सकता है। मैं जो इस घरका स्वामी हूँ, यह एक बनावटी बात है—वास्तव में मैं जीवन-पथका केवल एक पथिक हूँ। इसी कारण घरके स्वामीको इतने आघात सहने पड़ते हैं और पीछे शेष आघात मृत्यु है ही। तुम्हारे साथ मेरा मिलन रास्तेका मिलन है, जितनी दूर एक मार्ग पर चल सके उतनी दूर ही तक ठीक रहा इससे अधिक खींचतान करते ही मिलन बन्धन हो जायगा!

यह बन्धन अब छूटने लगा है। इस बार दोनों स्वतन्त्र हो गये हैं, चलते चलते कभी-कभी दृष्टि मिल जाना और हाथसे हाथ मिल जाना यही बहुत है। इसके बाद ? इसके बाद अनन्त जगतका मार्ग है, असीम जीवनका वेग है, इससे तुम भी मुझे वञ्चित न रख सकोगी। सामनेकी ओर जो बंशी बज रही है, यदि कान देकर सुनूँ तो उसे स्पष्ट सुन सकता हूँ, विच्छेदके सब छेदोंसे माधुर्य्यका राग निकल रहा है। लक्ष्मीका अमृत-भण्डार कभी खाली नहीं होता, इसीलिए वह कभी-कभी हमारे पात्रको तोड़कर हमारे रोने पर हँस पड़ती है। मैं टूटा हुआ पात्र उठाने न जाऊँगा। मैं अपने अतृप्त हृदयको लिए ही आगे बढ़ूँगा।

मँझली रानीने आकर मुझसे कहा,—"भैया निखिलेश, तुम्हारी सब किताबें बक्सोंमें भर-भरकर छकड़ेमें क्यों लद रही हैं ?"

मैंने कहा,—"इसीलिए कि इनके मोहने अब तक मेरा पीछा नहीं छोड़ा।"

"अच्छी बात है, मैं तो चाहती हूँ और चीजों पर भी तुम्हारा मोह इसी प्रकार बना रहे, परन्तु क्या फिर यहाँ लौट कर न आओगे ?"

"आना-जाना तो लगा ही रहेगा, पर अब यहाँ पड़े रहनेसे काम नहीं चलेगा !"

"सच कहना क्या यही इरादा किया है ? अच्छा तो यह भी आकर देख लो कि मुझे कितनी चीज़ोंका मोह बाकी है।"

उनके कमरे में गया तो बहुत से छोटे-बड़े बक्स और सन्दूक देखे। उन्होंने एक बक्स खोलकर दिखाया,—"यह देखो भैया, यह मेरे पानों का सामान है। इन छोटे-छोटे बक्सों में सब प्रकार के थोड़े-थोड़े मसाले हैं। यह ताश है, यह देखो चौपड़ भी नहीं भूली हूँ, तुम न मिलोगे तो खेलने के लिए किसी और साथी को ढूँढ़ लूँगी। यह तुम्हारा वही स्वदेशी कंघा है, और यह........।"

"पर यह बात क्या है भाभी ? यह सब तैयारी क्यों हो रही है ?"

"मैं भी तो तुम्हारे साथ कलकत्ते जाऊँगी।"

"यह कैसे हो सकता है ?

"डरो मत, भैया, डरो मत, मैं तुम्हें तंग नहीं करूँगी, न छोटी रानी के साथ लड़ाई-झगड़ा करूँगी। मरना तो है ही, इसीलिये पहले ही से गंगा तीर पर जाकर रहना अच्छा है, जब मरूँगी तो उसी ठूँठ वट के नीचे मेरी भी चिता लगेगी। यह ध्यान आकर तो मेरा मरने को भी जी नहीं चाहता, जभी तो मैंने तुम्हें इतने दिन से बराबर कुढ़ाया है।"

इतने दिन बाद मेरा घर मानों सजीव होकर बोल उठा। मैं जब छः वर्ष का था तो मँझली रानी नौ वर्ष की अवस्था में इस घर में आई थीं। दोपहर के समय ऊपर की छतों पर ऊँची-ऊँची दीवारों के साये में हम बहुत साथ खेले हैं। बाग में आँवले के पेड़ के ऊपर से मैं कच्चे आँवले तोड़कर फेंका करता और वह नीचे बैठी मेरे लिये नमक-मिर्च मिलाकर चटनी तैयार करतीं।

गुड़ियाके विवाहके लिये भोजन की सामग्री चुपके-चुपके भण्डार में से लाने का भार मेरे ही ऊपर था, क्योंकि मेरी दादी की दृष्टि में मेरा कोई भी अपराध दण्ड के योग्य नहीं था। इसके अलावा उन्हें जब कभी शौकीनी की चीज की जरूरत होती, तो मेरे ही द्वारा भाई साहब से कहला भेजतीं—मैं भाई साहब के सिर होकर जिस तरह होता, काम बना लाता। फिर वह दिन भी याद आता है, जब मुझे बुखार चढ़ा था और कविराज ने गरम जल और इलायचीदानों के सिवाय सब चीजों का निषेध कर दिया था। मँझली रानी से मेरा दुःख न देखा जाता और वह चुपके-चुपके मुझे अच्छी—अच्छी खाने की चीजें दे दिया करतीं। कभी-कभी पकड़े जाने पर उन्हें झिड़कियाँ भी खानी पड़तीं। इसके बाद बड़े होने पर हमारे दुःख-सुख का रंग गाढ़ा हो चला—कई बार झगड़ा भी हुआ है। घर गृहस्थी की बातों पर मन-मुटाव भी हो गया है और फिर विमला के बीच में आ जाने से तो ऐसा जान पड़ता था कि आपस का विच्छेद कभी दूर ही न होगा। पर बाद को अच्छी तरह साबित हो गया कि मनका मेल बाहर की अनबन से कहीं प्रबल है। इसी प्रकार बचपन से आज तक जो सच्चा सम्बन्ध हम दोनों के बीचमें जम उठा है, उसी के डाल-पत्तों ने इस सारे घर के कमरों, बरामदों, आँगनों और छतों पर साया डालकर अपना अधिकार स्थिर कर लिया है। मैंने जब देखा कि मँझली रानी अपनी सब चीज वस्तु लेकर जाने के लिये तैयार हैं, तो इस पुराने सम्बन्ध की सब कड़ियाँ मेरे हृदय में झनझना उठीं। मैं अच्छी तरह

समझ गया कि मँझली रानी जो नौ वर्षकी अवस्थासे कभी एक दिनके लिये भी इस घरको छोड़कर नहीं गई, आज क्यों एकदम चली जानेको तैयार हैं। पर वास्तविक कारणको वह स्वीकार नहीं करतीं और तरह-तरहके तुच्छ बहाने ढूँढ़ निकालनेको तैयार हैं। इस आगामी पति-पुत्र-हीन स्त्रीने संसारमें केवल इसी एक सम्बन्धको अपने हृदयका सब संचित किया हुआ अमृत दे-देकर पालन किया है, उनके लिये मुझसे बिछुड़ना कैसा असह्य है, यह मैंने उनकी पोटलियोंके बीचमें खड़े होकर अच्छी तरह मालूम कर लिया। मैं समझ गया कि रुपये-पैसे और अन्य छोटी-छोटी चीज़ोंके ऊपर विमलाके साथ जो उनका अनेक बार झगड़ा हुआ, उसका कारण लोभीपन नहीं है, उसका कारण यही है कि विमलाके बीचमें आ पड़नेसे उनके जीवनके इस सर्वोत्तम सम्बन्धमें बार-बार ठेस लगी है। उन्हें आते-जाते, उठते-बैठते बहुत कुछ सहना पड़ा है और फिर शिकायत करनेका मानों उन्हें अधिकार ही नहीं था। विमला भी कुछ समझ गई थी कि मेरे ऊपर मँझली रानीका दावा केवल सामाजिक दावा नहीं है, बल्कि उससे कहीं अधिक गहरा है—इसीलिये उसे इतनी ईर्ष्या होती थी। यह सब स्मरण होकर मेरा हृदय मेरी छातीके द्वारपर जोरसे टकराने लगा। मैं खड़ा न रह सका और एक ट्रङ्कके ऊपर बैठकर बोला,—"मँझली रानी, जिस दिन हम दोनोंने पहले-पहल एक-दूसरेको देखा था, मेरी बड़ी इच्छा है कि किसी तरह एक बार वही दिन फिर आ जाय।"

मँझली रानीने एक लम्बी साँस लेकर कहा,—"नहीं, भैया,

मैं दूसरे जन्ममें स्त्री होना नहीं चाहती—इस जन्मकी बातें इसी जन्ममें समाप्त हो जाँय, फिर दूसरी बार मुझसे न सही जायँगी।"

मैंने कहा,—"दुःखके द्वारा जो मुक्ति मिलती है, वह मुक्ति क्या दुःखसे बढ़कर नहीं है?"

वह बोलीं,—"यह हो सकता है, पर तुम पुरुष हो, मुक्ति तुम्हारे ही लिये है। हम स्त्रियाँ तो बाँधना चाहती हैं और आप भी बँधना चाहती हैं—हमारे पाससे तुम्हें छुटकारा मिलना कठिन है। यदि पंख फैलाना चाहो तो हमें भी साथ लेना पड़ेगा, पीछे न छोड़ सकोगे। इसीलिये मैंने यह सारा बोझ तैयार करके रखा है, तुम लोगोंको एकदम हलका कर देना ठीक नहीं है।"

मैंने हँसकर उत्तर दिया,—"वही तो देख रहा हूँ और बोझ भी कम नहीं है। पर इस बोझ उठानेकी मजदूरी को तुम अच्छी तरह चुका देती हो, इसीलिये पुरुषोंको शिकायत करनेका मुँह नहीं होता।"

मँझली रानीने कहा,—"हमारा बोझ तो छोटी-छोटी चीज़ों का ही बोझ है। जिस चीज़को भी छोड़ना चाहते हो, वही हलकी दिखाई पड़ती है, सोचते हो, यह है ही कितनी-सी—इसी तरह हम हलकी-हलकी चीज़ोंसे तुम्हारे सिरका बोझ भारी कर देती हैं। अब बताओ यहाँसे चलना कब निश्चय किया है?"

"रातको साढ़े ग्यारह बजे।"

"देखो, भैया, तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी—तुम आज

सबेरे ही खा-पीकर दोपहरको थोड़ी देरके लिए सो रहना। रेलमें अच्छी तरह न सो सकोगे। तुम्हारे शरीरकी जो अवस्था हो गई है, उससे तो जान पड़ता है कि जरा-सा भी और कसाला पड़ा तो तुमसे उठा भी न जायगा। चलो, तुम्हें अभी जाकर नहाना पड़ेगा।"

इसी समय खेमा बड़ा-सा घूँघट निकाले आई और मृदु-स्वरसे कहने लगी,—"दारोग़ाजी किसीको साथ लेकर आये हैं, महाराजसे मिलना चाहते हैं।"

मँझली रानी रुष्ट होकर बोलीं,—"महाराज भी कोई चोर या डाकू हैं, जो दारोग़ा उनके पीछे लगा ही रहता है! जाकर कह दे कि महाराज स्नान कर रहे हैं।"

मैंने कहा,—"जरा जाकर देख आऊँ सम्भव है कोई ज़रूरी काम हो।"

मँझली रानी बोलीं,—"नहीं, मैं जाने न दूंगी। छोटी रानी ने कल बहुत से गूँझे बनाये थे, दारोग़ाके वास्ते वही थोड़ेसे भेज दूंगी, उसका मिज़ाज ठण्डा हो जायगा।" यह कहकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मुझे गुसलखानेमें ढकेल दिया और बाहरसे कुण्डी लगा दी।

मैंने भीतरसे पुकारकर कहा,—"मेरे साफ़ कपड़े तो अभी........।"

वह बोलीं,—"वह मैं ठीक कर रखूँगी, तुम स्नान कर लो।"

इस ज़बरदस्तीका विरोध करनेकी मुझमें शक्ति नहीं थी, संसारमें यह ज़बरदस्ती बड़ी दुर्लभ है। दारोग़ाजीको बैठे-बैठे

गूँझे खाने दो। जरा कामका हर्ज ही हो जायगा तो क्या ?

इतने दिनोंमें उस डकैतीके सम्बधमें दारोगाने दो-चार आदमियोंको पकड़ा था। रोज ही एक-न-एक निरपराधीको पकड़ लाता है और मेरी बैठकमें सभा गरम रहती है। जान पड़ता है आज भी कोई अभागा पकड़ा गया। किन्तु गूँझे क्या अकेला दारोगा ही खायगा ? यह ठीक नहीं है। मैंने भीतरसे दरवाजा खटखटाया। बाहरसे मँझली रानी बोलीं,—"पानी डालो, पानी, जान पड़ता है गरमीके मारे तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।"

मैंने कहा,—"गूँझे दो आदमियोंके लिए भेजना है। दारोगा जिसे चोर बनाकर लाया है, वास्तवमें गूँझे उसीको मिलने चाहिये। बैरासे कह देना कि उसके भागमें कुछ अधिक आवे।

जितनी जल्दी हो सका मैं स्नान करके बाहर निकला। देखा कि दरवाजेके पास विमला धरतीपर बैठी है। यह क्या मेरी वही विमला है, वही तेज और अभिमानसे भरी गर्विणी ? न जाने क्या प्रार्थना मनमें लेकर वह द्वारके पास बैठी मेरी बाट जोह रही थी ? मैं जैसे ही रुककर खड़ा हुआ, वह उठ खड़ी हुई और सिर नीचाकर मुझसे बोली,—"मुझे तुमसे कुछ कहना है।

मैंने कहा,—"अच्छा तो आओ कमरेमें चलें।"

"क्या तुम्हें बाहर कुछ जरूरी काम है ?

"हाँ, पर उसे फिर देख लूँगा—पहले तुम्हारी....।"

"नहीं, तुम काम कर आओ—उसके बाद जब भोजन कर

चुकोगे तो बातें होंगी।"

बाहर जाकर देखा तो दारोगा की प्लेट खाली थी—वह जिसे पकड़कर लाया था, वह उस समय भी बैठा गूँझे खा रहा था।

मैं विस्मित होकर बोला—"अरे यह तो अमूल्य है ?

उसने खाते-खाते उत्तर दिया,—"जी हाँ पेट भर के खा चुका हूँ, अब यदि आप क्षमा करें तो जो कुछ बचे हैं इन्हें रूमाल में बाँध लूँ।"—यह कहकर उसने सब गूँझे रूमाल में बाँध लिये।

मैंने दारोगा की ओर देखकर पूछा,—"क्या मामला है ?"

दारोगा ने हँसकर उत्तर दिया,—"महाराज चोर की पहेली तो अब तक न बूझ सका, पर चोरी के माल का पता लगा ही लिया ?"

यह कहकर उसनेएक पोटली खोली और नोटोंकी गड्डीनिकाल कर मेरे सामने रख दी।—"यही महाराजके छः हजार रुपये हैं।"

"आपको कहाँ से मिले ?"

"अमूल्य बाबू के पास से। वह कल रात चकुवे में आपके नायब के पास जाकर बोले,—"चोरी का माल मिल गया।" नायब इतना चोरी के समय नहीं डरा था जितना चोरी का माल पाकर डरा। उसने सोचा सब यही सन्देह करेंगे कि मैंने नोट छिपाकर रख दिये थे, अब जो विपत्ति सिर पर आते देखी तो यह उपन्यास गढ़ लिया है। जिसने अमूल्य बाबू को भोजन कराने के बहाने से बिठाये रखा और आप जाकर थाने में खबर कर दी। मैं तुरन्त घोड़े पर चढ़कर वहाँ पहुँचा और

आज सबेरे से इन्हीं के पीछे हैरान हो रहा हूँ, पर यह पता नहीं देते कि इन्हें रुपया कहाँ से मिला है। मैं कहता हूँ कि जब तक न बताओगे मैं तुम्हें न छोड़ूँगा। यह कहते हैं तो क्या झूठ बोल दूँ। मैं कहता हूँ अच्छा यही सही। यह कहते हैं मुझे यह नोट एक झाड़ी के नीचे से मिले हैं। मैंने कहा झूठ बोलना ऐसा आसान नहीं है। यह भी तो बताना पड़ेगा कि झाड़ी कहाँ है और तुम वहाँ क्यों गये थे। उस पर अमूल्य बाबू बोले कि यह सब गढ़ने के लिये मुझे बहुत समय मिल जायगा—आप कुछ चिन्ता न कीजिये।"

मैंने कहा,—"हरिचरण बाबू एक भलेमानस के लड़के को इस प्रकार तंग करने से क्या होगा?"

दारोगा ने कहा—"अमूल्य केवल एक भलेमानस के लड़के ही नहीं हैं—उनके पिता निवारण घोषाल मेरे साथ पढ़ते थे। महाराज मैं आपको बताये देता हूँ क्या बात है। अमूल्य को अच्छी तरह मालूम है कि चोरी किसने की है, पर वह अपने सिर पर बात लेकर उसे बचाना चाहते हैं। इसी को वह अपना वीरत्व समझते हैं। महाराज, अब चोर का पकड़ा जाना तो कठिन हो गया पर मैं आपको बताये देता हूँ कि यह किसका काम है।"

मैंने कहा,—"बताओ।"

"आपका नायब तीनकोड़ी दत्त और वही कासिम सिपाही।"

जब दारोगा जी उस अनुमान का समर्थन करने के लिये

बहुतसे प्रमाण देकर चले गये तो मैंने अमूल्यसे कहा,—"अब बताओ यह रुपया किसने चुराया था, मुझे बताने में कुछ हर्ज न होगा।"

उसने कहा,—"मैंने।"

"किस प्रकार? वह तो कहते हैं कि डाकुओंका दल का दल............।"

"मैं ही अकेला था।"

अमूल्यने जो वृत्तान्त सुनाया वह बड़ा अद्भुत था। नायब रातको खा-पीकर बाहर बैठा कुल्ला कर रहा था। उस जगह बिलकुल अन्धेरा था। अमूल्यकी दोनों जेबोमें दो पिस्तौलें थीं, एकमें खाली कारतूस थे और दूसरेमें गोली भरी थी, उसके आधे चेहरे पर काला कपड़ा बँधा था। उसने एकदम बिजलीकी एक गुप्त लालटेनकी रोशनी नायबके मुँहपर डालकर ज्योंही एक खाली कारतूस छोड़ा नायब बेहोश होकर गिर पड़ा, दो-चार? भागे हुए आये, पर वह भी पिस्तौल की आवाज सुनते ही भागकर इधर-उधर छिप गये। कासिम सरदार लाठी लेकर झपटा, पर अमूल्यने उसके पाँवमें गोली मारी और वह वहीं बैठ गया। इतनेमें नायबको कुछ होश आ गया था। अमूल्यने उसीको डरा धमकाकर लोहेका सन्दूक खुलवाया और छः हजारके नोट निकाल लिये। फिर उसने वहींसे एक घोड़ा लिया और चढ़कर रवाना हुआ। पाँच छः मील जाकर उसने घोड़ेको छोड़ दिया और आप अगले दिन सवेरे ही यहाँ आ पहुँचा।

मैंने पूछा,—"अमूल्य यह सब तुमने किया क्यों ?"

उसने कहा,—"मुझे जरूरत थी।"

"तो फिर तुमने रुपये लौटा क्यों दिये ?"

"जिनकी आज्ञासे लौटा दिये उनको बुलवाइये, उन्हींके सामने बताऊँगा।"

"वह कौन हैं ?"

"छोटी रानी।"

मैंने विमलाको बुला भेजा। वह एक शाल ओढ़े धीरे-धीरे कमरेमें आई, पाँवमें जूता भी नहीं था। मैंने विमलाको इस प्रकार कभी नहीं देखा प्रातःकालके चन्द्रमाके समान मानों वह प्रभातके धीमे-धीमे प्रकाशमें लिपटी हुई मेरे सामने खड़ी थी।

अमूल्यने विमलाके पैरोंके निकट भूमिष्ट होकर प्रणाम किया और उठकर कहने लगा,—"जीजी, मैं तुम्हारी आज्ञा पूरी कर आया। रुपये जहाँसे लाया था वहीं दे आया।"

विमलाने कहा,—"धन्यवाद भैया। तुमने मुझे बचा लिया।"

अमूल्यने कहा,—"तुम्हारा स्मरण मनमें रखकर मैं जरा भी झूठ नहीं बोला। अपना बन्देमातरम् मन्त्र तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया। यहाँ लौटकर आते ही मुझे तुम्हारा प्रसाद भी मिल गया।"

यह बात विमला अच्छी तरह न समझ सकी। अमूल्य ने अपनी जेबसे रूमाल निकालकर उसमें जो गूँझे बँधे थे वे दिखा दिये। उसने कहा,—"मैंने सब नहीं खाये, कुछ उठाकर रख लिये हैं मैं जानता था कि तम मझे स्वयं भी कुछ

खिलाओगी। इसीलिये इन गूँझोंको बचा लिया।"

वहाँ अपनी और जरूरत न समझकर मैं कमरेसे बाहर चला आया। मैंने सोचा कि मैं इतना बकता झकता हूँ फिर भी परिणाम यही होता है कि लोग मेरी मूर्ति बनाकर उसके गलेमें पुराने जूतोंकी माला पहिनाते हैं और फिर उसे नदी किनारे ले जाकर जला डालते हैं। मैं किसीको भी सर्वनाशके पक्षसे उलटा न फेर सका—जिनमें सामर्थ्य है वह जरासे इशारेमें सब कुछ कर सकते हैं। हमलोगोंकी वाणीमें वह शक्ति नहीं है। हम अग्निशिखा नहीं हैं। हम मानों बुझे हुए अङ्गारे हैं, प्रदीप जलाना हमारे बससे बाहर है। मेरे जीवन इतिहाससे भी यही बात प्रमाणित होती है, मैंने जो दिया-बत्ती सँवारा था, वह कभी न जल सका।

फिर धीरे-धीरे भीतर जा पहुँचा। मँझली रानीका कमरा मुझे फिर अपनी ओर खींचने लगा। उस समय मुझे यह अनुभव करनेकी बड़ी आवश्यकता थी कि मेरे जीवनके आघात से भी इस संसारमें किसी और जीवनकी वीणासे सच्ची और स्पष्ट झनकार उठ सकती है—अपने अस्तित्वका परिचय स्वयं अपनेमें नहीं मिलता—उसके लिये सदा बाहर ही खोज करनी पड़ती है।

मैं जैसे ही मझली रानीके कमरेके सामने पहुँचा, वह बाहर निकलकर बोलीं,—"वह देखो भैया; मैं पहले ही जानती थी कि आज भी देर हो जायगी। अब देर नहीं है, तुम्हारा भोजन बिलकुल तैयार है, अभी परोसा जाता है।"

मैंने कहा;—"अच्छा तबतक उस रुपयेको निकाल कर ठीक कर रखें।"

मेरे कमरेकी ओर जाते-जाते मँझली रानीने पूछा,—"दारोगा क्यों आया था ? क्या कुछ चोरीका पता लगा ?"

मैं उस छः हजारके मिल जानेका बृतान्त मँझली रानीको सुनाना नहीं चाहता था। इसलिये मैंने कहा,—"उसीकी तो सारी गड़बड़ हो रही है।"

लोहेके सन्दूकके पास पहुँचकर मैंने चाभियोंका गुच्छा जेबसे निकाला; देखता हूँ तो सन्दूककी चाभी नहीं है। मैं भी कैसा बेपरवाह हूँ। इसी गुच्छेका सुबहसे कई बार काम पड़ा है, कई बार आलमारी खोली है, बक्स खोला है, पर एक बार भी ध्यान नहीं आया कि वह चाभी नहीं है।

मँझली रानी बोली,—"चाभी कहाँ है ?"

मैं इसका कुछ उत्तर न देकर, अपनी जेबोंमें ढूँढ़ने लगा—हर एक जेबमें दस-दस दफे देखा पर कुछ पता न चला। हम दोनों ने समझ लिया कि चाबी खोई नहीं किसीने छल्लेमें से निकाल ली है। कौन निकाल सकता है ? इस कमरेमें तो····।"

मँझली रानी बोलीं,—"चिन्ता मत करो, पहले चल कर भोजन कर लो। मुझे विश्वास है कि तुम्हें बेपरवाह समझकर छोटी रानीने वह चाभी अपने बक्समें उठाकर रख ली है।"

पर मेरा मन फिर नहीं माना। विमलाका ऐसा स्वभाव नहीं है कि मुझसे बिना कहे चाभी निकाल लेती। मेरे भोजन करते समय विमला नहीं थी—वह उस समय रसोईसे भात

लाकर अमूल्य को खिला रही थी। मँझली रानी ने उसे बुलाना चाहा, पर मैंने मना कर दिया।

जब खाकर उठा तो विमला भी आ गई। मैं चाहता था कि मँझली रानी के सामने चाभी खो जाने की बात न छिड़े। पर यह कैसे सम्भव था? विमला के आते ही उन्होंने पूछा,—"लोहे की सन्दूक की चाभी कहाँ है, कुछ खबर है?"

विमला ने कहा,—"मेरे पास है।"

मँझली रानी बोली,—"मैंने तो कहा ही था! चारों ओर डाके पड़ रहे हैं, छोटी रानी देखने में कैसी निडर मालूम होती हो, पर वास्तव में है बड़ी सावधान।"

विमला के मुँह की ओर देखकर मुझे सन्देह सा हुआ, मैंने कहा,—"अच्छा, चाभी अभी अपने ही पास रहने दो, सन्ध्या समय रुपये निकाल लेंगे।"

मँझली रानी बोली,—"फिर सन्ध्या समय क्या? अभी निकाल कर खजाञ्ची के पास भेज दो न।"

विमला बोली,—"रुपया मैंने निकाल लिया है।"

मैं चौंक पड़ा।

मँझली रानी ने पूछा,—"निकाल कर फिर कहाँ रख दिया?"

विमला ने कहा,—"मैंने खर्च कर दिया।"

मँझली रानी बोलीं,—"लो और सुनो इसकी बातें! इतना सारा रुपया काहे में खर्च कर दिया?"

विमला ने इसका कुछ उत्तर न दिया। मैंने भी उससे कुछ न पूछा—दरवाजा पकड़े चुपचाप खड़ा रहा। मँझली रानी

विमला से कुछ कहना चाहती थीं, पर रुक गईं; फिर मेरी ओर देख कर बोलीं—"इसने अच्छा किया निकाल लिया। मैं भी अपने स्वामी की जेबों और बक्स में से रुपया चुरा कर छिपा दिया करती थी, मैं जानती थी उनके पास न ठहरेगा। भैया, तुम्हारी भी प्रायः वही दशा है—बात-की-बात में रुपया उड़ा देते हो, हम चुरा कर न रक्खें तो तुम्हारे पास रुपया रहना ही कठिन है। अब चलो; जरा सो रहो।"

मँझली रानी मुझे पकड़कर सोने के कमरे में ले गईं, मुझे कुछ खबर नहीं थी कि कहाँ जा रही हूँ। वह मेरे पास बैठकर मुस्कुराते हुये बोलीं,—"अरी छोटी रानी, एक पान तो दे। तू तो एकदम मेम बन गई। पान नहीं है? अच्छा तो जा मेरे कमरे में से ला दे।"

मैंने कहा,—"भाभी, तुमने तो अभी भोजन भी नहीं किया।"

वह बोलीं,—मैं तो कभी की खा चुकी।"

यह बिल्कुल झूठ बात थी। वह मेरे पास बैठकर इधर-उधर की बातें करने लगीं। इतने में दासी ने आकर दरवाजे के बाहर से खबर दी कि विमला का खाना ठंडा हो रहा है। विमला ने कुछ उत्तर न दिया। मंझली रानी बोलीं,—"यह क्या, तूने अब तक नहीं खाया? इतनी देर हो गई।"—यह कहकर वह विमला को जबरदस्ती अपने साथ ले गईं।

मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि उस छः हजार की डकैती का सन्दूक के इस छः हजार से अवश्य कुछ सम्बन्ध है। किस

प्रकार का सम्बन्ध है, यह मैं जानना भी नहीं चाहता था और न मैंने कभी किसी से पूछा।

विधाता हमारे जीवन-चित्र का आकारमात्र बनाकर छोड़ देता है। इसका अभिप्राय यही होता है कि हम अपने हाथ से उसे कुछ अदल-बदल कर उसमें अपनी इच्छा और प्रवृत्ति के अनुसार एक स्पष्ट चेहरा निकालें। मेरा सदा यही उद्देश्य रहा है कि सृष्टि-कर्त्ता के निर्देश को समझ कर अपनी सृष्टि आप करूँ और अपने जीवन द्वारा किसी बड़े आदर्श को व्यक्त करके दिखा दूँ।

मैंने इसी साधना में इतने दिन बिताये हैं। मैंने अपनी प्रवृत्तियों को कितना वञ्चित रक्खा है, अपनी कामनाओं का कैसा दमन किया है, यह अन्तर का इतिहास केवल अन्तर्यामी जानते हैं। कठिन बात यही है कि किसी का जीवन एक पृथक् वस्तु नहीं है—जिसे सृष्टि करनी है उसे अपने चारों ओर के जीवन को लेकर सृष्टि करनी चाहिये, नहीं तो सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। इसीलिये मेरी इच्छा थी कि विमला को भी इस रचना में शामिल कर लूँ। मुझे विश्वास था कि जब मैं उसे जी-जान से प्यार करूँगा तो अवश्य सफल होऊँगा। मेरा जोर तो केवल प्रेम का जोर था।

पर अब मैं स्पष्ट समझ गया कि जो लोग अपने साथ-साथ चारों ओर की सृष्टि कर सकते हैं, वे एक अलग ही जाति के मनुष्य हैं। मैं उस जाति में नहीं हूँ। मैंने मन्त्र लिया अवश्य है, पर किसी को दे नहीं सकता। जिनके सामने मैंने अपने को

सम्पूर्ण रूप से डाल दिया उन्होंने मेरा और सब कुछ तो लिया, पर स्वयं मुझे, मेरे इस अन्ततम को अलग छोड़ दिया। मेरी परीक्षा कठिन हो गई । जहाँ मुझे सबसे अधिक सहायता की जरूरत थी, वहीं मैं बिल्कुल अकेला रह गया।

आज मुझे सन्देह होता है कि मेरे स्वभाव में अवश्य कुछ अत्याचार था । विमला के साथ अपने सम्बन्ध को एक सुन्दर और सुरूप साँचे में ढालना चाहता था, पर मनुष्य का जीवन तो सांचे में ढालने की चीज नहीं। जब हम सजीव प्रकृति को गढ़कर बनाना चाहते हैं तो वह निर्जीव होकर ही अपना बदला लेती है।

मैं मालूम ही न कर सका कि इसी अत्याचार के कारण हम दोनों एक दूसरेसे दूरचले गये हैं। मेरे दबाव के कारण विमलाका स्वतन्त्र विकास ऊपर की ओरको न हो सका और उसकी अवरुद्ध जीवन-धारा ने नीचे अपना बाँध काट डाला । यह छः हजार रुपया आज उसे चोरी करके लेना पड़ा,—मेरे साथ वह स्पष्ट व्यवहार न कर सकी, क्योंकि वह जानती है कि कुछ बातों में मैं उसका दृढ़ता से विरोध करता हूँ। मेरे समान एक रूखे आदर्श के आदमियों के साथ जिनका मेल है उन्हीं का मेल हो सकता है, जिनका नहीं है उनको हमारे साथ धोखा देकर काम चलाना पड़ता है। सरल मनुष्य को भी हम कपटी बना देते हैं। सहधर्मिणीको गढ़कर बनानेकी चेष्टामें स्त्रीको भी बिगाड़ बैठते हैं।

क्या यह सब फिर से आरम्भ हो सकता है ? यदि ऐसा हो तो अबकी बार मैं बहुत ही सरल रास्ता चलूँ। अपने पथ की

संगिनी को किसी आदर्शकी जञ्जीरमें न बाँधूँ केवल अपने प्रेमकी बंशी बजाकर कहूँ कि तुम मुझे प्यार करो, उसी प्रेम के प्रकाश में अपनी वास्तविक प्रकृति का विकाश होने दो, मेरी कोई इच्छा हस्तक्षेप न कर सकेगी—विधाताकी जिस इच्छा ने तुम्हारे जीवन में रूप लिया है उसी की जय हो !

हमारे बीच में जो विच्छेद भीतर-ही-भीतर उत्पन्न हो गया था, वह आज एक बड़े घाव के रूप में प्रकट हुआ है। क्या अब भी स्वाभाविक प्रकृति उसकी चिकित्सा कर सकती है? जिस परदे की ओट में प्रकृति अपने संशोधन का काम धीरे-धीरे करती है वही परदा एकदम छिन्न हो गया है! घाव को ढकना अवश्य चाहिये, मैं उसे अपने प्रेम से ढकूँगा; फिर एक दिन ऐसा भी आवेगा कि जब इस घाव का चिह्न तक बाकी न रहेगा, पर हम इतने दिन भूल में पड़े रहे, इतने दिन भूल मालूम करने में लग गये, अब न जाने भूल सुधारने में कितने दिन लगेंगे! उसके पश्चात्? उसके पश्चात् क्षत तो सूख भी सकता है पर उसकी क्षति क्या कभी पूरी हो सकती है?

इसी समय कुछ खटका हुआ—मैंने फिर कर देखा तो विमला द्वार के पास से लौटकर जा रही थी। जान पड़ता है कि वह इतनी देर से द्वार के पास चुपचाप खड़ी थी—कमरे के अन्दर आवे या नहीं, यही सोच रही थी—आखिर लौटकर चली गई। मैंने जल्दी से उठकर पुकारा, "विमला! वह, खड़ी हो गई, उसकी पीठ मेरी ओर थी; मैं उसका हाथ पकड़कर कमरे के अन्दर ले आया!

कमरे में आते ही वह फर्शपर गिर पड़ी और एक तकिये पर मुँह रखकर रोने लगी। मैं कुछ न बोला और उसका हाथ पकड़े चुपचाप बैठा रहा।

आँसुओं का वेग थमने पर जब वह उठ बैठी तो मैंने उसे अपनी छाती के निकट खींचना चाहा। उसने बलपूर्वक मेरे हाथ हटा दिये और धरती पर गिरकर बार-बार मेरे पैरों में सिर रखने लगी। मैंने जैसे ही पाँव हटाना चाहा उसने दोनों हाथों से मेरे पाँव जोर से पकड़कर गद्‌गद् स्वर से कहा,—"नहीं, नहीं, तुम अपने पाँव मत हटाओ—मुझे पूजा करने दो।"

मैं फिर कुछ न बोला। इस पूजा में बाधा डालनेवाला मैं कौन था! सत्य-पूजा का देवता भी सत्य होता है,—वह देवता मैं थोड़े ही हूँ जो मुझे संकोच होता।

———

विमला की आत्म-कथा

—:o:—

चलो, चलो, अब इस सागर-संगम की ओर बढ़ो जहाँ प्रेम की नदी जाकर पूजा के समुद्र में मिल जाती है। उसी निर्मल नीलिमा की गहराई में सब गाद और कीचड़ का भार डूब जायगा। मैं अब बिल्कुल निडर हो गई हूँ,—न अपना भय करती हूँ न और किसी का, मैं अग्नि के भीतर होकर निकल आई हूँ—जो कुछ जलनेवाला था वह जलकर छाई हो गया—जो कुछ बाकी है वह सदा बना रहेगा। अब मैंने अपने आप को

उसीके चरणोंमें अर्पण कर दिया है, जिसने मेरे सारे अपराधको अपनी गहरी वेदनामें विलुप्त कर दिया है।

आज रातको हम कलकत्ते जायँगे। अब तक भीतर बाहर की गड़बड़के कारण, मैं असबाब ठीक न कर सकी। लाओ अब पहले ट्रंकोंमें चीजें ठीक करके रख दूं। थोड़ी देर बाद देखती हूँ कि मेरे स्वामी आकर मेरा हाथ बँटा रहे हैं। मैंने कहा,—"नहीं, यह न होगा,—तुमने तो मुझसे वादा किया था कि जाकर सो रहोगे।"

स्वामीने कहा,—"मैंने वादा किया था, पर मेरी नींदने वादा नहीं किया—नींदका तो पता ही नहीं।"

मैंने कहा,—"नहीं, यह नहीं हो सकता—तुम जाकर सो रहो?" वह बोले,—"तुम अकेली कैसे करोगी?"

"सब कर लूँगी।"

"मेरे बिना भी तुम्हारा काम चल जाता है, यह शक्ति तुम्हींमें है, पर मेरा तो तुम्हारे बिना काम नहीं चलता। मुझे तो अकेले कमरेमें नींद तक नहीं आई।"

यह कहकर वह फिर काममें लग गये। इसी समय बैराने आकर कहा,—"सन्दीप बाबू आये हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।"

किससे मिलना चाहते हैं, यह पूछनेकी मुझे हिम्मत न हुई। मेरे निकट क्षण भरके लिए आकाशका उजाला मानों लज्जावती लताके समान संकुचित हो गया।

स्वामी ने कहा,—"चलो विमला, देखें सन्दीपको क्या कहना

है। वह तो विदा होकर चला गया था, अब जो फिर आया है, तो अवश्य कोई विशेष बात होगी।"

जानेकी अपेक्षा न जाने ही में अधिक लज्जा मालूम हुई। इसीलिए मैं भी उनके साथ बाहर गई। सन्दीप बैठकमें खड़ा दीवारपर टँगी हुई तस्वीरें देख रहा था, हमारे पहुँचते ही बोला,—"तुम सोचते होगे कि मैं फिर कैसे आ गया। पर सत्कार जब तक पूरा न हो जाय तब तक प्रेत विदा नहीं होता।

यह कहकर उसने चादरके भीतरसे एक रूमाल निकाला और उनमेंसे वह अशर्फ़ियाँ खोलकर मेजपर रख दीं। उसने कहा,-"निखिल, तुम भूलमें न पड़ना। यह न समझ बैठना कि तुम्हारे सत्संगसे मैं साधु हो गया हूँ। सन्दीप ऐसे कच्चे मनका नहीं है कि पश्चातापके आँसू बहाता हुआ वह रुपया फेरने के लिए आवे। किन्तु....।"

सन्दीपने अपनी बात पूरी नहीं की। कुछ देर चुप रहकर उसने मेरी ओर देखकर कहा,—"मक्खी रानी, इतने दिन बाद सन्दीपके पवित्र निर्मल जीवनमें एक 'किन्तु' आ घुसा है, रात को आँख खुल जानेपर उसके साथ घोर युद्ध करना पड़ता है। इसीसे मालूम होता है कि वह खोखली बात नहीं है—उसका दावा पूरा किये बिना सन्दीप-सा आदमी भी छुटकारा नहीं पा सकता। मैंने अच्छी तरह चेष्टा करके देख लिया कि पृथ्वी पर केवल तुम्हारा ही धन मैं नहीं ले सकता। तुम्हारे पाससे मैं निर्धन दरिद्र ही होकर विदा हूँगा! यह लो!"

यह कहकर उसने गहनेका बक्स भी निकाल कर मेज पर

रख दिया और जल्दीसे बाहर जाने लगा। मेरे स्वामीने उसे पुकार कर कहा,—"जरा सुनते जाओ, सन्दीप।"

सन्दीपने द्वारके पास खड़े होकर कहा—"मुझे और समय नहीं है, निखिल। मैंने सुना है मुसलमानोंके दलने मुझे बहुमूल्य रत्न समझ कर अपने कब्रिस्तानमें दबा रखनेका संकल्प किया है। पर मैं अभी जीवित रहना चाहता हूँ। उत्तरकी गाड़ी जाने में केवल २५ मिनट बाकी हैं, इसलिए अब तो मैं जाता हूँ—फिर कभी अवसर मिलने पर तुमसे बातें होंगी। यदि मेरी बात मानों तो तुम भी देर मत करो। मक्खी रानी, बन्दे प्रणय-रूपिणीम् हृत-पिण्ड-माविनीम्!"

यह कहकर सन्दीप जल्दीसे चला गया। मैं स्तब्ध खड़ी रह गई। इससे पहले रुपये और गहनेको मैंने इतना तुच्छ कभी न समझा था। कुछ देर पहले यही सोच रही थी कि क्या-क्या चीज साथ लूँगी, कहाँ-कहाँ रखूँगी पर अब सोचती हूँ कुछ भी साथ लेने की जरूरत नहीं—केवल निकल चलना ही जरूरी काम है। मेरे स्वामीने कुरसीसे उठकर मेरा हाथ पकड़ लिया और धीरे-धीरे कहने लगे,—"और अधिक समय नहीं है, अब तैयार हो जाना चाहिए।"

इसी समय चन्द्रनाथ बाबू कमरेमें आ गये, पर मुझे वहाँ देखकर संकुचित होकर कहने लगे,—"माफ करना मैं आनेसे पहले खबर न भिजवा सका। निखिल मुसलमानोंका दल बिगड़ गया है। हरिशकुण्डूका खजाना लुट चुका है। इससे तो कुछ हर्ज नहीं था, पर अब जो उन्होंने स्त्रियोंके ऊपर अत्याचार

आरम्भ किया है वह तो शरीरमें प्राण रहते नहीं देखा जाता
मेरे स्वामी बोले,—"अच्छा, तो मैं जाता हूँ।"

मैंने उनका हाथ पकड़ कर कहा,—"तुम जाकर क्या क सकोगे? मास्टर साहब, आप उन्हें मना कीजिये।"

चन्द्रकान्त बाबू बोले,—"मना करनेका तो समय नहीं है।'

स्वामीने कहा;—"तुम कुछ सोच मत करो विमला।"

खिड़कीके पास मैंने जाकर देखा कि वह घोड़ेपर चढ़कर बड़ तेजीसे सड़क पर जा रहे थे। उनके हाथमें कोई हथियार भ नहीं था।

तुरन्त ही मँझली रानी घबराई हुई आईं और मुझसे बोलीं,- "यह तूने क्या किया, छोटी? सर्वनाश कर दिया। निखिलेश को तूने जाने क्यों दिया?" फिर वह बैरासे बोलीं—"बुला बुला, जल्दी दीवानजीको बुला।"

मँझली रानी दीवानजीके सामने नहीं आती थीं, पर उस दिन उन्हें लज्जा नहीं थी। वह दीवानजी से बोलीं—"महाराजक बुलानेके लिए इसीदम सवार भेज दो।"

दीवानजीने कहा,—"मैंने महाराजको बहुत रोका, पर वह नहीं माने।"

मँझली रानी बोलीं,—"उनसे कहला भेजो कि मँझली रान की तबीयत बहुत खराब है, वह मरनेको पड़ी है।

दीवानके जाते ही मँझली रानीने मुझे भला-बुरा कहना शुरू किया,—"राक्षसी, सत्यानाशिन्! आप तो मरती नहीं और उसे मरनेके लिए भेज दिया।"

दिनका प्रकाश धीमा पड़ने लगा। पश्चिमकी ओर खिड़की के सामने सहिंजनके प्रफुल्लित वृक्षके पीछे सूर्य अस्त हो गया। उस सूर्यास्तकी प्रत्येक रेखा आज तक मेरी आँखोंके सामने है। उत्तर दक्षिण दोनों ओरसे बादलके टुकड़ेने आकर अकस्मात् सूर्यको बीचमें कर लिया, मानों एक प्रकांड पक्षी अपने सुनहरे पंख फैलाये उड़नेके लिए तैयार है। ऐसा मालूम होता था कि आजका दिन रात्रिके समुद्रको उड़ाकर पार करनेकी तैयारी कर रहा है।

अँधेरा होने लगा। किसी दूरके गाँवमें आग लगनेपर जिस प्रकार उसकी शिखा रह-रहकर आकाशकी ओर उठती है, उसी प्रकार कहीं बहुत दूरसे अंधकारके समुद्रपर कलरवकी लहरें वेग के साथ उठ-उठकर आने लगीं।

हमारे घरके मन्दिरमेंसे सन्ध्या समयके शंख और घंटेकी आवाज आने लगी। मैं जानती थी कि मँझली रानी वहीं जाकर हाथ जोड़े बैठी हैं, मुझमें इस रास्तेकी खिड़कीको छोड़कर कहीं जानेकी शक्ति नहीं थी। सामनेका रास्ता, गाँव शून्य और विस्तृत मैदान और उससे भी परे वृक्षोंकी श्रेणी—ये सब चीजें अब अस्पष्ट और धुँधली दिखाई पड़ने लगीं। राजमहलका बड़ा हौज अंधेकी आँखके समान आकाशकी ओर देख रहा था। बाईं ओर फाटकके ऊपरकी बुरजी ऊँची उठ-उठकर न जाने क्या देखनेकी चेष्टा कर रही थी।

रात्रि समयका शब्द कैसे-कैसे रूप धारण कर लेता है!

निकट ही कहीं पेड़की डाल हिलती है तो मालूम होता है कि कोई झपट कर भागा है। जरा कोई किवाड़ हवासे हिल जाता है, तो मालूम होता है कि आकाशकी छाती फट गई।

कभी-कभी काले-काले वृक्षोंकी आड़में कुछ रोशनी दिखाई पड़ती है और फिर, तुरन्त ही छिप जाती है। एक बार घोड़ेके पैरोंका शब्द सुनाई पड़ा, देखा तो राजमहलके अस्तबलसे कुछ सवार निकल कर जा रहे थे!

मेरे मनमें बार-बार यही आता था कि मैं मर जाऊँ तो सारा झगड़ा चुक जाय। मैं जब तक जीवित हूँ मेरा पाप, संसारको तरह-तरहसे पीड़ित करता रहेगा। फिर उसी बक्समें रखी हुई पिस्तौलका ध्यान आया। पर उस खिड़कीको छोड़कर पिस्तौल तक जाकर लानेके लिए पाँव न उठा सकी। मैं अपने भाग्यकी प्रतीक्षा कर रही थी। राजमहलकी डेवढ़ीके घण्टेमें टन-टन करके दस बजे।

जरा देर बाद सड़कपर उजाला दिखाई पड़ा और बहुत-सी भीड़-भाड़ भी थी। अंधेरेमें सब लोग मिलकर एक हो गए थे और ऐसा मालूम होता था कि एक प्रकाण्ड काला अजगर मुड़-मुड़कर हमारे फाटकमें घुसनेके लिये आ रहा है।

दूसरे लोगोंकी आवाज सुनते ही दीवानजी जल्दीसे बाहर चले गये। एक सवार सबसे आगे निकलकर फाटकमें आ पहुँचा। दीवानजीने उससे पूछा,—"क्या खबर है, जटाधर?"

उसने उत्तर दिया,—"खबर अच्छी नहीं है।"

मैंने प्रत्येक शब्द साफ-साफ सुन लिया। इसके बाद न

जाने उन्होंने चुपके-चुपके क्या बातें कीं। मैं कुछ न सुन सकी।

इतनेमें एक पालकी फाटकके अन्दर आई और उसके पीछे एक डोली भी थी। पालकीके साथ-साथ डाक्टर साहब आ रहे थे। दीवानजीने पूछा,—"क्यों डाक्टर साहब क्या राय है?"

डाक्टर साहबने उत्तर दिया,—"कुछ कह नहीं सकता, सिरमें बहुत चोट लगी है।"

"और अमूल्य बाबू?"

"उनकी छातीमें गोली लगी है। उनमें अब कुछ नहीं है।"

❀ समाप्त ❀

पढ़ने योग्य उत्तमोत्तम पुस्तक

(१)	श्रीकान्त (शरद बाबू)	....	५॥)
(२)	शुभदा ,,	....	३)
(३)	घर और बाहर (रवि बाबू)	....	३॥)
(४)	राजर्षि	....	३॥)
(५)	पाँचसदस्य	....	२॥)
(६)	पैसा (श्री र० व० देसाई)	....	४॥)
(७)	तड़प (शिवदत्त मिश्र)	....	१॥।)
(८)	प्रीतिधारा ,,	....	३)
(९)	स्वर्ग में नर्क ,,	....	४॥)
(१०)	रोते नैना (आवारा)	....	२॥)
(११)	मोह माया ,,	....	३॥)
(१२)	भँवर ,,	....	३॥)
(१३)	तिनके ,,	....	२॥)
(१४)	निशानी (गोविन्द सिंह)	....	२॥)
(१५)	घिनौने ,,	....	२)
(१६)	देवता (श्री विश्वनाथ सिंह शर्मा)	....	३॥)
(१७)	ग्राम (श्री नरसिंह दास अग्रवाल)	....	१॥)
(१८)	दुनिया सेहर	....	२)
(१९)	धरती के हरे लहँगे	....	३)
(२०)	समुद्री शैतान (जासूसी)	....	२)
(२१)	नाजी षड़यन्त्र	....	२॥।)
(२२)	साहसी युवती	....	१।)
(२३)	प्रेसिडेण्ट पियरसन	....	१।)
(२४)	फरारों का देश	....	१।)

प्राप्तिस्थान :—

कल्याण दास एण्ड ब्रादर्स-बनारस